श्रम कल्याण प्रशासन

(Labour Welfare Administration)

एम.ए. लोक प्रशासन (पूर्वार्द्ध)

M.A. Public Administration (Previous)

Paper-4

Option-(II)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

Unit-I

अध्याय 1	श्रम कल्याण प्रशासन अर्थ, प्रत्यय और उद्देश्य	5
अध्याय 2	श्रम कल्याण के सिद्धांत	12
अध्याय 3	भारत में श्रम नीति	15
अध्याय 4	अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनः अवयव और कार्य	22

Unit-II

अध्याय 5	श्रम, रोजगार और पुनर्वास मंत्रालय	31
अध्याय 6	मुख्य श्रम आयुक्त (केंद्रीय)	37
अध्याय 7	राष्ट्रीय श्रम आयोग	41
अध्याय 8	राज्य स्तर पर श्रम विभाग (हरियाणा के संदर्भ में)	47
अध्याय 9	श्रम कल्याण अधिकारी	54
अध्याय 10	श्रमिकों की प्रबंध में भागेदारी	57

Unit-III

अध्याय 11	भारत में श्रम आन्दोलन पर श्रम संघ आन्दोलन का प्रभाव	66
अध्याय 12	भारतीय व्यवसाय संघों का अधिनियम, 1926	80
अध्याय 13	संगठित मजदूरों की समस्याएं	94
अध्याय 14	भारत में औद्योगिक श्रमिकों की भर्ती	102

Unit-IV

अध्याय 15	श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923	108
अध्याय 16	मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936	114
अध्याय 17	औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947	119
अध्याय 18	कारखाना अधिनियम, 1948	137

Unit-V

अध्याय 19	कर्मचारी प्रोविडेंट फंड अधिनियम, 1952	156
अध्याय 20	कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948	162
अध्याय 21	मात त्व लाभ अधिनियम, 1961	173
अध्याय 22	बाल मजदूर (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986	180

M.A. (Previous)

LABOUR WELFARE ADMINISTRATION

Paper-4 **Max. Marks : 100**

Option-II **Time : 3 Hours**

Unit I

Concept of Labour Welfare-Meaning, Nature, Principles, Scope and its Significance; Theories of Labour Welfare, Labour Policy in India, I.L.O. and Labour Welfare in India.

Unit II

Union Ministry of Labour and Employment, Central Chief Labour Commissioner, National Commission on Labour, State Labour Deptt. with Spl. ref. to Haryana, Labour Welfare Officer, Workers Participation in Management.

Unit III

Labour Movement in India; Impact of Trade Union Movement On Indian Labour Movement; Trade Union Act, 1926 Registration and Recognition of Trade Unions Act, 1926 Registration and Recognition of Trade Unions; Problems of organised and unorganised Labour in India Recruitment of Industrial Labour in India.

Unit IV

Labour Legislation in India: Workman Compensation Act 1923, Payment of Minimum Wage Act 1936, Industrial Dispute Act 1947; Factories Act 1943.

Unit V

Labour Welfare Acts in India: EPF Act 1952, ESI Act 1948, Maternity Act 1961; Child Labour (Prohibition and Abolition Act) 1985.

अध्याय-3
भारत में श्रम नीति
(Labour Policy in India)

भारत एक विकासशील देश है। इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समस्त उत्पादन संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग होना अत्यंत आवश्यक है। शायद यही कारण था कि हमारे देश के नेतागणों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सर्वप्रथम औद्योगिक नीति एवं श्रम नीति का निर्माण किया। इन नीतियों में श्रमिकों के साथ-साथ उद्योगों के विकास का भी ध्यान रखा गया।

एक विकासशील देश में तेज गति के साथ आर्थिक विकास लाने के लिए समुचित एवं सुद ढ़ श्रम नीति का होना नितांत आवश्यक है। विकास के प्रारंभिक चरणों में मूल्यों में व द्धि अर्थात् मुद्रास्फीति जैसी भयंकर समस्या का सामना करना पड़ता है। अतः श्रम नीति का आयोजन इस प्रकार होना चाहिए जिससे कि इस समस्या पर काबू पाया जा सके। ऐसी नीति की कुछ प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं-

1. मुद्रास्फीति के दबाव को कम करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि उपभोक्ताओं को कम कीमत पर आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध होती रहें एवं श्रमिकों को महंगाई के कारण अधिक कष्ट न उठाना पड़े।
2. अनुचित तथा अत्यधिक मजदूरी, बोनस, महंगाई एवं अन्य प्रकार के भत्तों से अत्यधिक व द्धि से बचना चाहिए।
3. मजदूरी में व द्धि को उत्पादकता से जोड़ना चाहिए जिससे कि जब मजदूरी बढ़े तो साथ-साथ उत्पादन भी बढ़े एवं कीमतों में व द्धि न हो।

एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में श्रमिकों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उनको अर्थ-व्यवस्था के विकास में तथा देश में उत्पादन साधनों को बढ़ाने में अधिक से अधिक अंशदान करना चाहिए। जब तक स्वयं-स्फूर्त आर्थिक विकास की स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक श्रमिकों को आर्थिक प्रयत्नों से प्राप्त निजी लाभों की ओर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। निजी हित की अपेक्षा सामाजिक हित को प्राथमिकता देना चाहिए। अधिक से अधिक लोगों को अधिकतम कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठोर सामाजिक अनुशासन की आवश्यकता है। अतः श्रमिकों तथा मालिकों को अपने निजी हितों की चिंता न करके राष्ट्रीय विकास की गति को तेज करने तथा उत्पादकता में व द्धि के हेतु कठिन परिश्रम के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

आर्थिक विकास की सफलता के लिए एक आधारभूत शर्त यह है कि हमारा श्रमजीवी संतुष्ट एवं सुखी हो। संतुष्ट एवं कार्य कुशल श्रम के बिना आयोजन की सफलता कठिन होती है। यही कारण है कि हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में समुचित श्रम की नीति के निर्धारण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। भारत सरकार की श्रम नीति एवं श्रम संबंधी अधिनियमों का प्रमुख उद्देश्य देश में औद्योगिक शांति-सामूहिक सौदेबाजी द्वारा और, यदि वह असफल हो जाए, तो समझौता कराने की व्यवस्था द्वारा और यदि वह भी असफल हो जाए तो मध्यस्थ निर्णय द्वारा औद्योगिक शांति बनाये रखना है।

भारत सरकार ने ऐच्छिक अधिनिर्णयन की प्रणाली को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया है, किंतु वास्तव में, अधिकांशतः अनिवार्य अधिनिर्णयन की पद्धति जारी रही है। सरकार हड़तालों और तालाबंदियों के द्वारा शक्ति परीक्षा की नीति को हतोत्साहित करती रही है। क्योंकि देश की अर्थ-व्यवस्था पर इनका कुप्रभाव ही पड़ता है।

सरकारी श्रम नीति से तात्पर्य श्रमिकों के प्रति सरकार के द ष्टिकोण से है। भारत में औद्योगिक श्रम का प्रारंभ सन् 1850 के बाद हुआ, जब देश में सूती वस्त्र, जूट, बागान, कोयला, खदान और रेलवे उद्योगों का सूत्रपात हुआ। सरकारी नीति को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं एक तो ब्रिटिश शासन के अंतर्गत और दूसरे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्।

ब्रिटिश शासन में भारत सरकार की श्रम नीति

ब्रिटिश शासन ने देश के उद्योगों की पूर्ण उपेक्षा की थी; अतः श्रम का उसकी द ष्टि में कोई अधिक महत्त्व नहीं था। ब्रिटेन भारत को एक क षि प्रधान देश ही बनाये रखना चाहते था जिससे कि उसके उद्योग धंधों को कच्चा माल मिलता रहे और ब्रिटेन के तैयार माल के लिए बाज़ार बना रहे। फिर भी कुछ उद्योगों का विकास भारत में हुआ। भारत के प्रमुख उद्योगों; जैसे- सूती वस्त्र, रेलवे आदि में ज्यादातर विदेशी पूंजी लगी हुई थी; अतः भारत की विदेशी सरकार उनके हितों को ही अधिक ध्यान में रखती थी। यही कारण है कि ब्रिटिश युग में श्रम बिल्कुल ही उपेक्षित रहा। 19वीं शताब्दी की सरकारी नीति को ए० सी० क्लाउ ने एक वाक्य में बताया कि, "इस युग में श्रमिक कानून मालिकों से मजदूरों की रक्षा के लिए नहीं थे बल्कि मजदूरों से मालिकों की रक्षा के लिए थे।" इस युग में श्रमिकों का जो शोषण भारत में हुआ वह अभूतपूर्व है।

परंतु धीरे-धीरे श्रमिकों में संगठन हुआ और उन्होंने अपने अधिकारों की मांग करना शुरू किया। भारत के राजनीतिक आंदोलनों ने भी उसको बल दिया और सरकार को उनकी सुरक्षा की कुछ व्यवस्था करनी पड़ी। परंतु ब्रिटिश शासन की नीति केवल शांति बनाए रखने और श्रमिकों तथा उद्योगपतियों के मामले में उदासीनता की ही रही। ब्रिटिश शासन मजदूर आंदोलन को कोई भी प्रोत्साहन नहीं दे सकता था क्योंकि उसे भय था कि श्रमिकों का आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन को शक्ति प्रदान करेगा, जिसे तत्कालीन भारत सरकार कभी सहन करने को तैयार नहीं थी। इसी कारण जब कभी मजदूरों ने व्यापक संघर्ष किए ब्रिटिश शासन ने उनका दमन किया।

बीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन की श्रम नीति में जो कुछ भी परिवर्तन हुआ वह श्रमिकों के आंदोलन के कारण हुआ। सन् 1939 में द्वितीय महायुद्ध के कारण ब्रिटेन को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। युद्ध के कारण बाहर से माल आना बंद हो गया और युद्ध के लिए विशाल मात्रा में आवश्यक वस्तुओं की जरूरत शासन को हुई, अतः क्रमश उद्योगों का देश में विस्तार किया गया। इस औद्योगीकरण के लिए श्रम के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया। अतः पहली बार ब्रिटिश शासन ने सामाजिक सुरक्षा, श्रम-कल्याण, कार्य की परिस्थितियों आदि पर विचार किया।

स्वतंत्र भारत में सरकार की श्रम नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही कांग्रेस अपनी श्रम नीति की घोषणा कर चुकी थी। कांग्रेस ने श्रम-आंदोलन को स्वतंत्रता संग्राम का आवश्यक मोर्चा माना था और यह निश्चय किया जा चुका था कि नवीन भारत की रचना समाजवादी तथा सर्वोदयी आदर्शों के अनुसार होगी। कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों में इस प्रकार के बहुत से प्रस्ताव पास हुए थे। श्रम के संबंध में शासन की नीति के कुछ सिद्धांत इस प्रकार थे-

1. श्रमिकों को अपना संगठन करने और सामूहिक रूप से अपने अधिकारों की रक्षा करने का पूरा अधिकार है। प्रदर्शन, हड़ताल इत्यादि उनके अधिकारों से उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता। परंतु श्रमिकों को अहिंसा और वैधानिक तथा लोकतांत्रिक तरीकों से अपना आंदोलन चलाना चाहिए।
2. श्रमिक समाज का एक सम्मानित सदस्य है। श्रम की महिमा को गांधी जी ने स्थापित किया था और सब नेताओं ने स्वीकार किया।
3. श्रम को अपने कार्य को उचित पुरस्कार मिलना चाहिए अर्थात् श्रम का शोषण समाप्त होना चाहिए। कार्य के घंटे और मजदूरी न्यायपूर्ण होने चाहिएं। श्रमिकों को लाभ में से भी एक अंश मिलना चाहिए।
4. श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। दुर्घटना, बीमारी, व द्धावस्था, प्रसूतावस्था इत्यादि के अवसरों पर श्रम को उसका समुचित पुरस्कार मिलना चाहिए।
5. उद्योगपति एवं शासन का उत्तरदायित्व है कि श्रमिकों की उन्नति के उपाय किए जाएं जिससे कि उनकी कार्य दक्षता बढ़े, उनका जीवन-स्तर ऊंचा हो। अर्थात् श्रमिकों के स्वास्थ्य, निवास-स्थान इत्यादि की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व सरकार एवं समाज का है। श्रम-कल्याण में कार्यों का विकास किया जाये।
6. रोजगार के अवसर अधिक से अधिक बढ़ाये जाएं।

7. उद्योगों में श्रमिकों का बराबरी का स्थान है। अतः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मामले में उनका सहयोग आवश्यक है। इस द ष्टि से प्रबंध में भी श्रम को हिस्सा लेना चाहिए और उनको इसका अधिकार मिलना चाहिए।
8. सरकार ने यह भी निश्चय किया कि श्रमिकों की उन्नति के लिए तत्काल आवश्यक विधान या कानून बनना चाहिए जिससे कि उन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप दिया जा सके।

परंतु यह कहना अनुचित होगा कि शासन-सूत्र हाथों में लेते ही सरकार ने इन सिद्धांतों का पालन शुरू कर दिया। कई कारणों से स्वतंत्र भारत की सरकार भी श्रमिकों का पूरी तरह पक्ष ग्रहण नहीं कर सकी। खासतौर से औद्योगिक संबंधों में सरकार की नीति बहुत कुछ अंग्रेजी शासन के ही समान रही इसके कई कारण थे।

पहला तो था कि देश के विकास के लिए सरकार ने कुछ लक्ष्य रखे थे। औद्योगिक अशांति से उन लक्ष्यों की पूर्ति में बाधा पड़ती थी। योजनाओं की प्रगति के साथ-साथ सरकारी उद्योगों की संख्या में व द्धि हुई; अतः श्रम-आंदोलन का प्रोत्साहन देना सरकार के ही लिए परेशानी उत्पन्न करना था। फिर व्यक्तिगत उद्योगों को प्रोत्साहन देना सरकार के ही लिए परेशानी उत्पन्न करना था। फिर व्यक्तिगत उद्योगों का भी काफी प्रभाव सरकार पर था। शांति और कानून की व्यवस्था की द ष्टि से औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों का आंदोलन सरकार के लिए चिंता उत्पन्न कर सकता था।

संक्षेप में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने मजदूरों की उन्नति के लिए काफी कार्य किया है। सामाजिक सुरक्षा, श्रम-कल्याण, न्यूनतम मजदूरी, बोनस, औद्योगिक आवास इत्यादि कार्यों पर काफी व्यय भी हुआ है और इस दिशा में काफी प्रगति भी हुई। परंतु यह कार्य इतना विशाल है कि पूरी तरह समस्या का हल हो नहीं सकता। जनसंख्या में व द्धि के कारण श्रमिकों की संख्या में तीव्र गति से विस्तार हुआ है; अतः स्थिति जहां की तहां दिखाई देती है। गंदी बस्तियां, बेकारी, गरीबी औद्योगिक अशांति आदि के प्रश्न अभी भी हल नहीं हो रहे हैं।

पंचवर्षीय योजनाएं और श्रम नीति

(Five Year Plans and Labour Policy)

स्वतंत्रता के एकदम पश्चात् औद्योगिक विकास को पूर्णता प्रदान करना एक असंभव कार्य था। अतः प्राथमिकता के आधार पर श्रम नीति का निर्माण अनेक चरणों में हुआ। दूसरे समय के परिवर्तन के साथ-साथ इसमें अनेक सुधारों की भी आवश्यकता अनुभव की गई। यह दो कारण ही श्रम नीति में बार-बार परिवर्तन के लिए उत्तरदायी थे। पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर श्रम नीति की विशेषताओं का निम्नानुसार अध्ययन किया जा सकता है।

श्रम नीति और प्रथम पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and First Five Year Plan)

पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में श्रम समस्याओं का विस्त त उल्लेख किया गया था और देश के आर्थिक विकास और आर्थिक स्थायित्व को बढ़ाने की द ष्टि से आयोग ने इन समस्याओं के समाधान पर जोर डाला था। योजना में निम्नांकित सिफारिशें की गई थीं-

1. **औद्योगिक संबंध** - औद्योगिक विकास एवं श्रम कल्याण विषयक लक्ष्यों को पूरा करने हेतु श्रमिकों और सेवायोजको के संबंध मैत्रीपूर्ण होने चाहिएं। इस हेतु श्रम संघों के निर्माण एवं सामूहिक सौदेबाजी को मान्यता दी गई। औद्योगिक न्यायालय समझौतों, मंडलों, विवाचन, जांच न्यायालयों, कार्य समितियों आदि के लिए व्यवस्था करने पर बल दिया गया। संक्षेप में संघर्षों के निपटारे के पारस्परिक समझौता व्यवस्था को समर्थन किया गया।
2. **मजदूरी** - मुद्रा प्रसार को रोकने हेतु लाभ और मजदूरी की व द्धि को नियंत्रित करने पर बल दिया गया। आयोग की राय थी कि मजदूरी में व द्धि उसी सीमा तक उचित है जहां तक कि यह वितरण एवं आर्थिक असमानताओं को दूर करने में सहायक हो। मजदूरी का समानीकरण करने एवं न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को प्रभावशाली बनाने पर जोर दिया गया। लाभांश-भागिता एवं बोनस संबंधी विषयों का विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन कराने की बात कही गई। मजदूरी संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए त्रिदलीय आधार पर स्थायी मजदूरी मंडलों की स्थापना का सुझाव दिया गया।
3. **सामाजिक सुरक्षा** - विभिन्न सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों (जैसे- श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, मात त्व हित लाभ अधिनियम, बोनस स्कीम, प्रोवीडेंट फंड) को कार्यान्वित करने पर बल दिया गया।

4. **क षि श्रमिक** - क षि में संलग्न श्रमिकों, विशेषतः भूमिहीन श्रमिकों के लाभार्थ ग्रामीण विकास कार्यक्रम बनाये गए, भूदान आंदोलन को समर्थन प्रदान किया गया, सहकारी समितियों की स्थापना की गई एवं मकानों की जमीन पर मौरूसी अधिकार देने के संबंध में कदम उठाए गए।
5. **कार्य दशाएं** - कार्य दशाओं में सुधार के लिए वर्तमान विधान ही पर्याप्त समझे गए किंतु इनके प्रभावी कार्यान्वयन पर बल दिया गया।
6. **राष्ट्रीय संग्रहालय** - सुरक्षा, कल्याण एवं औद्योगिक स्वास्थ्य के लिए एक राष्ट्रीय संग्रहालय स्थापित करने की आवश्यकता बताई गई।
7. **मानव शक्ति का उचित उपयोग** - मानव शक्ति के उचित प्रयोग के लिए भर्ती प्रणाली में सुधार, रोजगार कार्यालयों के संगठन, प्रशिक्षण सुविधाओं के विस्तार एवं विवेकीकरण करने की सिफारिश की गई।
8. **उत्पादकता** - उत्पादकता एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के संबंध में कार्य प्रणाली मजदूरी की दर, नौकरियों के वर्गीकरण आदि के अध्ययन कराने का सुझाव दिया गया।
9. **आवास** - श्रमिकों के आवास के लिए समुचित व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव करते हुए आयोग ने औद्योगिक क्षेत्रों के लिए कई आवास कार्यक्रम बनाए।

श्रम नीति और दूसरी पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Second Five Year Plan)

प्रथम पंचवर्षीय योजना में शुरू की गई श्रम नीति को ही दूसरी योजना-काल में भी, आवश्यकतानुसार कुछ संशोधन के साथ, जारी रखा गया। ये संशोधन वास्तव में हमारे समाजवादी समाज की स्थापना के नये संकल्प के ही अनुरूप थे। योजना के अंतर्गत श्रम नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार थीं-

1. औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना के लिए सशक्त श्रम आंदोलन की आवश्यकता को अनुभव करते हुए श्रम संघों के विकास पर बल दिया गया।
2. मजदूरी संबंधी प्रस्ताव प्रथम योजना जैसे ही थे। केवल प्रोविडेंट फंड में अंशदान की दर 6.5% से बढ़ाकर 8.5 करने का सुझाव दिया गया। लाभांश भागिता, बोनस आदि के विषय में गहन अध्ययन कराने के सुझाव रखे गए।
3. औद्योगिक विकास के लिए अनुशासन संहिता को महत्त्व दिया गया। श्रमिकों को उत्तरदायित्व का बोध कराने के लिए प्रचार और उसकी अनुशासनहीनता एवं हिंसात्मक प्रव त्तियों को रोकने के लिए कड़ी निगरानी के सुझाव दिए गए।
4. योजना के श्रम कल्याण संबंधी कार्यक्रमों के लिए 21 करोड़ रुपये की राशि नियत की गई।
5. विवेकीकरण को आपसी समझौतों के आधार पर लागू करने का सुझाव दिया गया। विशिष्ट समस्याओं के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा उच्च अधिकारी की नियुक्ति की जा सकती है।
6. ठेके के श्रमिक को निरंतर रोजगार देने और उनकी दशाओं को सुधारने हेतु उपाय करने के सुझाव दिए गए।
7. क षि श्रमिक और महिला श्रमिकों की समस्याओं के समाधान पर ध्यान दिया गया।
8. प्रशिक्षण सुविधाओं के विस्तार, रोजगार सेवा संगठन, रोजगार कार्यालयों की स्थापना, श्रमिकों को श्रव्य-द ष्टि (Audio-Visual) शिक्षण के लिए फिल्म शाखा की स्थापना आदि पर बल दिया गया।
9. श्रमिकों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कराने पर बल दिया गया।

श्रम नीति और त तीय पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Third Five Year Plan)

तीसरी योजना में श्रम नीति का उद्योग और श्रम की आवश्यकताओं व नियोजित विकास के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर विकास किया गया। त्रिदलीय प्रतिनिधियों (श्रमिक, सेवायोजक और सरकार के प्रतिनिधियों) से राय करके सिद्धांत और नीतियां बनाने का निश्चय हुआ। इस प्रकार राष्ट्रीय श्रम नीति का निर्धारण त्रिदलीय व्यवस्था द्वारा किया जाने लगा है और इसका

मूलाधार ऐच्छिक है। योजना में उन आधारों को भी जारी रखा गया है जिन्हें कि दूसरी योजना में उपयोगी माना गया था। योजनावधि में श्रम नीति संबंधी निम्नांकित प्रगतियां उल्लेखनीय हैं-

1. योजना काल में कार्य समितियों को सशक्त बनाकर प्रजातंत्रीय प्रशासन के लिए आधार भूमि बनाने पर बल दिया गया और नई औद्योगिक इकाइयों के उद्योगों में संयुक्त प्रबंध परिषदों की योजना शुरू की गई।
2. औद्योगिक संहिता की सफलता देखकर इसे औद्योगिक संबंधों का आधार बनाया गया और मालिकों और श्रमिकों से इसके पालन का आग्रह किया गया ताकि यह एक सजीव शक्ति बन सके।
3. सरकार ने निर्धन श्रमिक वर्ग की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लिया और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को अधिक प्रभावी ढ़ंग से लागू करने पर जोर दिया। विभिन्न उद्योगों में मजदूर मंडल स्थापित किए गए। मजदूरी निर्धारण में श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ने का ध्यान रखा गया। बोनस आयोग की नियुक्ति की गई।
4. सामाजिक सुरक्षा के विस्तार के लिए कर्मचारी राज्य बीमा योजना को 500 या अधिक श्रमिकों वाले कारखानों में लागू किया गया।
5. विवेकीकरण को उत्पादकता व द्धि के लिए वास्तविक आधार माना गया और कहा गया कि श्रमिकों को विवेकीकरण की योजना लागू करने में सहायक होना चाहिए बाधक नहीं। हां, विवेकीकरण योजना के फलस्वरूप बेकार हुए लोगों को अन्यत्र रोजगार दिलाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।
6. कार्य दशाओं के सुधार के लिए अधिनियमों में पारित व्यवस्थाओं को सुद ढ़ बनाने पर बल दिया गया। कारखानों में दुर्घटनायें रोकने के लिए एक स्थायी सलाहकार समिति की स्थापना, खान उद्योगों में सुरक्षा शिक्षा के प्रचार के लिए राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद् की स्थापना, कोयला एवं अभ्रक खानों की भांति मैगनीज एवं कच्चे लोहे की खानों के एि कल्याण निधियों का निर्माण, श्रमिक वर्ग के लाभार्थ सहकारी साख-समितियों एवं उपभोक्ता भंडारों का गठन, गांवों में बेरोजगारी के समाधान के लिए केंद्रीय क षि मजदूर सलाहकार समिति की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए 50 लाख एकड़ से अधिक भूमि को क षि योग्य बनाकर 7 लाख परिवारों को बसाना एवं मनोरंजन व खेलकूद की सुविधायं बढ़ाने पर भी बल दिया गया। आवास व अन्य निर्माण कार्यों के लिए काफी बढ़ी राशि निर्धारित की गई। ग्रामीण आवास पर भी ध्यान दिया गया।

इस प्रकार, तीसरी योजना में सरकार की नीति स्वैच्छिकता के आधार पर श्रम और प्रबंध के बीच रचनात्मक सहकारिता की थी। 1962 में चीन का हमला होने पर आपातकाल घोषित किया गया और औद्योगिक शांति प्रस्ताव स्वीक त हुआ, जिससे हड़तालों में कमी आई। इसी प्रस्ताव के अंतर्गत उपभोक्ता सहकारी भंडार एवं सस्ती दुकानें खुलीं।

श्रम नीति और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Fourth Five Year Plan)

पिछले अधिनियम, कानून और स्वैच्छिक प्रबंध चौथी योजना में भी श्रम नीति के आधार बने रहे। इस अवधि की श्रम नीति के प्रमुख पहलू निम्न प्रकार थे-

1. **श्रम नीतियों की व्यावहारिकता** - योजना में श्रम नीति व श्रम कार्यक्रमों को धीरे-धीरे किंतु निश्चित रूप से आगे बढ़ाना तय हुआ, जिससे श्रमिकों के विभिन्न वर्गों- क षि, असंगठित, ठेका, कारखाना, स्त्री व बाल श्रमिकों के लिए पर्याप्त व्यवस्थायें की जा सकें।
2. **अनुशासन संहिता** - औद्योगिक संबंधों के सुधार के लिए अनुशासन संहिता पर विशेष बल दिया गया। कार्य समितियों के क्षेत्र को भी स्पष्ट किया गया।
3. **आवास** - आवास व्यवस्था पर भी विशेष बल दिया गया।
4. **श्रमिक संघों का विकास** - श्रम संघों से आशा की गई कि वे केवल मजदूरी दिलाने वाली एजेंसी के रूप में ही नहीं करेंगे वरन् राष्ट्रीय विकास में भी ठोस भूमिका अदा करेंगे।
5. **सामाजिक सुरक्षा** - सामाजिक सुरक्षा को इतना विस्त त करने का निश्चय हुआ कि समाज का कोई भी वर्ग असुरक्षित न रहे।

6. **प्रशिक्षण** - औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ाने और क्षेत्रीय प्रशिक्षण केंद्र खोलने का निर्णय किया गया।

श्रम नीति और पंचम पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Fifth Five Year Plan)

पांचवी योजना में श्रम नीति की विशेषताएं निम्न प्रकार थीं-

1. **औद्योगिक संबंध** - चौथी योजना के दौरान औद्योगिक संबंध बहुत संतोषजनक नहीं रहे। औद्योगिक विवादों का मुख्य कारण आम उपभोग की वस्तुओं के भाव बढ़ने के कारण तनख्वाह, बोनस और अन्य संबद्ध बातें थीं। इन महत्त्वपूर्ण मामलों और इनसे संबद्ध मामलों का नया और व्यापक औद्योगिक संबंध कानून बनाते समय ध्यान में रखा जाना था।
2. **श्रमिक कल्याण** - सामाजिक सुरक्षा उपायों के क्षेत्र में अच्छी प्रगति हो रही है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना 42 लाख कर्मचारियों पर लागू थी। 1978 तक कुल मिलाकर 38 लाख कर्मचारी और राज्य बीमा योजनाओं के अधीन लाने का प्रस्ताव किया गया।
3. **प्रशिक्षण एवं रोजगार** - रोजगार नीति में वेतन पर रोजगार और स्वयं रोजगार सुविधाओं के विकास, दोनों पर बल देना था। उपयुक्त क्षेत्रों में प्रशिक्षण सुविधाएं अधिक बढ़ाई जानी थीं।
4. **सुरक्षा व्यवस्था** - कारखानों में सुरक्षा व्यवस्था बढ़ाने हेतू विभिन्न राज्यों में जो सुरक्षा कार्यालय खोले गये हैं उनको मजबूत बनाया जाना था।
5. **सूचना एकत्रण** - श्रमिक कार्यालय देहाती श्रमिकों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के श्रमिकों के काम की अवस्थाएं तथा श्रमिकों के क्षेत्र से संबंध अन्य विषयों पर सूचनाएं आदि एकत्र करेंगे।
6. **राष्ट्रीय श्रमिक संस्था** - भारतीय श्रमिक संस्था का पुनर्गठन कर और इसका विस्तार कर राष्ट्रीय श्रमिक संस्था बनाई जानी थी। यह संस्था श्रमिक से संबद्ध मामलों के अनुसंधान में समन्वय स्थापित करने वाली संस्था होगी।

पांचवी योजना में कारीगरों के प्रशिक्षण, रोजगार सेवाओं और श्रमिक कल्याण के लिए 57 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। योजना में आवास पर कुल 4670 करोड़ रुपये खर्च किए जाने थे। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (minimum need programme) के अंतर्गत राज्यों की योजना में, गांवों में, भूमिहीनों को मकान बनाने के लिए लगभग 40 लाख प्लाट देने हेतू 108.16 करोड़ रुपये रखे हुए थे।

श्रम नीति और षष्ठम् पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Sixth Five Year Plan)

जनता सरकार ने पांचवी योजना को इसका कार्यकाल पूरा होने से एक वर्ष पूर्व की समाप्त कर दिया और 1978-83 की अवधि के लिए नई योजना बनाई। बाद में श्रीमती इंदिरा गांधी पुनः सत्तारूढ़ हुई और इनके दिशा-निर्देशन के अंतर्गत छठी योजना बनाई गई। यह संशोधित योजना 1980 से 1985 तक की पांच वर्षीय अवधि के लिए थी। इस योजना में मजदूरी, महंगाई और उत्पादन के संबंध में एक समन्वित नीति अपनाने की व्यवस्था की गई हड़तालों और तालाबंदियों को हतोत्साहित करने हेतु कुछ अलग कदम उठाए गऐ तथा श्रम-कानूनों को कठोरतापूर्वक लागू करने की व्यवस्था की गई।

श्रम नीति और सप्तम पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Seventh Five Year Plan)

सातवीं योजना की श्रम नीति में निम्न सुधार किए गए-

1. ग्रामीण क्षेत्र में विकास कार्य हेतु पर्याप्त ग्रामीण रोजगार का स जन करना।
2. अप्रशिक्षित श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना।
3. उद्योगों के आधुनिकीकरण द्वारा कार्य क्षमता में व द्धि करना।
4. कुटीर उद्योगों में लगे श्रमिकों को प्रोत्साहित करना।

5. राष्ट्रीय ग्रामीण रोज ग्रिड का निर्माण जिसके कारण 14450 लाख व्यक्ति दिवसों का स जन किया जाना।
6. मानवीय पूंजी का उचित विकास तथा अनुकूलतम उपयोग करना।
7. आर्थिक नियोजन एवं शैक्षिक नियोजन को मानवीय नियोजन से संबंधित करना।

इस प्रकार सातवीं पंचवर्षीय योजना में श्रमिक शक्ति के अनुकूलतम प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है।

श्रम नीति और आठवीं पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Eighth Five Year Plan)

सन् 1991 में अनुमोदित आठवीं पंचवर्षीय योजना में श्रम की गुणवत्ता के विकास पर अधिक बल दिया गया ताकि भारतीय उत्पादों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उचित स्थान प्राप्त हो सके। जो उद्योग अंतर्राष्ट्रीय स्तर का उत्पादन न कर सकेंगे वे अधिक दिन न टिक सकेंगे। एक तरफ तो विदेशी तकनीक के आगमन से उत्पादन की संभावना बढ़ेगी। दूसरे भारतीय श्रमिक का अंतर्राष्ट्रीयकरण होने के कारण प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी।

भारत में योजनाकालीन श्रम नीति के प्रमुख दोष निम्न प्रकार रहे हैं-

1. **न्यूनतम मजदूरी कानून की प्रभावहीनता** - सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण किए जाने के बावजूद कानून की व्यावहारिक क्रियाशीलता प्रभावहीन रही है। असंगठित क्षेत्रों में श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी के स्तर से बहुत नीची मजदूरी मिलती है।
2. **मजदूरी अंतरों की विद्यमानता** - श्रम-संघों की बहुलता और आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण राष्ट्रीय स्तर पर उपयुक्त मजदूरी-नीति का निर्धारण नहीं हो पाया है। विभिन्न क्षेत्रों उद्योगों और फर्मों के बीच व्यापक मजदूरी - अंतर विद्यमान है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की मजदूरियों में अंतर पाया जाता है।
3. **मजदूरी-रोजगार बढ़ाने में विफलता** - श्रम-नीति 'मजदूरी रोजगार' बढ़ाने के प्रयासों में विफल रही है। देश में विद्यमान व्यापक बेरोजगारी के कारण अधिकांश श्रमिक 'भूखमरी वाली मजदूरी' पर काम करने के लिए तैयार रहते हैं।
4. **असल में मजदूरी में कमी** - अर्थव्यवस्था में उत्पन्न स्फीतिक दबावों के कारण निर्वाह-लागत बहुत बढ़ गई है। यद्यपि महंगाई भत्ते को निर्वाह-व्यय में जोड़ने की नीति अपनाई गई है तथापि, निर्वाह-व्यय में व द्धि के अनुरूप मजदूरियां नहीं बढ़ पाई हैं। कीमत-व द्धि का लाभ मुख्यतः सेवायोजकों को मिला है।
5. **विकास के फलों में श्रमिकों को उचित हिस्सा नहीं** - नियोजित विकास द्वारा स जित-सम द्धि में से श्रमिकों को उचित हिस्सा नहीं मिल पाया है। अधिक शक्ति गिने-चुने हाथों में केंद्रित हो गई है।
6. **श्रम-कौशल बढ़ाने में विफलता** - मजदूरी नीति श्रमिकों का स्वास्थ्य, रहन-सहन और कार्य-कुशलता सुधारने में असमर्थ रही है। आर्थिक विकास की धीमी गति तथ श्रम-शक्ति में द्रुत व द्धि के कारण श्रमिकों की 'असल मजदूरी' निरंतर घटी है। फलतः मजदूरी-नीति औद्योगिक शांति की स्थापना में विफल रही है।

श्रम नीति और नौंवी पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Ninth Five Year Plan)

नौवीं पंचवर्षीय योजना में श्रम नीति के मुख्य पहलुओं जैसे बाल मजदूर की समाप्ति एवं पुनर्वास योजनाएं, बंधुवा मजदूर समाप्ति एवं पुनर्वास कार्यक्रम, उद्योगों की निजीकरण करते समय मजदरों के रोगजार पर पड़ने वाले सभी विपरीत प्रभावों का ध्यान में रखना, महिला मजदूरों के साथ न्याय एवं सुरक्षा आदि को रखा गया है।

श्रम नीति और दसवीं पंचवर्षीय योजना

(Labour Policy and Tenth Five Year Plan)

दसवीं पंचवर्षीय योजना के श्रमिक नीति का विशेष वर्णन तो नही किया गया है परंतु इससे निजी उपक्रम को प्रोत्साहन देना, गरीबी को कम करना, प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ावा देना, श्रमिकों को रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान करना, सर्वशिक्षा को प्रोत्साहन, प्रदूषण को कम करना, बीमार सार्वजनिक उपक्रमों पर अधिक ध्यान देना आदि को शामिल किया गया है।

अध्याय-4
अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनः अवयव और कार्य
(Intertnational Labour Organisation : Its Organs and Their Functions)

श्रम की दशा सुधारने के लिए सन् 1818 में रोबर्ट औवेन (Owen) ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने का सुझाव दिया था। सन् 1866 में एक अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन हुआ था जिसमें यह प्रस्ताव रखा गया कि संसार के सब देशों में श्रमिक विधान बनाये जायें। सन् 1880 स्विट्जरलैंड में एक अंतर्राष्ट्रीय सभा इसी उद्देश्य से बुलाई गई थी। सन् 1890 में बर्लिन में भी एक सम्मेलन किया गया था। सन् 1897 में ब्रूसेल्स में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। सन् 1900 में एक अंतर्राष्ट्रीय श्रम परिषद् बनाई गई थी जिसका उद्देश्य संसार के मजदूरों की दशा पर विचार-विमर्श करना था। इसमें 15 देश सदस्य थे। सन् 1905 तथा 1906 में फिर दो सम्मेलन किये गयें इन सम्मेलनों में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी पास किये गए थे। परंतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ठोस कदम प्रथम महायुद्ध के पश्चात् उठाया गया। युद्ध के बाद वासार्य की संधि की गई। उसमें यह निश्चय किया गया कि संसार में स्थायी शांति के लिए सामाजिक न्याय आवश्यक है और इसके लिए संसार के श्रमिकों की दशा का सुधार होना चाहिए।

31 जनवरी, सन् 1919 को 'शांति सम्मेलन' में आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाने पर जोर दिया। परिणामस्वरूप इस संगठन की स्थापना हुई। इसे 'अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organiszation) कहा गया। इसे 'लीग ऑफ नेशन्स' (Leagure of Nations) का अंग माना गया।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) परिवार संगठन का एक सदस्य है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ से पूर्णतया संबंधित है तथा विश्व शांति के मूलभूत सिद्धांत की रक्षा करता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एक विधिवत् संगठन है। वह अपने क्षेत्र में सार्वभौमिक महत्व के सिद्धांतों को प्रतिपादित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का विधान

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सदस्य विभिन्न राज्य है जिनकी दिसंबर, 1965 में संख्या 116 थी। सदस्यता की यह संख्या दिसंबर 1984 में बढ़कर 150 हो गई है। इस प्रकार यह राष्ट्रों का संघ है जो सरकारों द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त करता है तथा प्रजातांत्रिक आधारों पर, सरकारों, नियोजकों तथा श्रम संगठनों के प्रतिनिधियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसका उद्देश्य सब देशों में सामाजिक न्याय में व द्धि करना है तथा इसके लिए यह श्रम और सामाजिक दशाओं से संबंधित तथ्य एकत्रित करता है।

वित्त व्यवस्था - अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की वित्तीय व्यवस्था सदस्य राज्यों के वार्षिक शुल्कों से होती है। सन् 1950 में संयुक्त राष्ट्र संघ के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी शुल्क की दरों के लिए माप निर्धारित की थी। शुल्क की दरें प्रतिवर्ष आपसी विचार-विमर्श से निश्चित की जाती हैं। शुल्क की दरों में परिवर्तन संगठन की सदस्यता में व द्धि होने पर भी किया जाता है।

प्रत्येक सदस्य देश का अंशदान कुल व्यय के प्रतिशत के आधार पर निर्धारित किया जाता है। वर्ष 1991 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के लिए भारत का योगदान लगभग 145 लाख रुपये था।

In 000's (U.S. Dollar)

Year	Total Budget of the I.L.O	India's Share of Contribution	Percentage Share of India in Total Contribution
1975	45,134	673	1.94
1980	101,890	910	0.67
1984	127,372	359	0.36

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का स्वरूप

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अपनी तीन इकाइयों द्वारा कार्य चलाता है, जो कि निम्नलिखित हैं-

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय
2. शासकीय निकाय, तथा
3. अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय
(International Labour Office)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जिसका मुख्य कार्यालय जिनेवा में हैं, सचिवालय सांसारिक सूचना केंद्र तथा प्रकाशन ग ह का कार्य करता है। यह श्रम से संबंधित प्रश्नों पर अध्ययन एवं अनुसंधान करने पर लगा हुआ है। इसमें विभिन्न देशों से प्राप्त विशेषज्ञों की नियुक्ति होती है। मुख्य कार्यालय की सहायता के लिए 12 सहायक कार्यालय हैं, 40 राष्ट्रीय पत्रकार तथा 6 क्षेत्र कार्यालय संसार के विभिन्न भागों में हैं। संगठन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी महानिदेशक होता है, जो कि शासकीय निकाय द्वारा नियुक्त किया जाता है।

भारत में सन् 1928 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक शाखा स्थापित की गई। यह संगठन जिनेवा मुख्य कार्यालय में तथा भारत के नियोजक तथा कर्मचारी संगठनों के बीच संबंध स्थापित करता है। यह मुख्य कार्यालय को भारत में हुए सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन से सूचित करता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की केंद्रीयकरण नीति के फलस्वरूप 1 अप्रैल, 1970 से दिल्ली कार्यालय को क्षेत्रीय कार्यालय में परिवर्तित कर दिया गया जो भूटान, भारत, श्रीलंका, नेपाल तथा मालद्वीप समूह की गतिविधियों को देखता है।

शासकीय निकाय
(Governing Body)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की शासकीय निकाय कार्यकारी परिषद् है जो कि कार्यालय का निरीक्षण करती है, उसका बजट बनाती है तथा औद्योगिक एवं विशेषज्ञ समितियों की नियुक्तियों के लिए उत्तरदायी है। शासकीय निकाय महानिदेशक की नियुक्ति करती है, महानिदेशक द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों द्वारा बजट प्रस्तावों पर विचार करती है तथा सम्मेलन की इस द ष्टि से सिफारिश करती है। शासकीय निकाय का जून, 1981 में पुनर्गठन किया गया। दस प्रकार इसमें अब 56 सदस्य होते हैं- 28 सरकारों के प्रतिनिधि, 14 नियोजकों तथा 14 कर्मकारों के। सरकार के 28 प्रतिनिधियों में से 10 का चुनाव नहीं के बराबर होता है तथा यह औद्योगिक द ष्टि से महत्वपूर्ण देश के होते हैं। भारत इसमें से एक सीट रखता है तथा अन्य 9 देश हैं- कनाडा, जापान, फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस, इंग्लैंड तथा अमेरिका। सरकारों के शेष 18 प्रतिनिधियों का चुनाव भी 3 वर्ष में एक बार होता है।

शासकीय निकाय में कार्य को त्रिपक्षीय स्थायी समितियों से सहायता प्राप्त होती है जो कि अंतिम बार जून, 1984 में निर्मित की गई थी तथा उनका स्वरूप निम्नलिखित तालिका के अनुसार है।

शासकीय निकाय की प्रायः वर्ष में तीन बार बैठक होती है तथा उनके सभापति तथा उप-सभापति का चुनाव प्रतिवर्ष होता है। सभापति सरकारों के प्रतिनिधियों में से चुना जाता है तथा उपसभापति नियोजक तथा कर्मकारों के प्रतिनिधियों में से चुना जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन श्रम एवं सामाजिक प्रश्नों के लिए संसार की संसद है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के 75 सम्मेलन जून, 1988 तक हो चुके हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का 78वां अधिवेशन जिनेवा में जून, 1991 में हुआ तथा 81वां सम्मेलन अक्टूबर 1994 में संपन्न हुआ है।

यह सम्मेलन जो साधारणतया प्रतिवर्ष होता है, प्रत्येक सदस्य राष्ट्र चार प्रतिनिधियों का एक प्रतिनिधि मंडल भेजता है। इनमें से दो प्रतिनिधि सरकार के, एक प्रतिनिधि संगठित मालिकों का तथा एक प्रतिनिधि संगठित श्रमिकों का होता है। इनमें सलाहकार भी सम्मिलित होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सरकारी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा श्रमिक संघों के अंतर्राष्ट्रीय निकायों के प्रतिनिधियों को भी सम्मेलन में भाग लेने की अनुमति दे देता है। यह सम्मेलन अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की नीति निर्धारण संस्था के रूप में भी कार्य करता है। सम्मेलन का मुख्य कार्य यह है कि अभिसमय (Conventions) और सिफारिशों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संहिता (International Labour Code) का नाम दिया जाता है। सम्मेलन संगठन के चालू तथा भावी कार्य के संबंध में भी प्रस्ताव पास करता है। यह प्रतिवर्ष संगठन के बजट का भी निर्धारण करता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधारभूत सिद्धांत
(Fundamental Principles of the I.L.O)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का आधार 9 आधारभूत सिद्धांत है जो कि एक श्रमिक चार्टर में दिये गये हैं। राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य को इन सिद्धांतों को स्वीकार करना होता है। ये सिद्धांत निम्नांकित हैं-

1. मार्गदर्शक सिद्धांत यह होगा कि श्रम को केवल पदार्थ अथवा वाणिज्य की वस्तु नहीं समझा जाना चाहिये।
2. सप्ताह में कम से कम 24 घंटे का अवकाश मिलना चाहिये और जहां भी संभव हो यह अवकाश रविवार को होना चाहिए।
3. सेवायोजन और कर्मचारियों को सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघ बनाने के अधिकारों को मान्यता दी जानी चाहिए।
4. देश और समय के अनुसार उचित प्रकार के जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए कर्मचारियों को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था होनी चाहिए।
5. दिन में 8 घंटे के कार्य और सप्ताह में 48 घंटे के सिद्धांत को उन सभी स्थानों पर लागू कर देना चाहिए जहां अब तक ये लागू नहीं है।
6. यह सिद्धांत लागू करना चाहिए कि समान मूल्य के कार्यों के लिए स्त्री तथा पुरुषों को समान पारिश्रमिक मिले।
7. श्रमिकों के लिए किसी भी देश में जो भी कानून बनाये जायें, उनमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी श्रमिकों को, चाहे वे देशवासी हों अथवा विदेशी, बराबर का आर्थिक व्यवहार मिले।
8. बालकों से काम लेना बंद कर देना चाहिए और किशोरों के रोजगार पर भी रोकथाम होनी चाहिए, ताकि उनकी शिक्षा के चालू रहने के साथ-साथ उन्हें उचित रीति से शारीरिक विकास का भी अवसर प्राप्त हो सके।
9. प्रत्येक राज्यों को निरीक्षण की ऐसी पद्धति अपनानी चाहिए जिसमें स्त्रियां भी भाग ले सकें ताकि कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए जो भी नियम अथवा विधान बनें, उन्हें उचित रीति से लागू किया जा सके।

मई 1944 में फिलाडेलफिया की घोषणा द्वारा अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पुनर्व्यवस्था की गई। इस घोषणा में निम्न उद्देश्यों पर बल दिया गया था- जीवन स्तर को ऊंचा करना, पूर्ण रोजगार, श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधायें देना, मजदूरी और आय से संबंधित नीतियां अपनाना, काम करने की दशाओं और समय में सुधार करना, सामूहिक सौदाकारी के अधिकार को मान्यता देना, मालिकों और श्रमिकों के मध्य सहयोग को स्थापित करना, कल्याण कार्य, सामाजिक सुरक्षा साधनों का विस्तार करना, शिक्षात्मक एवं व्यावसायिक अवसरों में समानता प्रदान करना आदि।

इस घोषणा में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधारभूत सिद्धांतों को फिर से दोहराया गया- " (i) श्रम कोई पदार्थ नहीं है। (ii) अभिव्यक्ति तथा साहचर्य की स्वतंत्रता निरंतर प्रगति के लिए बहुत आवश्यक है। (iii) यदि किसी स्थान पर भी निर्धनता होती है तो उसके कारण हर स्थान पर संपन्नता को खतरा उत्पन्न होता है। (iv) दरिद्रता और अभाव के विरुद्ध युद्ध करने के लिए

प्रत्येक देश में पूर्णरूप से शक्ति लगानी होगी। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि निरंतर तथा पूर्णरूप से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ही प्रयत्न किये जायें। ऐसे प्रयत्न इस प्रकार हों कि मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि सरकार के प्रतिनिधियों के तथा समान-प्रतिष्ठा से स्वतंत्र रूप से वाद-विवाद कर सकें तथा अपने सम्मान को बढ़ाने तथा कल्याण के लिए लोकतंत्रात्मक निर्णय कर सकें।"

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रमुख उद्देश्य
(Main Objectives of the I.L.O)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं-

1. प्रत्येक काम करने के योग्य श्रमिक के लिये रोजगार की व्यवस्था करना।
2. श्रमिकों के रहने के लिए उचित निवास स्थानों की समुचित व्यवस्था करना।
3. प्रत्येक श्रमिक को उसके योग्य काम में लगाना।
4. श्रमिकों की आय में व द्धि करके जीवन स्तर को ऊंचा उठाना।
5. श्रमिकों की गतिशीलता की सुविधाओं की व्यवस्था उचित रूप से करना।
6. श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा का समुचित प्रबंध करना।
7. सामूहिक सौदों के अधिकार को सम्मान तथा प्रोत्साहन देना।
8. श्रमिकों की शिक्षा तथा उनके प्रशिक्षण का प्रबंध करना।
9. उत्पादन क्षमता की व द्धि का प्रबंध करना।
10. श्रम अथवा अन्य प्रकार की नीतियां ऐसी हों जिससे आर्थिक विकास में श्रमिकों को समान भाग उपलब्ध हो सके।
11. श्रमिकों के लिए मनोरंजन आदि का समुचित प्रबंध करना।
12. समान श्रम के लिए समान मजदूरी दिलाने की व्यवस्था करना।
13. बाल कल्याण की व्यवस्था करना।
14. बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाना।
15. काम करने की दशाओं में आवश्यक व उचित सुधार करना।
16. प्रसूति संरक्षण की व्यवस्था तथा उसके लिए आवश्यक नियमों का पालन करना।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्य
(Function of the I.L.O.)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न कार्यों को संपन्न करती है-

1. **प्रकाशन संबंधी कार्य** - संगठन सारे संसार के श्रम की समस्याओं का अध्ययन करता है और इस विषय पर आवश्यक शोध भी करता है। इस उपयोगी सामग्री को पत्र-पत्रिकाओं, किताबों आदि के माध्यम से लगातार संबंधित दलों को पहुंचाया जाता है। अभी तक हजारों छोटी-बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है। एक विभाग International Institute of Labour Studies सन् 1960 में भी स्थापित हुआ है। इसके पुस्तकालय में दो लाख किताबें हैं।
2. **विशेषज्ञों द्वारा मार्ग-दर्शन** - संगठन का दूसरा कार्य विभिन्न देशों को अपने देश की श्रम की दशा में सुधार करने के लिए सलाह देना है। संगठन के अंतर्गत 9 विशेष समितियां हैं जो देशों में नये सुधार करने में मदद करती हैं। भारत, पाकिस्तान, फिलीपाइन आदि देशों में सामाजिक सुरक्षा संबंधी योजनाएं तैयार करने में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने महत्वपूर्ण सहायता दी थी। सन् 1950 में एशियाई समस्याओं पर सलाह देने के लिए एक समिति बनी थी। सन् 1959 में अफ्रीकन सलाह समिति और सन् 1965 में अन्तः अमेरिकी समिति का निर्माण भी हुआ है।

3. **विधायक कार्य** - बताया जा चुका है कि सम्मेलन में प्रतिवर्ष कुछ प्रस्ताव पारित होते हैं जिनकों सदस्य राष्ट्र अपनी विधान सभाओं में विचार के लिए रखते हैं। बहुधा इनके आधार पर सदस्य राष्ट्र आवश्यक विधान बनाते हैं। इन प्रस्तावों को सामूहिक रूप से अंतर्राष्ट्रीस श्रम संहिता (International Labour Code) कहा जाता है। सन् 1973 तक सम्मेलन के 49 अधिवेशनों में 136 अभिसमय (Conventions) और 144 अभिमत (Recommendations) स्वीक त हो चुके थे।

4. **तथ्यों की खोज** - संगठन तथ्यों की खोज करने वाली एजेंसी है। यह अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति में सामाजिक और श्रम-संबंधों के क्षेत्र में उपस्थित समस्याओं का अध्ययन करता है तथा विशिष्ट श्रम-समस्याओं पर साहित्य का प्रकाशन करता है। संगठन के विशेषज्ञ (जो सदस्य-देशों की सरकारों, सेवायोजकों और श्रमिक संगठनों के प्रतिनिधियों में से चुने जाते हैं तथा जिन्हें संगठन के उद्देश्यों एवं कार्यों के बारे में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है) सदस्य देशों की विविध समस्याएं (जैसे- कुशल श्रमशक्ति, बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार, श्रमिक संघ बनाने का अधिकार, रोजगार विनिमालय, सामाजिक सुरक्षा, कार्य दशाएं, श्रम कल्याण, आदि सुलझाने के तरीकों पर अपनी रिपोर्ट देते हैं।

5. **सामाजिक प्रगति हेतु रीति-निर्धारण** - संगठन चुनींदा क्षेत्रों में सामाजिक प्रगति के रीति-निर्धारक (Pace Setter) स्वरूप का काम करता है, अपने वार्षिक सम्मेलनों में यह अभिसमयों और सिफारिशों के प्रलेख प्रस्तुत करता है, जो स्वीक त होने के बाद उचित कार्यवाही हेतु सदस्य-सरकारों को प्रेषित किये जाते हैं।

6. **सूचना, परामर्श और तकनीकी सहायता** - संगठन का जिनेवा स्थित प्रधान कार्यालय उन देशों को आवश्यक सूचनाएं, सलाह और तकनीकी सहायता प्रदान करता है, जो सामाजिक विधान बनाने या सामाजिक संगठन से संबद्ध अपनी समस्याएं हल करना चाहते हैं। संगठन द्वारा भेजे गए शिष्ट-मंडल ऐसे परामर्श देते हैं जो संपूर्ण संसार की विशिष्ट समस्याओं के अनुभव पर आधारित होते हैं।

7. **विश्व रोजगार कार्यक्रम** - संगठन का उल्लेखनीय प्रयास 1969 से आरंभ 'विश्व रोजगार-कार्यक्रम' है जिसका भारत सरीखे विकासशील देशों के लिए विशेष महत्व है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सदस्य देशों की ऐसी नीतियां लागू करने के लिए तकनीकी सहायता एवं विशेषज्ञों को परामर्श प्रदान करता है, जिनके द्वारा उत्पादक-रोजगार की मात्रा बढ़ायी जा सके तथा बेरोजगारी या अपूर्ण रोजगार की मात्रा घटायी जा सके।

क्षेत्रीय सम्मेलन
(Regional Conference)

सन् 1944 के फिलाडेलिया सम्मेलन में यह निश्चय हुआ कि अविकतिस देशों की समस्यायें अलग हैं। अतः उन पर विचार करने के लिए अलग से क्षेत्रीय सम्मेलन होना चाहिएं तदनुसार कई अधिवेशन एशिया में किये गये हैं। इनमें भी त्रिदलीय आधार पर 2 प्रतिनिधि सदस्य राष्ट्रों की सरकारों के, 1 मजदूरों का तथा 1 उद्योगपति का होता है। प्रारंभिक एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन 27 अक्टूबर, सन् 1947 को हुआ। सन् 1950 में एशियाई समस्याओं पर एक सलाहकार समिति बनाई गई। एशिया के क्षेत्रीय सम्मेलन कई हो चुके हैं। सन् 1950 में लंका, सन् 1953 में जापान में, सन् 1957 में दिल्ली में, सन् 1962 में मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया में हुए एशियाई सम्मेलनों में महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये जा चुके हैं।

एशिया के अतिरिक्त अफ्रीकन देशों की भी एक सलाहकार समिति बनाई गई है। सन् 1960 के पहले अफ्रीकन क्षेत्रीय सम्मेलन नाइजीरिया के लागोस नामक नगर में हुआ था। इसके अतिरिक्त समय-समय पर क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं पर विचार करने के लिए विचार गोष्ठियां भी आयोजित की जाती हैं। विभिन्न समस्याओं को लेकर इस प्रकार की बहुत सी बैठकें को चुकी हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब संयुक्त राष्ट्र का एक अंग बन चुका है। सन् 1946 के मौन्ट्रियल के एक प्रस्ताव द्वारा राष्ट्र-संघ के संविधान में इस विषय का प्रस्ताव पहले ही पास किया जा चुका है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और भारत
(International Labour Organisation and India)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम-समस्याओं पर विचार-विमर्श में भारत के योगदान का इतिहास स्वतंत्रता-प्राप्ति से बहुत पहले आरंभ होता है। भारत प्रारंभ में (1919) ही अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का सक्रिय सदस्य रहा है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने 1986 तक 159

अभिसमय दिये हैं। भारत ने समस्त अभिसमयों को स्वीकार करके 1989 तक उनमें से केवल 34 को मान्यता प्रदान की है। जिनमें से अभिसमय संख्या 2 बेरोजगारी अभिसमय 1919 की मान्यता समाप्त कर दी।

इस प्रकार भारत ने 34 अभिसमय स्वीक त किए हैं और उनके आधार पर देश में श्रम विधान बनाए हैं। इन नियमों से भारतीय मजदूरों को बहुत लाभ हुआ है। इन अभिसमयों के अतिरिक्त 32 सिफारिशें भी भारत स्वीकार कर चुका है।

भारत सब अभिसमयों को स्वीकाार नहीं कर सका; इसके कई कारण हैं-

1. अभिसमय का नियम है कि उसे पूरा स्वीकार करना होता है अथवा अस्वीकार करना होता है। भारत में बहुधा ऐसी परिस्थितियां नहीं रहीं कि अभिसमय को स्वीकार किया जाए।
2. भारत में 1947 तक विदेशी सरकार थी जो कि श्रम के हित के संबंध में उदासीन थी। उसने इस संबंध में अधिक ध्यान नहीं दिया।
3. भारतीय श्रम-आंदोलन की शिथिलता के कारण भी सरकार पर जोर नहीं डाला जा चुका कि वह आवश्यक विधान बनाये।
4. कुछ अभिसमय ऐसे भी थे जो भारत की परिस्थिति में लागू नहीं होते थे अथवा ऐसे उद्योगों से संबंधित थे जो भारत में अधिक महत्त्व नहीं रखते थे।

भारत को अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ द्वारा की गई सहायता

भारत ने समय-समय पर संगठन द्वारा प्रदत्त तकनीकी सहायता, सलाह तथा प्रशिक्षण संबंधी सहायता का लाभ उठाया है। 26 अप्रैल, सन् 1951 को एक निर्णय लिया गया कि संगठन अविकसित देशों को तकनीकी सहायता देगा। परंतु इससे पूर्व भी संगठन ने अविकसित देशों की सहायता की थी। सन् 1953 में संगठन ने अपने विशेषज्ञ भारत भेजे थे, उन्होंने सामाजिक सुरक्षा पर अपनी राय दी। सन् 1951 में कार्य के आधार पर मजदूरी का भुगतान करने के विषय में विशेषज्ञों ने भारत का मार्ग-दर्शन किया। सन् 1953 में बागान मजदूरों के रोजगार से संबंधित जापानी विशेषज्ञ भारत में आये थे। सन् 1953 में संगठन ने एक विशेषज्ञ इस बात के लिए भेजा था कि उद्योगों में लगे हुए मजदूरों को प्रशिक्षण देने के लिए किसी योजना के बनाने में सहायता करें। इस विशेषज्ञ ने बड़ौदा, अहमदाबाद आदि में प्रशिक्षण शिविर चलाये। सन् 1954 में एक अन्य विशेषज्ञ ने मध्य प्रदेश में प्रशिक्षण की व्यवस्था की। इन लोगों के निर्देशन में बड़ौदा, कानपुर, कोयम्बटूर, बंगलौर, जमशेदपुर आदि में अनेकों प्रशिक्षण केंद्र बनाये गये। औद्योगिक शिक्षा देने के लिए संगठन ने सन् 1955 और सन् 1959 के बीच 6 विशेषज्ञ भारत भेजे। इनके निर्देशन पर बम्बई और कलकत्ता में प्रशिक्षण केंद्र (Instructor's Training Centres) स्थापित किये गये। रोजगार सेवा के संचालन के लिए 2 विशेषज्ञ भारत भेजे गये थे। सन् 1957 में दिल्ली में एक कार्यक्रम बनाया गया था कि जिसके अंतर्गत व्यवसायिक मार्गदर्शन तथा सलाह (Vocational Guidance and Employment Counselling) का प्रशिक्षण एशिया के देशों के लिए रखा गया। उत्पादकता और दक्षता बढ़ाने के संगठन ने मूल्यवान सहायता दी है। राष्ट्रीय उत्पादकता समिति (National Productivity Council) के अधिकारियों को संगठन के विशेषज्ञों ने मार्ग दर्शन दिया। सन् 1949 में बंगलौर में संगठन ने एक केंद्र स्थापित किया जिसमें एशिया के देशों में प्रशिक्षण तथा मार्ग-दर्शन दिया जाता है। सन् 1968 के अंत तक 169 भारतीयों को विदेश प्रशिक्षण के लिए भेजा जा चुका था और 61 विशेषज्ञों की सहायता भारत को मिल चुकी थी।

श्रम नीति एवं श्रम विधान पर संगठन का प्रभाव
(Impact of I.L.O. on Labour Policy and Legislation)

भारत के क षि प्रधान होने पर भी यहां पर औद्योगिक क्रांति ने जन्म ले लिया है। यहां पर जनाधिक्य होने के कारण श्रमिकों की पूर्ति, उनको मांग से सदैव अधिक रही है। दुर्भाग्यवश भारत में श्रमिक संघ भी कभी शक्तिशाली नहीं रहे और न उनका विकास स्वास्थ्य एवं सुद ढ़ आधारों पर हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से समस्त विश्व के श्रमिक वर्ग में एक नवीन चेतना उत्पन्न हुई तथा अब यह शांत रहकर नियोजकों की अत्याचारपूर्ण नीति सहन नहीं कर सकता। देश की प्रजातंत्र प्रणाली भी श्रमिक वर्ग के साथ सहानुभूति रखती है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार गत वर्षों में भारत का अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में योग महत्वपूर्ण रहा है। वार्षिक सम्मेलनों तथा अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की औद्योगिक समिति में देश को भाग लेने की द ष्टि से अच्छी प्रकार से तैयार होना चाहिए तथा

प्रतिनिधियों का चुनाव समय से काफी पहले कर देना चाहिए। श्रम मंत्री को चाहिए कि वह प्रतिनिधियों की एक प्रारंभिक मीटिंग एजेंडा कार्यक्रमों पर विचार करने के लिए बुलाये। यह हमारे प्रतिनिधियों को सम्मेलन में भाग लेते समय मार्गदर्शन में सहायता करेगा।

भारत में श्रम सन्नियमों पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से पड़ा है। यहां पर प्रारंभिक अवस्थाओं में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमयों (Conventions) ने श्रम सन्नियम के निर्माण की दिशा में पहल करने पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला था। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना कुछ विशेष सिद्धांतों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है।

भारत के लिए उपयुक्त श्रम-नीति एवं श्रम-संहिता के विकास में अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के अभिसमयों एवं सिफारिशों से प्रेरणा प्राप्त हुई है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के भारत द्वारा अपनाए गए प्रमुख अभिसमय (Conventions) निम्न प्रकार हैं-

1. 1921 में पारित काम के अधिकतम घंटों के निर्धारण से संबंधित अभिसमय भारत ने आंशिक रूप से 1922 में तथा सामान्य रूप से 1946 में अपनाया।
2. 1919 में पारित स्त्रियों और किशोरों से रात्रि के समय काम न कराने से संबंधित अभिसमय भारत ने 1921 में अपनाया।
3. 1921 में पारित साप्ताहिक अवकाश से संबंधित अभिसमय भारत ने 1923 में अपनाया।
4. समुद्र में रोजगार पर लगे किशारों और बाल-श्रमिकों की अनिवार्य चिकित्सा-जांच कराने के संबंधित अभिसमय (1921 में पारित) भारत ने 1922 में अपनाया।
5. 1923 में पारित क षि-श्रमिकों का संगठन बनाने का अधिकार संबंधी अभिसमय भारत ने 1923 में ही लागू कर दिया।
6. 1925 में पारित व्यावसायिक रोगों से पीड़ित श्रमिकों के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था से संबंधित अभिसमय भारत ने 1927 में अपनाया।
7. 1925 में पारित दुर्घटना ग्रस्त श्रमिकों को क्षतिपूर्ति का भुगतान करते समय देशी और विदेशी श्रमिकों के साथ समान व्यवहार से संबंधित अभिसमय भारत ने 1927 में अपनाया।
8. 1926 में पारित समुद्री जहाज में मालिकों और कर्मचारियों के बीच समझौते के अन्तर्नियमों की व्यवस्था से संबंधित अभिसमय भारत ने 1932 में अपनाया।
9. 1929 में पारित जहाजों द्वारा यातायात किये गये भारी गट्ठों पर भार का चिन्ह लगाने की व्यवस्था से संबंधित अभिसमय भारत ने 1931 में अपनाया।
10. 1932 में पारित जहाजों पर भार चढ़ाने-उतारने में संभावित दुर्घटनाओं से श्रमिकों की सुरक्षा से संबंधित अभिसमय भारत सरकार ने 1934 में 'गोदी कर्मचारी अधिनियम' के अंतर्गत लागू किया।
11. 1935 में पारित खान के भीतर भूमिगत-कार्यों में स्त्री-श्रमिकों को न लगाने से संबंधित अभिसमय भारत ने 1949 में लागू किया।
12. 1947 में पारित उद्योग एवं वाणिज्य में श्रमिकों के निरीक्षण से संबंधित अभिसमय भारत ने 1949 में लागू किया।
13. 1930 में पारित सभी प्रकार के बेगार समाप्त करने से संबंधित अभिसमय भारत ने नवंबर 1954 में अपनाया।
14. 1928 में पारित न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण से संबंधित अभिसमय भारत ने 1948 में अपनाया।
15. 1951 में पारित स्त्री एवं पुरुष श्रमिकों को 'समान कार्य के लिए समान भुगतान' से संबंधित अभिसमय भारत ने 1958 में अपनाया।
16. 1957 में पारित आदिम जातियों की सुरक्षा से संबंधित अभिसमय भारत ने 1959 में अपनाया।
17. 1959 में पारित रोजगार और व्यवसाय में भेद-भाव बरतने से संबंधित अभिसमय भारत ने 1960 में अपनाया।
18. 1962 में पारित देशी एवं विदेशी श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा की समान व्यवस्था से संबंधित अभिसमय भारत ने 1954 में अपनाया।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन द्वारा पारित अभिसमय लागू करने के उद्देश्य से भारत में समय-समय पर श्रम-कानूनों को संशोधित किया गया है। कई अभिसमयों को सरकारी अधिसूचना द्वारा अपनाया गया है। 1954 में भारत सरकार ने एक त्रिदलीय समिति

ऐसे अभिसमयों और सिफारिशों पर विचार करने के लिए बनाई थी, जिन्हें तकनीकी कारणों से लागू नहीं किया जा सका था। समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप भारत सरकार ने कई अभिसमय अपनाए हैं। भारत ने विभिन्न अभिसमयों के आवश्यक अंगों को भी राष्ट्रीय विधान में सम्मिलित किया है। उदाहरणार्थ 1929 के प्रसवकाल से संबंधित अभिसमय को प्रसूति-लाभ अधिनियम से सम्मिलित किया है। 1936 के सवैतनिक अवकाश से संबंधित अभिसमय को राज्य-स्तर पर सवैतनिक अवकाश की वैधानिक व्यवस्था द्वारा अपनाया गया है।

भारत में श्रम-आंदोलन पर संगठन के प्रभाव

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत में श्रम आंदोलन को पर्याप्त सीमा तक अनुप्रेरित किया है। भारत में श्रम-आंदोलन की वास्तविक शुरुआत प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् हुई। इस तरह भारत में श्रम-आंदोलन का प्रांरभ अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की स्थापना के साथ माना जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन ने श्रमिकों में पारस्परिक एकता की भावना को जन्म देकर तथा अधिकारों के प्रति सचेत बनाकर भारतीय श्रम-आंदोलन का विकास प्रेरित किया। चूंकि श्रम-संघों के प्रतिनिधियों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर मिलता है, इसलिए भारत में श्रम-संघों के प्रारंभिक फेडरेशन केवल इसी कारण बने ताकि इन सम्मेलनों में भेजने के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव हो सके। दास के शब्दों में, "वार्षिक अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलनों के अन्य देशों के साथ भारतीय प्रतिनिधियों, विशेषकर भारतीय श्रमिकों के प्रतिनिधियों का घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ है।" उसे अंतर्राष्ट्रीय सुद ढ़ता एवं सामाजिक न्याय के लिए महान् प्रेरणा-स्त्रोत माना जा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने देश के आंदोलन को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। वास्तव में देश में श्रम आंदोलन का प्रारंभ ही अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के साथ हुआ। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारतीय श्रम संघ के आंदोलन को निम्न प्रकार प्रभावित किया है-

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिकों में पारस्परिक एकता की भावना को जन्म दिया है।
2. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिकों में अनेक अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति जाग ति उत्पन्न कर दी है।
3. संगठन ने अपनी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समय-समय पर श्रमिकों को अमूल्य सूचनायें दी हैं।
4. 1947 में नई दिल्ली में स्थापित (Asian Regional Conference) ने भारत के श्रम आंदोलन को बड़ी प्ररेणा प्रदान की है।
5. श्रम संघ संबंधी सेवाओं के क्षेत्र में भारत ने अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त की हैं और श्रम संघ के संबंध में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए श्रमिकों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यक्रम के अंतर्गत अन्य देशों में भेजा है।

अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों का मूल्याकंन

यह संगठन श्रमिकों और संपूर्ण मानवता के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को हम इस क्रम में रख सकते हैं-

1. संसार के श्रम - कल्याण संबंधी बहुत से विधानों की रचना अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रभाव से हुई। भारत में ही 34 अधिसमय (Conventions) और 32 सिफारिशें (Recommendations) स्वीक त की गई हैं जिनके अनुसार कई महत्वपूर्ण कानून पास किये गये और कई कानूनों में संशोधनों किये गये। संसार के अधिकांश देशों के श्रम विधान पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव पड़ा है।
2. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने मजदूरों के सामाजिक सम्मान (Social Status) को बढ़ाने में बहुत मदद दी है। श्रमिक को समाज में एक महत्वपूर्ण एवं सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने में इसका बहुत योगदान रहा है।
3. इसका प्रभाव श्रम-आंदोलन पर भी पड़ा है। सन् 1919 में इसके निर्माण के साथ ही संसार का श्रम-आंदोलन भी प्रोत्साहित हुआ है। भारत में भी ऐसा ही हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन यह मानता है कि मजदूरों को अपनी स्थिति सुधारने के लिए संघर्ष और आंदोलन करने का अधिकार है।
4. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन श्रम की विविध समस्याओं से संबंधित जानकारी एकत्र करने और प्रकाशित करने में बहुत योगदान दिया है। इस संगठन के विशेषज्ञों ने विविध देशों में सामाजिक सुरक्षा, श्रम-कल्याण आदि की योजनाओं के कार्यान्वित

करने में बहुत सहायता दी है। हाल में ही एक कार्यक्रम बना है जिसका नाम है U.N. Expanded Technical Assistance Programme (ETAP) यह तकनीकी सहायता देता है।

5. संगठन ने संसार में भ्रात त्व, मानवता और समानता की भावना का प्रसार किया है। सन् 1964 में संगठन ने दक्षिण अफ्रीका को उसके रंग-भेद की नीति के कारण सदस्यता से हटा दिया था। सामाजिक न्याय दिलाने में इस संगठन ने बहुत कार्य किया है।

6. इस संगठन ने श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊंचा करने में बहुत सहायता दी है। कार्य के घंटे कम करने, मजदूरी बढ़ाने, पेंशन इत्यादि की व्यवस्था करने, आवास आदि का प्रबंध करने, स्वास्थ्य और सुरक्षा की व्यवस्था में इसका बहुत योगदान रहा है।

7. संगठन ने संसार में औद्योगिक विकास में सहायता दी है, परंतु संगठन में अभी बहुत सुधार हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में बड़े राज्यों का बोलबाला है और वे उसकी नीति का निर्धारण नियंत्रण कर सकते हैं। उनमें राजनैतिक दलबंदी भी काफी मात्रा में है। इसके अभिसमय प्रस्तावों को पूर्णतः स्वीकार करना पड़ता है। यह भी एक व्यावहारिक कठिनाई है क्योंकि विभिन्न देशों की परिस्थितियां अलग-अलग होती हैं। फिर एक कठिनाई उन देशों में होती है जहां संघीय शासन होता है और श्रम का विधान केंद्र और राज्य दोनों से ही संबंध रखता है। वहां कोई भी विधान बनाने में केंद्र और राज्यों के संबंधों पर प्रभाव पड़ सकता है। यही कारण है कि अमेरिका ने अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के केवल 7 अभिसमय ही स्वीकार किये हैं और वे भी समुद्री कर्मचारियों से संबंधित हैं जो कि केंद्र का विषय है। ऑस्ट्रेलिया की भी ऐसी ही स्थिति है। भारत के सामने भी इस तरह की कठिनाई आ सकती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को अपने प्रस्तावों को कुछ लोचपूर्ण बनाना चाहिए जिससे कि विभिन्न देशों की आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार उसे बदला जा सके। नई दिल्ली में जनवरी, 1969 में एशिया के श्रम-मंत्रियों की एक सभा में यह प्रस्ताव पास किया गया था कि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अपने प्रस्तावों आदि पर विचार करते समय विकासशील देशों की समस्याओं को भी ध्यान में रखे।

8. अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के सामने आर्थिक संकट रहता है। अभी इसके व्यय का 25% अमेरिका वहन करता है। नवंबर, सन् 1975 में अमेरिका ने संगठन को नोटिस दिया कि वह संगठन को त्याग देना चाहता है। इसमें संगठन के आर्थिक संकट में बहुत व द्धि हो सकती है। वैसे अमेरिका अपने त्याग-पत्र पर फिर से विचार कर रहा है। संगठन को आय के नवीन स्त्रोत खोजने होंगे।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का 75वां अधिवेशन 22 जून, 1988 को जेनेवा में हुआ। इस सम्मेलन में तत्कालीन श्रम-मंत्री श्री जगदीश टाइटलर के नेत त्व में एक त्रिपक्षीय शिष्टमंडल ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य के श्रम और मजदूरी के राज्य सचिव श्री बुल्फगैंग बेरेदर को इस अधिवेशन का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इस सम्मेलन में कई महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई जैसे निर्माण कार्य में सुरक्षा और स्वास्थ्य रोजगार में संवर्धन तथा बेकारी से सुरक्षा अभिसमय 107 जो 1957 में जन-जातियों के विषय में पारित हुआ था पर फिर से विचार किया गया और इसे लागू करने का आग्रह किया गया।

Unit-II

अध्याय-5

श्रम, रोजगार और पुनर्वास मंत्रालय

(Ministry of Labour, Employment and Rehabilitation)

औद्यागिक प्रणाली में श्रम-प्रशासन पर उतना ही ध्यान देने की आवश्यकता होती है, जितनी आवश्यकता उत्पादन की तकनीकी प्रक्रियाओं तथा विपणन की पेचीदा विधियों पर ध्यान देने की होती है। श्रमिकों के संरक्षण हेतु बनाये गये कानूनों और नियमों के उद्देश्यों की पूर्ति तभी संभव है, जबकि इन्हें प्रभावी ढंग से लागू किया जाता है।

भारत में श्रम-प्रशासन मशीनरी का विकास (Evolution of Labour Administration Machinery in India) - प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से पूर्व तक श्रम-प्रशासन से संबंधित मामलों पर केंद्र और प्रांतों के बीच नाम-मात्र का सामंजस्य था, क्योंकि तब तक श्रम-समस्याएं इतनी व्यापक या पेचीदा नहीं बन पाई थीं कि उन्हें गंभीरता से लिया जाता। सर्वप्रथम 1920 में मद्रास और बंगाल में 'श्रम आयुक्त' का विशिष्ट पद स जित किया गया। 1921 में बम्बई सरकार ने भी श्रम-कार्यालयों की स्थापना की। केंद्र और प्रांतों के बीच सामंजस्य को बढ़ावा देने के लिए 1920 में केंद्र सरकार ने 'श्रम-ब्यूरो' की स्थापना की, किंतु 1923 में उसे समाप्त कर दिया गया। केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र की अधिकांश श्रम-समस्याओं के साथ श्रम-विभाग द्वारा व्यवहार किया जाता था, जिसका प्रशासनिक मुखिया सरकार का एक सचिव होता था। प्रांतों में श्रम-विभाग गवर्नर की कार्यकारी परिषद के एक सदस्य को सौंपा जाता था। इस तरह, औद्योगिक द ष्टि से समुन्नत प्रांतों को अपवादस्वरूप छोड़कर, श्रम-प्रशासन हेतू विशिष्टीक त एजेंसी नहीं थी। कार्य की दशाओं, श्रम-संगठनों और औद्योगिक विवादों से संबंधित केंद्रीय कानूनों का प्रशासन प्रांतीय सरकारों का दायित्व था।

'शाही श्रम आयोग' ने प्रांतों में श्रम आयुक्त के कार्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया। 1935 के शासन अधिनियम में श्रम-सन्नियम बनाने तथा उनके प्रशासन का कार्य केंद्र और प्रांतों के बीच स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया गया। इससे पहले केंद्र सरकार को श्रम-संबंधी मामलों में प्रांतीय सरकारों पर निरीक्षण निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार प्राप्त था। द्वितीय महायुद्ध काल में केंद्रीय स्तर पर श्रम-प्रशासन मशीनरी का विस्तार हुआ। श्रम-अनुसंधान समिति की स्थापना के समय अधिकांश प्रांतों में श्रम आयुक्त के कार्यालय थे, जहां श्रमिक अपनी कठिनाइयां प्रस्तुत कर सकते थे। भारत सरकार ने क्षेत्रीय श्रम आयुक्तों तथा समझौता अधिकारियों के अनेक कार्यालय स्थापित किए, जिन्हें विभिन्न क्षेत्रों में समझौता कराने का कार्य सौंपा गया। सरकार ने आयुध कारखानों में 'श्रम-कल्याण' सलाहकार नियुक्त किए। कारखाना निरीक्षकों के लिए केंद्रीय-स्तर पर 'सलाहकार सेवा' आरंभ की गई। 1936 में 'श्रम ब्यूरो' की स्थापना हुई। युद्धोत्तरकाल में रोजगार कार्यालयों तथा प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रसार पर बल दिया गया। इसी अवधि में त्रिपक्षीय सलाहकार मशीनरी का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने केंद्रीय एवं राज्य-स्तरों पर श्रम-प्रशासन के बीच सामंजस्य स्थापित किया।

केंद्रीय स्तर पर श्रम-प्रशासन मशीनरी - भारतीय संविधान की संघसूची और समवर्ती-सूची में सम्मिलित श्रम-संबंधी विषयों (औद्योगिक संबंध, मजदूरियां, श्रम-कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा रोजगार) का प्रत्यक्ष दायित्व भारत सरकार के श्रम और रोजगार मंत्रालय पर है। मंत्रालय इन विषयों के बारे में राष्ट्रीय नीति निर्धारित करता है, जिसे लागू करने का दायित्व राज्य सरकारों पर है। बड़े-बड़े बंदरगाहों, रेलों, खानों, तेल-क्षेत्रों, बैंकों और बीमा कंपनियों (जिनकी शाखायें एक से अधिक राज्यों में फैली हों) बैंकों और बीमा कंपनिों में संलग्न श्रमिक राज्य सरकारों की कार्य-परिधि से बाहर होते हैं। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा योजनायें और कर्मचारी भविष्य-निधि योजनाएं लागू करने का दायित्व भारत सरकार के श्रम, और रोजगार मंत्रालय पर है। मंत्रालय मैंगनीज, बीड़ी उद्योग तथा अभ्रक, खनिज-लोहा, चूनापत्थर एवं डोलोमाइट खानों की श्रम-कल्याण निधियों का प्रशासन करता है।

भारत सरकार का श्रम एवं रोजगार मंत्रालय श्रम-संबंधी विषयों पर विचार-विमर्श हेतु 'केंद्रीय-स्थल' का कार्य करता है। राष्ट्रीय श्रम-नीति के निर्धारण, श्रम-सन्नियमों की क्रियान्विति और श्रम-कल्याण कार्यों के विकास में यह 'केंद्रीय प्रशासनिक संगठन' का कार्य करता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संघ से संबंधित गतिविधियों के लिए यह 'संगम संगठन' के रूप में भी कार्य करता है। यह श्रम-विषयक राज्य सरकारों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करता है; अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के सम्मेलनों में भाग लेता है; अंतर्राष्ट्रीय श्रम-मानक लागू करता है तथा त्रिदलीय श्रम-सम्मेलन आयोजित करता है। मंत्रालय के 'मूल्यांकन एवं क्रियान्वयन प्रभाग' का कार्य यह देखना है कि श्रम-विधान, विवाचक-निर्णय, समझौते, संहिता, आदि तेजी से लागू हो सकें। सरकार, सेवायोजकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों को मिलाकर 'त्रिदलीय कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन कमेटी' स्थापित की गई है। 'मूल्यांकन एवं क्रियान्वयन प्रभाग' इस कमेटी के सचिवालय का कार्य करता है।

भारत सरकार के श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के अधीन कार्य निष्पादन हेतु अनेक निदेशालय और सहायक कार्यालय हैं। नई दिल्ली स्थित रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय श्रम-विषयक नीतियां, कार्य-प्रणालियां तथा मानक निर्धारित करता है। यह देश-भर में रोजगार-सेवा की कार्य-प्रणालियों और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करता है। मुख्य श्रम आयुक्त (जिसका कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है) उन उद्योगों एवं प्रतिष्ठानों में श्रम-सन्नियम लागू करने के लिए उत्तरदायी है जिसके बारे में केंद्र सरकार को 'उपयुक्त अधिकारी' माना जाता है। केंद्रीय श्रम-संगठनों से संबद्ध संघों की सदस्यता का सत्यापन भी इसी का दायित्व है। बम्बई स्थित कारखाना परामर्श-सेवा और श्रम-संस्थानों के महानिदेशालय का संबंध कारखाना और गोदी श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण से है। यह कारखना कानून की कार्य-प्रणाली में समन्वय स्थापित करने तथा उसके अंतर्गत आदर्श नियम बनाने के लिए उत्तरदायी है। यह भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम (1934), उसके अंतर्गत बने नियमों तथा गोदी कर्मचारी सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण योजना (1961) के प्रशासन से संबंधित है। यह औद्योगिक सुरक्षा, औद्योगिक स्वास्थ्य-विज्ञान, व्यवसायजनति रोगों, औद्योगिक मनोविज्ञान तथा औद्योगिक-क्रिया विज्ञान के बारे में अनुसंधान से भी संबंधित है। यह उत्पादकता, औद्योगिक इंजीनियरिंग-तकनीक तथा प्रबंध-सेवाओं में प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। श्रम-ब्यूरों का निदेशालय औद्योगिक विवाद, रोजगार, मजदूरी, कमाई, कार्यदशाओं आदि के बारे में सांख्यिकीय समंक और सूचनायें एकत्रित तथा प्रकाशित करता है। यह औद्योगिक श्रमिकों और खेतिहर मजदूरों के लिए उपभोक्ता-मूल्य निर्देशांकों का संकलन और प्रकाशन भी करता है। धनबाद-स्थित खान-सुरक्षा महानिदेशालय पर खान-अधिनियम (1952) की व्यवस्थायें तथा उनके अंतर्गत बने नियम लागू करने का दायित्व है। यह गैर-कोयला खानों के संबंध मे मात त्वहित अधिनियम (1961) के अंतर्गत बने नियमों का प्रशासन भी करता है।

श्रम-प्रशासन हेतु केंद्रीय मशीनरी के अंतर्गत कुछ स्वायत्तशासी संगठन भी स्थापित किये गये हैं। 'कर्मचारी राज्य बीमा निगम' पर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 लागू करने का उत्तरदायित्व है। 'कर्मचारी भविष्य निधि संगठन' 'भविष्य-निधि', परिवार-पेंशन तथा जमा संबद्ध बीमा योजनायें लागू करने के लिए उत्तरदायी है। 'केंद्रीय कोयला खान-बचाव स्टेशन कमेटी' बचाव स्टेशनों की स्थापना, उनके रख-रखाव एवं परिचालन के लिए उत्तरदायी है। राष्ट्रीय सुरक्षा खान परिषद' का कार्य प्रत्येक खनिज को सुरक्षात्मक उपायों की जानकारी दिलाना तथा सुरक्षा-संबंधी गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करना है। 'राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद' का कार्य फैक्टरियों में सुरक्षा को बढ़ावा देना है। 'श्रमिक-शिक्षा केंद्रीय बोर्ड' का कार्य श्रमिकों को संघवाद के तरीकों में प्रशिक्षण दिलाने की योजनाओं की देखरेख तथा श्रमिकों को उनके उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनाना है। यह शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम-आंदालेन के बारे में श्रमिकों और उन अधिकारियों को प्रशिक्षित करता है, जो औद्योगिक-संबंधों, कार्मिक-प्रबंध तथा श्रम-कल्याण कार्यों की देखभाल करता है।

राज्य-स्तर पर श्रम-प्रशासन मशीनरी - सभी राज्य सरकारों ने अपने अपने क्षेत्र के लिए पारित श्रम-कानूनों के प्रशासन एवं क्रियान्वयन तथा श्रम-सांख्यिकी एवं दूसरी सूनचाओं के संकलन और प्रसारण हेतु संगठन स्थापित किए हैं। सभी राज्यों में श्रम-विभाग की स्थापना के अतिरिक्त, श्रम-आयुक्तों की नियुक्ति की गई, जिन्हें अपने-अपने क्षेत्रों में श्रम-कानूनों और कल्याण-कार्यों के प्रशासन हेतु उत्तरदायी माना गया है। कुछ राज्यों में श्रम-विषयक सांख्यिकी के संकलन हेतु विशिष्ट संगठन 'औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम' (1942) के अंतर्गत स्थापित किये गये हैं, जबकि अन्य राज्यों में श्रम-आयुक्त ही यह कार्य कर रहें हैं। अधिकांश उद्योग-प्रधान राज्यों ने 1948 के कारखाना अधिनियम के प्रशासन हेतु 'मुख्य कारखाना निरीक्षक' तथा

1923 के बॉयलर अधिनियम के प्रशासन हेतु 'मुख्य बॉलर निरीक्षक' नियुक्त किए हैं। कारखानों के मुख्य निरीक्षक (कारखाना-कानून कें अंतर्गत) रोजगार, दुर्घटनाओं से संबंधित आंकड़े (मजदूरी-भुगतान कानून के अंतर्गत) मजदूरी एवं आय-संबंधी सूचनायें एकत्रित करते हैं। 1923 के श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अंतर्गत राज्यों में 'श्रमिक क्षतिपूर्ति आयुक्त' (जो दुर्घटनाओं, क्षतिपूर्ति के भुगतान आदि से संबंधित समंक एकत्रित करते हैं) तथा 1926 के भारतीय श्रम-संघ अधिनियम के अंतर्गत 'श्रमिक संघों के रजिस्ट्रार' (जो श्रमिक-संघों, उनकी सदस्यता एवं कोष से संबद्ध आंकड़े एकत्रित करते हैं) नियुक्त किये जाते हैं। अनुसूचित रोजगारों से संबद्ध श्रमिकों पर लागू होने वाले उपभोक्ता-मूल्य निर्देशांक तैयार करने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने (1948 के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अंतर्गत) 'उपयुक्त अधिकारी' नियुक्त किये हैं। कानूनी आधार पर समंक-संकलन के अतिरिक्त, कुछ राज्यों में प्रचलित समस्याओं से संबंधित समंकों के संकलन हेतु तदर्थ जांच-पड़ताल की जाती है तथा संकलित समंकों को विश्लेषण करके उन्हें वार्षिक समीक्षाओं के रूप में राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित जर्नलों या इंडियन लेबर जर्नल (भारत सरकार में श्रम ब्यूरो द्वारा प्रकाशित) में प्रकाशित किया जाता है।

संगठन
(Organistion)

श्रम और रोजगार विभाग में सहायक दफ्तर, 24 सबऑर्डिनेट आफिस, 10 वैधानिक संगठन, 2 अर्धवैधानिक संस्था व 8 तदर्थ (ad hoc) संगठन पाये जाते हैं।

सचिवालय

सचिव	1
अतिरिक्त सचिव	1
संयुक्त सचिव	2
निदेशक, औद्योगिक संबंध	1
श्रम विभाग सलाहकार	1
विशिष्ट ड्यूटी अधिकारी (कानूनी)	1
उप सचिव (Deputy Secretary)	5
निदेशक, जांच-पड़ताल	1
आर्थिक सलाहकार सहायक	1
अवर सचिव (Under Sacretary)	10
उप निदेशक	4
सहायक निदेशक	17
अनुभाग अधिकारी	2

श्रम और रोजगार विभाग के सचिवालय का कार्य 7 डिवीजनों जैसे खान के खाते और प्रशासन, कारखाना श्रम संबंध, श्रम कल्याण, सूचना और क्रियान्वयन व मूल्यांकन आदि में बांटा गया है। इनका विवरण इस प्रकार है-

1. महानिदेशक, रोजगार और प्रशिक्षण
2. मुख्य श्रम आयुक्त, नई दिल्ली
3. महानिदेशक, कारखाना मशवरा सेवा, नई दिल्ली
4. श्रम ब्यूरो, शिमला।

केंद्रीय श्रम मंत्रालय
(Union Ministry of Labour)

श्रम मंत्री

सचिवालय प्रशासन

Attached Offices (22 Nos)	Subordinate Offices (7 Nos)	Autonomous Organisation
1. महानिदेशक, रोजगार और प्रशिक्षण, नई दिल्ली	1. श्रम आयुक्त दफ्तर- 2 इकाई (बंगलौर, जबलपुर, भुवनेश्वर, कर्मा, इलाहाबाद, भीलवाड़ा, केचेडू, पणजी और उपायुक्त कल्याण बरबिट)	1. ESI, निगम नई दिल्ली
2. मुख्य श्रम आयुक्त, नई दिल्ली	2. महानिदेशक, खान एवं सुरक्षा, धनबाद।	2. अध्यक्ष, केंद्रीय कोयला खान, धनबाद।
3. महानिदेशक, कारखाना मशवरा सेवा और श्रम संस्थान, बम्बई	3. लेखा अधिकारी, अंकेक्षण कक्ष, दिल्ली	3. चेयरमैन, खान सुरक्षा, धनबाद
4. निदेशक, श्रम ब्यूरो, शिमला	4. चेयरमैन, आर्बिट्रेशन बोर्ड, दिल्ली	4. राष्ट्रीय सुरक्षा समिति, बम्बई
	5. औद्योगिक ट्रिब्यूनल व श्रम कोर्ट (10) धनबाद = 3 बम्बई = 2 कानपुर = 1 चंडीगढ़ = 1 कलकत्ता = 1 जबलपुर = 1 नई दिल्ली = 1	5. राष्ट्रीय श्रम संस्थान, नई दिल्ली 6. सी० बी० डब्ल्यू० ई०, नागपुर 7. आयुक्त केंद्रीय भविष्य निधि कोष, नई दिल्ली

श्रम और रोजगार मंत्रालय
(Ministry of Labour And Employment)

1966 में श्रम मंत्रालय का गठन तब किया गया जब पुनर्वास विभाग को श्रम व रोजगार मंत्रालय में मिला दिया गया। यह मंत्रालय एक केंद्रीय मंत्री के आधीन कार्य करता है तथा राज्य मंत्री व उपमंत्री के द्वारा केंद्रीय मंत्री की सहायता की जाती है। इस मंत्रालय में दो विभाग श्रम व रोजगार विभाग और पुनर्वास विभाग होते हैं।

कार्य
(Functions)

भारत के संविधान निर्माताओं ने हालांकि श्रम को संविधान की 7वी अनुसूची में डाला है परंतु श्रम, कल्याण, रोजगार और प्रशिक्षण के संबंध में सारा उत्तरदायित्व केंद्र सरकार का है। औद्योगिक उपक्रमों, श्रम संघों में श्रम सुधार उपाय और स्वास्थ्य सेवाओं, औद्योगिक विवाद मजदूरी नियमन, कार्य की दशाओं आदि के संबंध में राष्ट्रीय नीति का निर्माण श्रम मंत्रालय करता

है। इसके अतिरिक्त यह मंत्रालय इन क्षेत्रों में विभिन्न राज्यों की क्रियाओं को समन्वित करता है और इन क्रियाओं में एकरूपता कायम करता है। यह श्रम राज्य मंत्रियों की कांफ्रेंस, त्रिपक्षीय कांफ्रेंस तथा समितियों आदि के माध्यम से राज्यों को श्रम नीतियों को क्रियान्वित करने में सलाह देता है।

सामाजिक सुरक्षा पद्धतियों जैसे बेरोजगारी, बीमा और प्राविडेंट फंड तथा फैक्ट्ररियों के श्रमिकों को क्रियान्वित करने की सीधी जिम्मेदारी इस विभाग की होती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के अंतर्गत औद्योगिक संबंधों का नियंत्रित किया जाता है। केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के द्वारा रेलवे, खादान, तेल क्षेत्र, मुख्य बंदरगाहों, बैंकिंग और बीमा सत्ता उद्योग में औद्योगिक संबंधों को नियंत्रित करती है।

श्रम व रोजगार विभाग के नियंत्रण में कुछ विषय सौंपे गये हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है-

भाग-1 संघ विषय

(Part-1 Union Subjects)

1. संघीय रेलवे के संबंध में मजदूरी, श्रम विवाद, श्रमिकों को कार्य के घंटे वे श्रमिकों के रोजगार का नियमन इसके अंतर्गत नहीं आते।
2. बंदरगाह-श्रम के संबंध में।
3. श्रम का नियमन और खाद्यानों व तेल क्षेत्रों में सुरक्षा।

भाग-1 समवर्ती विषय

(Part-II Concurrent Subjects)

4. कारखाने।
5. श्रमिकों का कल्याण- श्रमिकों की औद्योगिक, वाणिज्यिक, क षि दशाएं, प्राविडेंट फंड, श्रमिकों के दायित्व और क्षतिपूर्ति, स्वास्थ्य और बीमारी बीमा, बुढ़ापे की पेंशन, कारखानों-औद्योगिक इकाइयों में कार्य की दशाओं में सुधार।
6. बेरोजगारी बीमा।
7. श्रम संघ, औद्योगिक और श्रम विवाद।
8. श्रम आंकड़े।
9. रोजगार और बेरोजगारी।
10. व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण।

भाग-3

(Part-III)

संघीय व मणिपुर, त्रिपुरा क्षेत्र का अतिरिक्त कार्य और

11. भाग-II. में वर्णित मद।

भाग-4

(Part-IV)

उपरोक्त भागों I, II, व III में वर्णित मदों से संबंधित आकस्मिक व्यवसाय।

12. अन्य देशों के साथ हुये समझौतों को क्रियान्वित करना।
13. कानून की अवमानना।
14. पूछताछ और सांख्यिकी।
15. फीस- वह फीस नहीं जो किसी कोर्ट में ली जाती है।
16. उच्चतम न्यायालय के अलावा अन्य सभी कोर्ट की अधिकार क्षेत्र की शक्तियां।

भाग-5 विभिन्न प्रकार के व्यवसाय

(Part-5 Miscellaneous Business)

17. रोजगार केंद्र।
18. भारत व विदेशों दोनों स्थानों के लिए तकनीशियनों, क्राफ्टमैन व इंस्ट्रक्टर (Instructors) की फोरमैन व सुपरवाइजर के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
19. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.).
20. त्रिपक्षीय श्रम वार्ता।
21. युद्ध घायल (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम, 1943.
22. आवश्यक सेवाओं के प्रशासन में सलाह।
23. खानों में कल्याण व सुरक्षा संबंधी और मुख्य खान निरीक्षक के संगठन संबंधी कानूनों का प्रशासन।
24. गोदी कर्मचारी अधिनियम, 1948 का प्रशासन। नियमनों की रूपरेखा तैयार करना।
25. चाय के जिलों का प्रशासन। प्रवासी (emigrant) श्रम अधिनियम और प्रवासी श्रम नियंत्रक का संगठन।
26. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का प्रशासन।
27. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, कर्मचारी कोष अधिनियम और कोयला खादान भविष्य निधि अधिनियम आदि का प्रशासन।
28. केंद्र शासित इकाइयों के श्रम कानूनों का प्रशासन।
29. श्रम ब्यूरों व श्रम आंकड़ों का संगठन।
30. मुख्य श्रम आयुक्त, ट्रिब्यूनल, श्रम कोर्ट आदि का संगठन।
31. मुख्य कारखाना सलाहकार और स्वास्थ्य व कल्याण का संगठन।
32. बंधुआ मजदूर अधिनियम में श्रम की सुरक्षा व प्रशासन।
33. कार्यशील पत्रकारों का प्रशासन।
34. सरकारी श्रम अधिकारियों की भर्ती, नियुक्ति व प्रशिक्षण
35. श्रमिकों की शिक्षा से संबंधित पद्धति।
36. प्रबंध में श्रमिकों की भागेदारी से संबंधित पद्धतियां
37. उद्योग में अनुशासन।
38. एकल उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्ड का गठन।
39. देश में श्रम कानूनों के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करना।

निष्कर्ष

(Conclusion)

श्रम मंत्रालय की भूमिकाओं एवं इकाइयों का अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के बाद कहा जा सकता है कि बढ़ती हुई श्रम समस्याओं को हल करने के लिए तथा मजदूर वर्ग के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए इस मंत्रालय ने काफी योगदान दिया हैं जरूरत इस बात की है कि इस मंत्रालय को स्वायत्त शक्तियां दी जाए ताकि श्रम विधान को शक्ति से लागू किया जा सके। दूसरे शब्दों में मंत्रालय के पास प्रशासकीय मशीनरी राज्य स्तर पर है, परंतु जिला स्तर से नीचे श्रम मंत्रालय एवं अन्य सुविधाओं को प्रभावशाली तरीके से लागू करने की शक्तियां न होकर खामियां (कमजोरी) विराजमान है इसलिए ऐसा प्रबंध किया जाये कि केंद्र राज्य सरकारों को श्रम संबंधी प्रावधानों को लागू करने का आदेश दे सके।

अध्याय-6

मुख्य श्रम आयुक्त (केंद्रीय)
[Chief Labour Commissioner (Central)]

मुख्य श्रम आयुक्त (केंद्रीय) श्रम और औद्योगिक प्रबंध के संदर्भ में मुख्य भूमिका निभाता है। इसको केंद्रीय औद्योगिक सम्ब मशीनरी के नाम से जाना जाता है। वह विभिन्न औद्योगिक अधिनियमों के निर्णयों को लागू करता है और विभिन्न श्रम अधिनियमों और श्रम कल्याण कार्यों को लागू करने में मुख्य भूमिका निभाता है। वह अपने आपको श्रम संघों के संपर्क में रखता है और उन्हे प्रबंध में भागेदारी दिलवाता है। इससे ज़्यादा उसकी भूमिका न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित करने वे लागू करने संबंधित है। मजदूरों को उनकी नौकरी के दौरान, खोज, प्रशिक्षण तथा अनुशासन सहिंता आदि के बारे में महत्वपूर्ण कार्य करता है। भारत सरकार ने पहली बार मुख्य श्रम आयुक्त (केंद्रीय) को 1945 में कर्मचारियों (श्रमिकों) के कल्याण तथा बड़े-बड़े कारखानों और मजदूरों के बीच झगड़े सुलझाने के लिए निपुण किया गया था। इस प्रकार आज भी विभिन्न उद्योगों में औद्योगिक संबंध स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

केंद्रीय श्रम आयुक्त

Chief Labour Commissioner

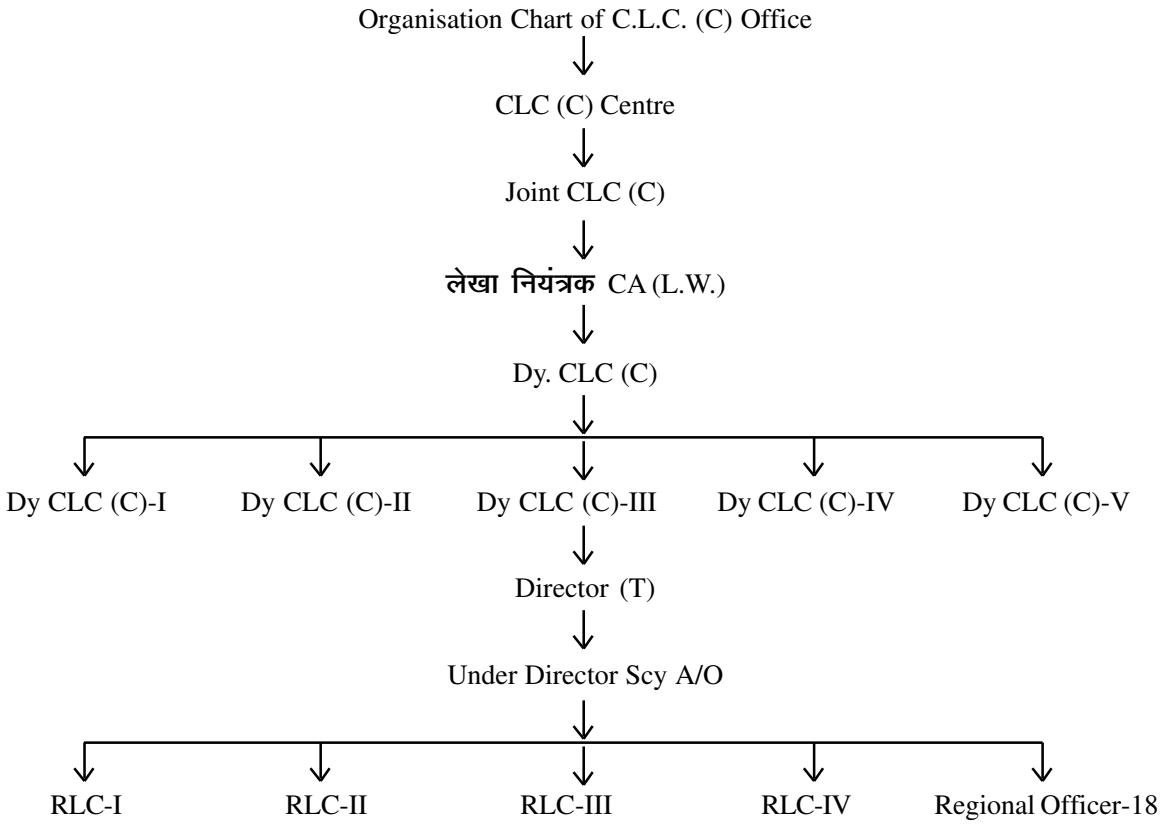

इसके क्षेत्र कार्यालय अहमदाबाद, अजमेर, आसमजोल, बैंगलोर, भुवनेश्वर, बम्बई, नागपुर, कलकत्ता, कोचिन, चंडीगढ़, धनबाद, पटना, गुवाहाटी, हैदराबाद, जबलपुर, कानपुर, मद्रास, देहली हैं।

Function of the Chief Labour Commissioner

1. लोकप्रियता के नाम केंद्रीय श्रम आयुक्त (C) को केंद्रीय औद्योगिक संबंध मशीनरी के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसका मुख्य कार्य केंद्रीय क्षेत्राधिकार के तहत आने वाले उद्योगों में औद्योगिक संबंध मामलों को Deal करना है। इसके अलावा यह औद्योगिक विवादों को रोकने का प्रयत्न करता है तथा उन्हें सुलझाता है जिसके अंतर्गत खान, तेल के कुएं, बंदरगाह, बैंकिंग, जीवन बीमा कंपनियां तथा अन्य उद्योग जो केंद्रीय सरकार या रेलवे मंत्रालय के तहत आते हैं। इसके अलावा छावनी, कर्मचारी जीवन बीमा निगम, Indian Air Lines, Air India Corporation, Agriculture, Refiner, Unit Trust of India, Food Corporation of India etc. ये केंद्रीय क्षेत्राधिकार के तहत आते हैं। इसलिए CLC (C) का उत्तरदायित्व है इनमें (i) सभी उपक्रमों में अच्छे औद्योगिक संबंध बनाए रखना।
2. केंद्रीय श्रमसंघों से संबंधित T.U.S. की सदस्यता की पहचान करना।
3. पंचांटो और समझौतों को लागू करना (Inforcement of Awards and Settlement)
4. Administration of the Labour Laws is the responsibility of the Central Govt. as well as Chief Labour Commissioner.
   i. औद्योगिक रोजगार स्थाई आदेश अधिनियम, 1946. (Industrial Employment Standing Act, 1946).
   ii. मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 (Payment of Wages Act, 1936).
   iii. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948.
   iv. भारतीय रेलवे अधिनियम कार्य घंटों का नियमन, रेलवे तथा बड़े बेड़ों में बाल रोजगार अधिनियम 1938.
   v. कोयला खान भविष्य निधि स्कीम 1948 Act, P.F. & Bonus Schemes, Bonus Payment, 1970.
   vi. ठेका श्रम विनिमय तथा समाप्ति अधिनियम, 1970.
   vii. उत्पादनक भुगतान Act, 1972.
   viii. समान वेतन अधिनियम, 1976.
   viii. Maternity Benefit Act Circus Industries.
   ix. Inter State Migrant Workers.
   x. रोजगार नियमन तथा सेवा शर्तें, 1979.
   xi. मजदूरी दर के बारे में और कार्य हालात के बारे में सूचना प्रदान करता है। केंद्रीय क्षेत्र में वैधानिक तथा गैरवैधानिक कल्याणकारी उपायों को बढ़ावा देना।
   xii. आंकड़ों को इकट्ठा करना (works to pays) केंद्रीय क्षेत्र में कार्य रोधन बंद हो, मजदूरी के संबंध में अधिक आंकड़ों का संकलन करना। श्रम मंत्रालय तथा अन्य नियोजन मंत्रालयों को सलाह देना।
   xiii. संयुक्त प्रबंध परिषद् और कार्यसमितियों को बढ़ावा देना।
   xiv. अनुशासन संहिता भंग करने के संबंध में enquiry करना।

Co-ordination

केंद्रीय (Pool) पूल लगे श्रम कल्याण अधिकारी के कार्यों का समन्वय तथा उनके दिन-प्रतिदिन के कामकाज के मार्गदर्शन करना। Inservice केंद्रीय औद्योगिक संबंध, मशीनरी में कार्य कर रहे क्षेत्रीय अधिकारियों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करना।

इसके अलावा CLC के कार्यालय को वरिष्ठ अधिकारियों में कार्यों का बंटवारा (Allocation) किया जाता है। CLC (C) is the head of the organisation and Joint C.L.C (C).

Joint C.L.C. (C)

राजपत्रित तथा अराजपत्रित अधिकारियों की स्थापना संबंधित मामले, पुस्तकालय नियंत्रण, मुख्य कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के आवास, स्टोरों, वाहने तथा स्टाफ कारों से संबंधित मामले विभिन्न श्रमक के अधीन उत्पीड़न, प्रमाण दावे से संबंधित मामले।

लेखा नियंत्रक

(Chartered Accountant)

केंद्रीय श्रम अधिकारियों का प्रशिक्षण श्रम कल्याण कार्य तथा औद्योगिक समितियों का निरीक्षण सौंपा गया है।

Deputy C.LC. (I)

विभागीय Manual का नियंत्रण, रोकड़ एवं बजट समन्वय बाल श्रम कार्य से संबंधित मामले अंतर्राज्यीय प्रवासी क्रम का अधिनियम के मामलों को Deal करना।

Deputy C.L.C. (II)

यह पोतनो (Ports), बेड़ो (Docks), बैंक, बीमा, हवाई परिवहन निगम तथा अन्य केंद्रीय क्षेत्र में औद्योगिक विवाद तथा समझौते से संबंधित मामलों को सुलझाता है। वह सामान्य श्रम स्थिति के संबंध में रिपोर्ट तथा मंत्रिमंडल की सूचना के लिए रिपोर्ट तैयार करता है। वह न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के तहत मजदूरी की भुगतान (Payment) करना, खान कर्मचारी अधिनियम तथा अन्य अधिनियम के मामले जो केंद्रीय क्षेत्राधिकार के तहत आते हैं उन्हें निपटाता है। इस प्रकार मजदूरी तथा मजदूर बोर्ड, व्यवसाय संघों की सदस्यता के सत्यापन से संबंधित मामले गति एवं दक्षता से संबंधित मामलों को नियंत्रित करता है।

Deputy C.L.C. (III)

औद्योगिक विवाद तथा औद्योगिक मामले अधिनियम, बोनस अधिनियम, फैक्ट्री एक्ट, क्रमगार मुआवजा, अधिनियम, प्रसूति समय सहायता एक्ट, विक्रय एक्ट, सर्कस उद्योगों के मामलों को निपटाता है। इसके अलावा प्रबंधकीय सूचना पद्धति मामले, हिंदी योजना लागू करना तथा योजना निर्माण शामिल है।

Deputy C.L.C. (IV) (Dhanbad)

संपर्क कार्य, कार्य की समीक्षा, औद्योगिक विवाद, संपर्क कार्य आदि से संबंधित होता है। इसके क्षेत्र आसनसोल, कलकत्ता, पटना, गुवाहाटी, धनबाद है।

Deputy C.L.C. (V) (Bombay)

इसके क्षेत्र बम्बई, नागपुर, अहमदाबाद और जबलपुर है।

Director Training

यह केंद्रीय श्रम सेवा अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण योजनाएं, केंद्रीय पुल के श्रम अधिकारियों क्रमकार समितियों, केंद्रीय सरकार उपक्रमों के लिए श्रम कल्याण उपक्रमों के लिए कार्य।

अवर सचिव

राजपत्रित और अराजपत्रित (Gazetted and Not Gazetted) Accomodation, Store, Head Offices and Field Offices क्षेत्र के आवास तथा स्टोर कार्य को देखता है।

Regional Labour Commissioner (I) - Updating of Dept.

समन्वय आदि का कार्य करना, औद्योगिक विवाद तथा समझौतों के मामले।

R.L.C (II)

Parts, Docks, Defences, Railways, F.C.I. Banks, Insurance, Air Transport Corporation.

R.L.C. (III)

Deputy C.L.C. III यह सभी कार्य करता है।

R.L.C. (IV)

He deals with Industrial dispute and concilatation matters, Oil fields, Control, Industrial Planning, Statics and MIMS.
खाद्य नियंत्रण उद्योगों, प्रबंधकीय स्थिति इत्यादि।

निष्कर्ष
(Conclusion)

मुख्य श्रम आयुक्त के कार्य एवं शक्तियों का मूल्यांकन करने के बाद प्रतीत होता है कि वह केंद्रीय श्रम मंत्रालय की श्रम क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। उसे केंद्रीय औद्योगिक झगड़ों को रोकने व निपटाने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। इसके अलावा उसे श्रम कानूनों को लागू करने के लिए जिम्मेवार ठहराया जाता है। इसके अलावा वह श्रम मंत्रालय के लिए भूमिका का कार्य करता है। इस प्रकार मुख्य श्रम आयुक्त केंद्रीय क्षेत्राधिकार में आने वाले उद्योगों में औद्योगिक संबंध निभाने में व्यापक भूमिका निभाता है।

अध्याय-7

राष्ट्रीय श्रम आयोग

(National Commission on Labour)

प्रथम राष्ट्रीय श्रम आयोग
(Ist National Commission on Labour)

सन् 1931 में जबकि श्रम पर शाही आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी थी, तब से श्रम सम्बन्धी कानूनों, औद्योगिक सम्बन्धों तथा श्रमिकों के कार्य करने तथा रहन-सहन की दशाओं की कोई विस्त त रूप से समीक्षा नहीं की गई। श्रम जाँच समिति (1944-46) ने श्रमिकों के कार्य करने व रहन-सहन की दशाओं से सम्बन्धित केवल नवीनतम आँकड़े प्रस्तुत किये थे और कुछ मूल्यवान रिपोर्ट प्रस्तुत की थी तथापि, स्वतंत्रता के पश्चात् से औद्योगिक विज्ञान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। मूलभूत उद्योगों तथा उपभोग्य पदार्थों के उद्योगों की निरन्तर व द्धि, सहकारी क्षेत्र की महत्ता, प्रबन्ध सम्बन्धी ढाँचे में एवं श्रम-शक्ति की प्रक ति तथा रचना में होने वाले परिवर्तन, श्रमिकों के जीवन तथा कार्य से सम्बन्धित विकास कार्यक्रमों का प्रभाव आदि-ये स्वाधीनता के बाद होने वाली कुछ उल्लेखनीय प्रगतियाँ हैं। अतः सरकार ने श्रम-नीति तथा उसकी कार्य-प्रणाली की नई एवं व्यापक समीक्षा करने का निश्चय किया और श्रम-नीति तथा उसकी कार्य-प्रणाली की नई एवं व्यापक समीक्षा करने का निश्चय किया और 24 दिसम्बर, 1966 को एक राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) की नियुक्ति की। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायधीश श्री वी० पी० गजेन्द्र गडकर इस आयोग के अध्यक्ष थे और योजना आयोग के श्री बी० एन० दातार इसके सदस्य सचिव। इसके अतिरिक्त, आयोग के 14 सदस्य और थे जोकि मालिकों, श्रमिकों, स्वतन्त्र सदस्यों तथा अर्थशास्त्रियों के प्रतिनिधि थे। आयोग के मूल गठन के बाद में परिवर्तन किया गया तथा 28 अगस्त, 1969 को रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करते समय अध्यक्ष और सदस्य-सचिव के अलावा आयोग में 12 सदस्य थे। आयोग के विचारार्थ विषय निम्न प्रकार थे-

1. स्वतंत्रता के पश्चात् से श्रमिकों की दशाओं में हुये परिवर्तनों की समीक्षा करना तथा श्रमिकों की वर्तमान दशाओं पर अपनी रिपोर्ट देना।
2. श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए बनाये गये वर्तमान वैधानिक एवं अन्य उपबन्धों (Provision) की समीक्षा करना, उनके लागू होने की प्रगति का मूल्यांकन करना और इस विषय में रिपोर्ट एवं परामर्श देना कि ये उपबन्ध संविधान में राजनीति के श्रम मामलों से सम्बन्धित निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने और समाजवादी समाज की स्थापना करने के राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति करने तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास की सफलता की द ष्टि से कहाँ तक उपयुक्त हैं।
3. निम्न बातों का अध्ययन करना एवं उनके सम्बन्ध में रिपोर्ट देनाः
   (i) श्रमिकों की कमाई के स्तर, मजदूरियों से सम्बन्धित उपबन्ध, न्यूनतम मजदूरियों के निर्धारण की आवश्यकता, जिसमें राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी भी सम्मिलित है और उत्पादकता बढ़ाने के उपाय जिसमें मजदूरों की प्रेरणाओं के उपबन्ध भी सम्मिलित हैं;
   (ii) श्रमिकों का रहन-सहन का स्तर, स्वास्थ्य, कार्य-क्षमता, सुरक्षा, कल्याण, आवास व्यवस्था, प्रशिक्षण एवं शिक्षा और केन्द्र तथा राज्यों के श्रम-कल्याण, आवास व्यवस्था, प्रशिक्षण एवं शिक्षा और केन्द्र तथा राज्यों में श्रम-कल्याण के प्रशासन के लिए प्रचलित व्यवस्थायें;
   (iii) सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान व्यवस्थायें;
   (iv) मालिकों एवं श्रमिकों के पारस्परिक सम्बन्धी की दशा तथा स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्धों एवं राष्ट्र के हितों की व द्धि

करने में श्रमिक संघों एवं मालिकों के संगठन का योगदान;

(v) श्रम सम्बन्धी कानून तथा ऐच्छिक व्यवस्थायें, जैसे कि अनुशासन संहिता, संयुक्त प्रबन्ध परिषदें, ऐच्छिक पंच निर्णय व मजदूरी बोर्ड और केन्द्र व राज्यों में उनके लागू होने की व्यवस्था;

(vi) ग्रामीण श्रमिकों के अन्य वर्गों की दशायें सुधारने के उपाय; और

(vii) श्रमिकों से सम्बन्धित सूचनाओं एवं अनुसंधान की वर्तमान व्यवस्थायें; और

4. ऊपर उल्लेख किये गये विषयों के सम्बन्धों में सिफारिशें देना।

आयोग ने श्रमिकों को काम पर लगाने वाले मन्त्रालयों, राज्य सरकारों, मालिकों एवं श्रमिकों के संगठनों तथा श्रम समस्याओं में रुचि लेने वाले अन्य संगठनों के लिये एक विस्त त प्रश्नावली भेजी। आयोग के कुछ विशिष्ट विषयों एवं कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों की श्रम समस्याओं के अध्ययन के लिये 30 अध्ययन दलों, 3 समितियों तथा 5 कार्य-दलों की स्थापना की। मौखिक गवाहियाँ एकत्र करने के लिये आयोग ने विभिन्न राज्यों का भ्रमण भी किया। विभिन्न राजनीतिक दलों से सम्बन्धित संसद-सदस्यों, प्रमुख व्यक्तियों, एवं सरकारी अधिकारियों से विचार-विमर्श किया तथा श्रम सम्बन्धी विषयों पर अनेक गोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन किया और उनमें भाग लिया। आयोग ने भारत सरकार के श्रम व रोजगार विभाग के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय से भी सम्पर्क रखा।

आयोग की रिपोर्ट 28 अगस्त 1969 को सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गई।

प्रथम श्रम आयोग की सिफारिशें इस प्रकार है-

श्रम नीति सम्बन्धी सिफारिशें

(Recommendation on Labour Policy)

श्रम पर राष्ट्रीय आयोग (1969) की रिपोर्ट में कहा गया था कि विगत 20 वर्षों में देश में जो श्रम नीति लागू की गई, उसके मुख्य आधारभूत तत्त्व संक्षेप में इस प्रकार हैं-

1. राज्य को, जो समाज के हितों का संरक्षक है, परिवर्तनों एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों के उत्प्रेरक (Catalyst) के रूप में मान्यता प्रदान करना;
2. यदि श्रमिकों को न्याय प्रदान करने से इन्कार किया जाए तो शान्तिपूर्ण सीधी कार्यवाही से उनके अधिकार को मान्यता देना;
3. पारस्परिक समझौतों, सामूहिक सौदाकारी एवं ऐच्छिक पंच निर्णय के लिये प्रोत्साहन देना;
4. सभी सम्बन्धित वर्गों के साथ न्यायोचित व्यवहार करने की द ष्टि से कमजोर पक्ष के समर्थन में राज्य द्वारा हस्तक्षेप करना;
5. औद्योगिक शान्ति बनाये रखने को प्रमुखता देना;
6. मालिक तथा श्रमिकों के बीच साझेदारी (partnership) की दिशा में ऐसा रचनात्मक एवं ठोस प्रयास करना कि जिसे समाज की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति सर्वोत्तम सम्भव तरीके से की जा सके;
7. 'न्यायोचित मजदूरी' के स्तरों एवं सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था के विषय में आश्वस्त करना;
8. उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के लिये सहयोग करना;
9. विधान को यथेष्ट रूप से लागू करना;
10. उद्योग में श्रमिक का दर्जा ऊंचा उठाना, और
11. त्रिदलीय विचार-विमर्श करना।

इन सिद्धान्तों की रूपरेखा प्रथम योजना में सम्मिलित की गई थी और बाद की योजनाओं (plans) में उनकी पुष्टि की जाती रही है।

इन कथनों से हमारे देश में श्रम सम्बन्धी समस्याओं की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। अतः इन सब समस्याओं को भली भाँति समझना अत्यन्त आवश्यक है।

श्रमिक संगठन सम्बन्धी सिफारिशें
(Recommendation on Trade Unions)

राष्ट्रीय श्रम आयोग (1969) के अनुसार, श्रमिक संघ का संगठन किस आधार पर किया जाय, यह एक ऐसा मामला है जिसका निर्धारण स्वयं श्रमिकों द्वारा ही अपनी आवश्यकताओं एवं अनुभवों के आधार पर किया जाना चाहिये। श्रमिक संघों को अपने सदस्यों के प्रति मूलभूत जिम्मेदारियों को तो निभाना चाहिये ही, साथ ही उन्हें कुछ ऐसे सामाजिक उत्तरदायित्वों का भी यथेष्ट ध्यान रखना चाहिये, जैसे कि राष्ट्रीय एकता की व द्धि, देश की सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों को प्रभावित करना तथा अपने सदस्यों में देश तथा उद्योग के प्रति जिम्मेदारी की भावना पैदा करना। आयोग ने सिफारिश की कि शिल्पी संघों के निर्माण को हतोत्साहित किया जाना चाहिये तथा केन्द्र बनाम उद्योग संघों एवं राष्ट्रीय संघों के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। श्रमिक संघों की कार्यसमिति में गैर-श्रमिकों द्वारा पद ग्रहण करने पर कोई प्रतिबन्ध तो नहीं लगाना चाहिये परन्तु उनकी संख्या कम कर दी जानी चाहिये। इस बात के भी प्रयत्न किये जाने चाहियें कि श्रमिकों में से ही नेत त्व उत्पन्न हो और वह अधिक जिम्मेदारी से इस दिशा में योगदान करें। इस आन्तरिक नेत त्व को तंग करने की प्रव त्ति नहीं होनी चाहिये। साथ ही, भूतपूर्व श्रमिकों एवं कर्मचारियों को बाहरी व्यक्ति नहीं माना जाना चाहिये। आयोग का कहना है कि श्रमिक संघों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताओं से सम्बन्धित विवाद के निपटाने का काम केन्द्रीय संगठन पर छोड़ दिया जाना चाहिये। आयोग के अनुसार, श्रमिक संघों का पंजीकरण सभी कारखाना संघों तथा औद्योगिक संगमों के लिये अनिवार्य होना चाहिये, परन्तु केन्द्रीय संगठनों के लिये यह अनिवार्यता नहीं होनी चाहिये। एक नये श्रमिक संघ की स्थापना के लिये सदस्यों की न्यूनतम संख्या बढ़ाकर कारखाने के नियमित श्रमिकों की 10 प्रतिशत (बशर्ते कि 7 से कम सदस्य न हों) अथवा 100, जो भी कम हो, कर दी जानी चाहिये। श्रमिक संघ का न्यूनतम सदस्यता शुल्क 25 पैसे प्रति माह से बढ़ाकर 1 रु० प्रति माह कर दिया जाना चाहिये।

आयोग ने श्रमिक संघों की सुरक्षा से सम्बन्धित कुछ व्यवस्थाओं पर भी विचार किया, जैसे कि संघ-पाबन्द श्रमालय (Closed shop) तथा संघ-श्रमालय (Union shop) आदि की व्यवस्था के सम्बन्ध में। संघ की सुरक्षात्मक व्यवस्थाओं में मालिक के साथ किये गये उस समझौते को भी सम्मिलित किया जाता है जिसके अन्तर्गत मालिक ऐसे श्रमिक को नौकरी पर नहीं लगा सकता जो श्रमिक संघ का सदस्य न हो। इस व्यवस्था के दो विभिन्न रूप ये हैं:

1. पूर्व-प्रवेश (Pre-entry) या संघ पाबन्द श्रमालय, जिसके अन्तर्गत मालिक केवल श्रमिक संघ के सदस्य-श्रमिकों को ही भर्ती करता है। इससे श्रमिकों के सम्भरण पर संघ का नियन्त्रण रहता है।
2. उत्तर-प्रवेश (Post-entry) या संघ-श्रमालय, जिसके अन्तर्गत नये भर्ती होने वाले श्रमिक यदि श्रमिक संघ के सदस्य नहीं होते तो उन्हें एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत संघ की सदस्यता ग्रहण करनी होती है।

आयोग ने अनुभव किया कि 'संघ-पाबन्द श्रमालय' (Closed shop) की व्यवस्था न तो व्यावहारिक है, न वांछनीय, क्योंकि ऐसा करना स्वतन्त्र संघ बनाने के मौलिक अधिकार के विरुद्ध होगा। 'संघ-श्रमालय' (union shop) की व्यवस्था कुछ सुविधाजनक हो सकती है किन्तु इसमें भी अनिवार्यता का थोड़ा-बहुत तत्त्व विद्यमान है। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि इन दोनों ही व्यवस्थाओं में किसी को भी कानून द्वारा लागू नहीं किया जाना चाहिये, अपितु श्रमिक संघ के विकास के साथ ही इसको स्वाभाविक रूप में स्वयं ही विकसित होने देना चाहिये।

इसी से सम्बन्धित अन्य मसला है 'धन को रोकने का' (Check-off) जिसके अन्तर्गत मालिक श्रमिकों के वेतन में से सदस्यता शुल्क तथा संघ को देय अन्य धनराशियाँ काट लेता है और फिर यह धन श्रमिक संघ को सौंप देता है। आयोग के अनुसार एक ऐसी समर्थ व्यवस्था ही इस दिशा में यथेष्ट उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है जो कि मान्यता-प्राप्त श्रमिक संघ की माँग पर इस प्रकार कटौतियाँ करने की अनुमति दे।

उद्योगपति संगठनों सम्बन्धी सिफारिशें
(Recommendation on Employers' Organisations)

आयोग ने मालिकों के संगठन के सम्बन्ध में भी सिफारिशें कीं। आयोग ने कहा कि मालिकों के संगठनों के रजिस्ट्रेशन को भी अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये। सरकारी क्षेत्र के उद्यमों एवं सहकारी उद्यमों को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये कि वे अपने-अपने औद्योगिक संघों में सम्मिलित हों। मालिक संघों को चाहिये कि वे सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन दें, श्रम-प्रबन्ध के सम्बन्धों के बारे में अपने सदस्यों को शिक्षा दें, मालिकों को इस बात के लिये प्रोत्साहित करें कि कार्मिक-सम्बन्धी नीतियों को लागू करें, युक्तिकरण कर, पर्यवेक्षकों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करें, मजदूरी पंचाट (wage awards) तथा

द्विदलीय व त्रिदलीय समझौतों को सही रूप में सच्ची भावना से लागू करें तथा श्रमिकों से सम्बन्धित अनुचित हरकतों को समाप्त करें।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार की बहुत आवश्यकता है। अपने संगठन-कार्यों के लिये जब तक श्रमिकों के पास यथेष्ट समय, शक्ति और धन न होगा, स्वस्थ संघवाद का विकास सम्भव नहीं है। इस कारण स्वस्थ संगठन की समस्या को प थक् रूप से नहीं सुलझाया जा सकता। इसके लिये सब ओर से तथा हर प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है। श्रमिक संघों को यह समझना चाहिये कि उनका कार्य केवल यही नहीं है कि वे मालिकों से झगड़ा करते रहें या केवल श्रमिकों की भलाई व उन्नति के लिये ही कार्य करते रहें। अब उन्हें राष्ट्रीय हित के लिये आत्म-त्याग और सहयोग की भावना से कार्य करने की नीति अपनानी चाहिए। उन्हें श्रमिक संघ अनुशासन की एक संहिता का भी निर्माण करके इस बात का प्रयत्न करना होगा कि सब श्रमिक ठीक राह पर चलें। इस सम्बन्ध में 'अनुशासन संहिता' तथा 'आचरण संहिता' जैसे महत्त्वपूर्ण पग अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों से श्रमिकों में अधिक मनोवैज्ञानिक (Psychological) परिवर्तन पाया जाता है। वे अपने अधिकारों से तो अधिकतर परिचित हो गये हैं परन्तु इस परिवर्तन के समय में वे अपने कर्त्तव्यों को भूल गये हैं। हर ओर से मालिकों की ये शिकायतें आती हैं कि श्रमिकों की कार्यकुशलता कम हो गई है। श्रमिक अधिक कार्य करने में कोई रुचि नहीं दिखाते और मालिक उनसे कुछ कह नहीं सकते क्योंकि हड़ताल का हर समय डर लगा रहता है। पिछले दिनों में श्रमिकों की ओर से हिंसात्मक कार्य भी हुये हैं। अभी हाल के कुछ महीनों में श्रमिकों द्वारा "घिराव" के जो हथकण्डे अपनाये गये हैं, यह बड़ी गम्भीर बात है। 'घिराव' में श्रमिक कारखाने के मालिकों तथा प्रबन्धकों को कारखानों में ही अथवा उनके निवास स्थानों में ही लम्बे समय तक घेरे रहते हैं। कभी-कभी तो इस अवधि में उनको खाना, पानी से भी वंचित कर दिया जाता है। ऐसे अस्वस्थ वातावरण को दूर करने की आवश्यकता है। इसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि स्वस्थ क्रमिक संगठन के विकास का प्रयत्न किया जाये। देश में इस बात का आन्दोलन भी चल पड़ा है कि श्रमिकों को भी प्रबन्ध कार्यों में भाग दिया जाये। इसका प्रयोग भी सफलतापूर्वक कई स्थानों पर किया गया है। इस आन्दोलन का विस्तार हो सकता है, परन्तु इसकी सफलता के लिए भी यह आवश्यक है कि शक्तिशाली और पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमिक संघ हों। यदि हम अपने श्रमिकों से अधिक कार्यकुशलता की आशा करते हैं तथा देश में अधिक उत्पादन और औद्योगिक-शान्ति चाहते हैं तो संघों के समस्त दोषों को दूर करने और स्वस्थ संघवाद के विकास में उन्नति करने की ओर हमें गम्भीर रूप से प्रयत्न करने चाहिए।

ग्रामीण प्रवासी श्रम सम्बन्धी सिफारिशें
(Recommendation on moral migratory labour)

राष्ट्रीय श्रम आयोग (1969) ने रॉयल (ह्विटले) श्रम आयोग तथा श्रम अनुसन्धान समिति के विचारों का उल्लेख करने के बाद यह मत व्यक्त किया कि "विगत 20 वर्षों की अवधि में, औद्योगिक श्रमिकों में स्थायी रूप से रहने की प्रव त्ति और बढ़ी है। आज गाँव से आने वाला श्रमिक रुचि और द ष्टिकोण में अपने पूर्ववर्ती श्रमिकों की अपेक्षा अधिक शहरी बन चुका है। ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में इस धारणा की, कि शहरी कारखानों में काम करने के लिये आने वाले ग्रामीण श्रमिक गाँवों से अपना सम्पर्क बनाये रखते हैं, यद्यपि ह्विटले आयोग ने पुष्टि की थी और इससे उद्योगों के प्रति श्रमिकों की वचनबद्धता (commitment) में बाधा भी पड़ती थी, किन्तु औद्योगिक श्रमिकों के हित में उठाये गये अनेक ठोस पगों के कारण अब यह धारणा पीछे पड़ गई है। अब तक दूरस्थ चाय बागानों तक में स्थायी रूप से बसने वाले श्रमिक काफी संख्या में पाये जाते हैं। आयोग ने आगे कहा कि "ज्यों-ज्यों उद्योग का विस्तार होता है और उसमें बड़ी मात्रा में कुशल व अकुशल कामों को सम्मिलित किया जाता है त्यों-त्यों औद्योगिक कार्यों में गाँवों से आने वाले श्रमिकों का एकाधिकार समाप्त होता जाता है। शहरी परिवारों के युवक जो कि परम्परागत् रूप में कारखानों के वातावरण को स्वीकार करने में कोई रुचि नहीं रखते थे, अब कारखानों में रोजगार की तलाश करते पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जब से मिल मालिकों ने श्रमिकों को नियमित रूप से आने और उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरणाएँ एवं सुविधायें प्रदान करनी आरम्भ की हैं, तब से गाँवों से आने वाले श्रमिकों तक ने भी अपने गाँवों के दौरों की संख्या एवं अवधि में कमी कर दी है। बम्बई, पूना, दिल्ली और जमशेदपुर में किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि गाँवों से शहरों में काम करने के लिये आने वाले पुराने श्रमिकों में तो अभी भी गाँवों को वापिस लौटने की लालसा पाई जाती है किन्तु गाँवों से आने वाले नये श्रमिकों में शहरी जीवन व फैक्टरी कार्य के प्रति अधिकाधिक लगाव पाया जाता है। श्रमिकों की आयु भी इस सम्बन्ध में एक निर्धारित तत्त्व है और वह उस प्रकार कि शहरी सुविधाओं व आकर्षणों का प्रभाव युवा श्रमिकों पर अधिक देखा जाता है।" **निष्कर्ष** के रूप में आयोग ने यह मत व्यक्त किया "नगरों में काम करने वाले श्रमिकों की काफी बड़ी संख्या अब कारखानों के कार्य से अपना सम्बन्ध स्थायी रूप से जोड़ चुकी है। पुराने उद्योगों में तो श्रमिकों की दूसरी तथा तीसरी पीढ़ी तक काम करती हुई देखी जाती है। देश में श्रमिकों के ऐसे वर्ग की संख्या बराबर बढ़ रही है जिसकी जड़ें

ऐसे औद्योगिक वातावरण में गहराई से पैठ कर चुकी हैं जिसमें कि श्रमिक जन्म लेता है और जिससे वह अपनी जीविका भी प्राप्त करता है।"

श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धी सिफारिशें
(Recommendation on Labour-Management Relations)

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने देश में श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों की समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया और यह सुझाव दिया कि औद्योगिक न्याय-निर्णय (industrial adjudication) के बाद शनैः शनैः सामूहिक सौदाकारी की स्थिति पर आना चाहिये। आयोग ने आशा प्रकट की कि "सामूहिक सौदाकारी, प्रतिनिधि श्रमिक संघों को मान्यता की स्वीकृति तथा प्रबन्धकों के सुधरे द ष्टिकोण के विकास के साथ ही, कुछ सीमा तक तो, ऐच्छिक विवेचन की व्यापक स्वीकृति के लिये आधार तैयार होगा ही।" सुलह का उपाय उस स्थिति में अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है जबकि वह बाहरी प्रभाव से मुक्त रहे और सुलह की व्यवस्था यथेष्ट स्टाफ से परिपूर्ण हो। सुलह की व्यवस्था (Conciliation Machinery) की स्वतन्त्र प्रकृति ही सभी वर्गों में अधिक विश्वास उत्पन्न कर सकती है और सभी पक्षों का अधिक सहयोग प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है। अतः इस व्यवस्था को प्रस्तावित औद्योगिक सम्बन्ध आयोग का ही अंग बना दिया जाना चाहिये। सुलह की व्यवस्था के अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग का चुनाव समुचित ढंग से किया जाना चाहिये और पद ग्रहण करने से पूर्व तथा सेवा-काल में समय-समय पर यथेष्ट प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सबसे महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि केन्द्र में तथा प्रत्येक राज्य में स्थायी आधार पर एक-एक **औद्योगिक सम्बन्ध आयोग** (Industrial Relations Commission) की स्थापना की जाए। इस औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को एक ऐसी सत्ता बनाया जाना चाहिए जोकि कार्यपालिका से स्वतन्त्र हो। केन्द्र-स्तर पर तो ऐसे आयोग द्वारा ऐसे विवादों का निपटारा किया जाना चाहिए जिनसे राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्न सम्बन्धित हों अथवा जो एक से अधिक राज्यों के संस्थानों को प्रभावित करते हों। इसी प्रकार राज्य-स्तर पर ऐसा आयोग उन विवादों का निपटारा करे जिनके लिए कि राज्य सरकार ही उपयुक्त प्राधिकारी या सत्ता हो। राष्ट्रीय तथा राजकीय औद्योगिक सम्बन्ध आयोगों के मुख्य कार्य ये होंगेः

1. औद्योगिक विवादों में न्याय-निर्णय;
2. सुलह (Conciliation) तथा
3. श्रमिक संघों को प्रतिनिधि श्रमिक-संघों के रूप में प्रमाणित करना।

जब कोई हड़ताल या तालाबन्दी शुरू होती है, तब उपयुक्त सरकार भी आयोग तक पहुँच कर सकती है और उससे इस आधार पर हड़ताल या तालाबन्दी को समाप्त कराने की माँग कर सकती है कि उसके जारी रहने से राज्य की सुरक्षा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अथवा सार्वजनिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। औद्योगिक सम्बन्ध आयोग सरकार एवं अन्य पक्षों की बात सुनने के पश्चात् सम्बद्ध पक्ष से हड़ताल या तालाबन्दी को समाप्त करने के लिये कहता है और उनके वक्तव्यों को दर्ज कर लेता है। इसके बाद, आयोग विवाद पर अपना अधिनिर्णय देता है।

औद्योगिक सम्बन्ध आयोगों की स्थापना के अतिरिक्त, राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य में स्थायी श्रम न्यायालयों की स्थापना की जाये। ये न्यायालय अधिकारों व दायित्वों से सम्बन्धित विवादों का निपटारा करें, निर्णयों की व्याख्या करें, उनको कार्यान्वित करायें तथा श्रम सम्बन्धी अनुचित कार्यवाहियों के सम्बन्ध में जिन विवादों एवं दावों की आयोग सिफारिश करे, उनकी विस्त त रूप से व्याख्या करके दोषी पाये जाने वाले पक्षों के लिए समुचित दण्ड की व्यवस्था करें। श्रम न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील उस क्षेत्र के उच्च न्यायालय में की जा सकती है।

उपसंहारः समस्या का समाधान
(Conclusion: The Way Out)

यदि यह मान भी लिया जाए कि देश में अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है फिर भी इसकी सफलता के लिये कुछ मूल बातों का होना आवश्यक होगा। औद्योगिक विवादों की समस्या विवादों के मूल कारणों को दूर किए बिना नहीं सुलझायी जा सकती। औद्योगिक विवादों की समस्या को ठीक प्रकार समझने के लिए तथा उनके शान्तिपूर्ण निपटारे हेतु विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं को अपनाने के लिये हमें अनेक बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा। उदाहरणतः मजदूरी की दर में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को लागू करना होगा, रोजगार के स्तर को भी ऊँचा और स्थिर बनाना होगा,

कार्य एवं रहने की दशाओं में सुधार लाना होगा, आदि। विवाचकों का ठीक प्रकार से चुनाव और एक शक्तिशाली श्रमिक संघ भी आवश्यक है। राज्य की नीति का यही उद्देश्य होना चाहिये कि विवादों के कारणों को, जितना भी हो सके, कम करे।

द्वितीय श्रम आयोग, 1996
(Second Commission on Labour, 1996)

सरकार ने 24 दिसम्बर, 1998 को द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग गठित करने का निर्णय लिया ताकि एक उच्च अधिकार प्राप्त निकाय इन तथ्यों की तटस्थ होकर जांच-पड़ताल कर सके और श्रम विधान/श्रम नीति में समुचित परिवर्तनों का सुझाव दे सके। तदनुसार, सरकार ने संगठित क्षेत्र में श्रम से संबंधित विद्यमान कानूनों को युक्तिसंगत बनाने तथा असंगठित क्षेत्रों में कामगारों के लिए संरक्षण का न्यूनतम स्तर सुनिश्चित करने हेतु एक व्यापक विधान का सुझाव देने के लिए द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग गठित करके 15.10.1999 को एक संकल्प जारी किया। उक्त आयोग से यह अपेक्षा की गयी है कि वह अपने गठन की तारीख से 24 माह के भीतर अपनी अंतिम रिपोर्ट दे। आयोग ने 29 जून 2002 को अपनी रिपोर्ट पेश की। आयोग की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं:

द्वितीय श्रम आयोग की मुख्य सिफारिशें
(Major Recommendation of Second Commission on Labour)

द्वितीय श्रम आयोग की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं-

1. सभी श्रम कानूनों को एक व्यापक संहिता में सम्मिलित किया जाए। वर्तमान श्रम कानूनों को कुछ विशिष्ट श्रेणियों में बांटा जाना चाहिए जैसे:
   (i) औद्योगिक सम्बन्ध
   (ii) मजदूरी
   (iii) सामाजिक सुरक्षा
   (iv) कार्य दशाएँ
   (v) श्रम कल्याण
2. श्रम संघों को समर्थन के आधार पर मान्यता दी जाए।
3. जिन श्रम संघों को 66 प्रतिशत सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो उन्हें ही वार्तालाप का अधिकार दिया जाए।
4. श्रम संघों को मान्यता की अवधि चार साल होनी चाहिए।
5. असंगठित क्षेत्र में वे सभी मजदूर शामिल किए जाए तो सामाजिक सुरक्षा कानूनों की परिधि में नहीं आते।
6. छटनी के लिए जहां 300 या अधिक मजदूर काम कर रहे हैं, सरकार को 3 महीने का नोटिस दिया जाए।
7. मजदूरी में मौलिक वेतन और महंगाई भत्ता शामिल होना चाहिए।
8. भत्तों में ओवर टाईम तथा अन्य नकद पैसा शामिल होना चाहिए।
9. राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जानी चाहिए।
10. मजदूरी बोर्ड को समाप्त किया जाए।
11. हड़ताल तभी होनी चाहिए, जब 51% सदस्य (श्रम संघ) सहमत होने चाहिए। गैर-कानूनी हड़ताल के लिए तीन दिन का वेतन काटा जाए।
12. ठेका मजदूर केवल मौसमी व्यवस्थाओं में लिया जाएगा।
13. छोटे उद्योगों के लिए ठोस कानून।
14. आवश्यक सेवाओं में जल-आपूर्ति, चिकित्सा, सफाई, बिजली, यातायात आदि शामिल होने चाहिए और इनमें कोई हड़ताल नहीं होनी चाहिए।
15. मजदूरों की प्रबन्ध में भागीदारी होनी चाहिए।

अध्याय-8

राज्य स्तर पर श्रम विभाग (हरियाणा के संदर्भ में)

(Labour Department at State Level [WSR to Haryana])

सभी राज्यों/संघ प्रदेशों में श्रम कल्याण के प्रशासन हेतु मंत्री के अधीन जो विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है, श्रमिक विभागों की स्थापना की गई है। विभाग का अध्यक्ष श्रम आयुक्त (आई०ए०एस० अधिकारी) होता है। उसकी सहायतार्थ अतिरिक्त संयुक्त, उप एवं सहायक श्रम आयुक्त, उप मुख्य निरीक्षक फैक्टरी, फैक्टरी निरीक्षक, चिकित्सा इंस्पेक्टर फैक्टरी, श्रम एवं समझौता अधिकारी एवं अन्य समर्थक अधिकारी होते हैं। अनेक राज्यों मे श्रमिक प्रतिपूर्ति कानून, 1923 एवं मजदूर संघ पंजीकरण कानून, 1926 के अंतर्गत श्रमिक प्रतिपूर्ति आयुक्त नियुक्त किये गये हैं।

विभाग के कार्य

(Functions of the Department)

श्रम विभाग का मुख्य दायित्व औद्योगिक शांति बनाये रखना, श्रम कल्याण को बढ़ावा देना एवं श्रम कानूनों का प्रवर्तन करना ह। विभाग श्रमिकों एवं मालिकों के मध्य सामयिक हस्तक्षेप, शीघ्र समझौतों एवं औद्योगिक विवादों में श्रम न्यायालयों एवं औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा प्रदत्त निर्णयों के क्रियान्वयन पर बल देता है। ताकि श्रमिक आंदोलनात्मक मार्ग न अपनाये। विभिन्न केंद्रीय एवं राज्य कानूनों यथा श्रमिक प्रति पूर्ति कानून, 1923 ; फैक्टरी कानून, 1948; भारतीय ताप श्रमिक कानून, 1923; भारतीय श्रमिक संघ कानून, 1926; वेतन भुगतान कानून, 1936; न्यूनतम वेतन कानून, 1948; लाभांश भुगतान कानून, 1965; अनुग्रहराशि कानून, 1972; समाज मजदूरी कानून, 1976 आदि के प्रशासन के अतिरिक्त श्रम विभाग श्रमिकों एवं मालिकों के मध्य समझौतों तथा औद्योगिक न्यायाधिकरण एवं श्रम न्यायालयों द्वारा प्रदत्त अभिनिर्णयों के प्रवर्तन के लिए भी उत्तरदायी है।

कुछेक राज्यों में श्रम संबंधी आंकड़ों को इकट्ठा करने के लिए विशेष संयंत्र स्थापित किया गया है जबकि अन्यों में उपरोक्त अधिकारी ही इस कार्य को करते हैं। न्यूनतम मजदूरी कानून, 1948 के अंतर्गत समय-समय पर उपभोक्ता मूल्य सूचकांक पता करने हेतु विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा योग्य अधिकारियों को भी विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त किया गया है। कुछ राज्यों के श्रम विभागों ने ग्रामीण श्रम इंस्पेक्टरों की नियुक्ति की है जो क षक श्रमिकों को निर्धारित दरों पर मजदूरी दिये जाने को सुनिश्चित करते हैं।

कुछेक राज्यों मे स्वैच्छिक आधार पर स्वायत्त निकायों/औद्योगिक सुरक्षा परिषदों की स्थापना की गयी है जो औद्योगिक श्रमिकों एवं मालिकों में सुरक्षा चेतना का विकास करते हैं। परिषद ऐसी फैक्टरियों को विजयोपहार पुरस्क त करता है जो सुरक्षा मापदंडों में सुधार एवं दुर्घटनाओं में कमी दिखलाती है। परिषद/निकाय देश के विभिन्न भागों में सुरक्षा कार्यक्रमों का आयोजन भी करती है।

श्रम विभाग श्रम कल्याण केंद्र भी चलाता है जहां महिला श्रमिकों को एवं पुरुष श्रमिकों की महिला आश्रितों को दैनिक मजदूरी पर सिलाई, बुनाई एवं कशीदाकारी में निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाता है। विभाग श्रम गजट/श्रम समाचार प्रत्येक मास प्रकाशित करता है जिसमें श्रम संबंधी आंकड़े एवं श्रमिकों की रुचि संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचना दी जाती है।

अतः भारत में असंगठित कर्मकारों की समस्याओं को देखते हुए आज सरकार अनेक प्रयत्नों के द्वारा स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न कर रही है। वास्तविकता तो यह है कि वर्तमान पंचवर्षीय योजनाओं तथा सभी दूसरे विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में व द्धि करना और आर्थिक विषमताओं को दूर करके देशवासियों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना है। इस द ष्टि से

समस्या के निदान हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कुछ प्रयत्न निम्नलिखित हैं-

1. **क षि का विकास** - सरकार ने क षि को सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है। इस संबंध में छोटी व बड़ी सिंचाई योजनाएं आरंभ की गयी हैं तथा ग्रामीणों को आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है। इसके अतिरिक्त ऐसी भूमियों को जो खेती के योग्य नहीं थीं, फिर से खेती के योग्य बनाने का सफल प्रयत्न किया गया हैं क षि उत्पादन बढ़ाने के लिए उन्नत खाद व दूसरे उर्वरक पदार्थों का भी सरकार आवश्यकतानुसार वितरण कर रही है। इसके अतिरिक्त सहकारी भंडारों व दूसरे साधनों द्वारा क षि बिक्री का भी उचित प्रबंध किया गया है। गत वर्षों में अनेक क षि उपजों का न्यूनतम विक्रय-मूल्य निर्धारित करके भी सरकार ने क षकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने का प्रयत्न किया है। इन सभी प्रयत्नों से क षकों की आर्थिक स्थिति में बहुत कुछ सुधार हो सका है।

2. **रोजगार की सुविधाएं** - सरकार ने इस समस्या के समाधान हेतु रोजगार की सुविधाओं में व्यापक व द्धि की है। इसके लिए प्रत्येक जिले में एक रोजगार केंद्र की स्थापना की गई है जो बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार देने की व्यवस्था करते हैं। देश में व्यापक रूप से फैली बेरोजगारी को दूर करने के लिए सरकार ने गांवों में कुटीर उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने, नगरों में प्रशिक्षित युवकों को ऋण की सुविधाएं देने तथा अति निर्धन लोगों को आर्थिक सहायता पुनर्वास की सुविधा देने की योजनाएं लागू की हैं।

3. **परिवार नियोजन को प्रोत्साहन** - जनसंख्या की व द्धि को रोकने के लिए सरकार ने परिवारा नियोजन (Family Planning) का विस्त त कार्यक्रम तैयार किया है। गत पांच पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत शहरों और गांवों में क्रमशः 1,753 तथा 5,387 अर्थात् कुल 7,140 परिवार नियोजन केंद्र कार्य कर रहे थे। प्रथम पांच पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार ने परिवार नियोजन पर 800 करोड़ रुपये की धनराशि व्यय की है, जबकि छठी पंचवर्षीय योजना में 1,010 करोड़ रुपये के व्यय द्वारा इस योजना को और अधिक प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसके द्वारा सरकार का लक्ष्य सन् 2048 तक वार्षिक जन्म-दर को 25 प्रति हजार करना है।

4. **सामुदायिक विकास योजनाएं** - सामुदायिक विकास योजनाओं को सफल बनाने के लिए बड़ी मात्रा में धन व्यय किया जा रहा है। इससे ग्रामीणों को चतुर्दिक विकास होकर उनकी आय में व द्धि हो सकेगी। सामुदायिक विकास योजनाओं के अंतर्गत पशुपालन, क षि विस्तार, सिंचाई, भूमि सुधार आदि मदों पर प्रथम पांच पंचवर्षीय योजनाओं में 802 करोड रुपये व्यय किया गया जबकि छठी पंचवर्षीय योजना में अतिरिक्त व्यय के द्वारा 5,028 विकास केंद्र ग्रामीण विकास में योगदान करेंगे।

5. **बड़े उद्योगों का विकास** - औद्योगिक क्षेत्र में सरकार ने सराहनीय प्रयत्न किये हैं। भारत सरकार ने प्रथम योजना के अंतर्गत बड़े उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान की। दूसरी योजना में भी बड़े उद्योगों पर अधिक से अधिक बल दिया गया। चितरंजन (पश्चिमी बंगाल) में रेल इंजन बनाने का कारखाना, वाराणसी में डीजल इंजन बनाने का कारखाना, विशाखापट्टनम में जहाज निर्माण का कारखाना, सिंदरी (बिहार) में खाद बनाने का कारखाना हमारी आर्थिक उन्नति के प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त लोहे व इस्पात के तीन कारखानों ने तो आर्थिक क्षेत्र में जैसे एक क्रांति ही उत्पन्न कर दी है। यह राउरकेली (उड़ीसा), भिलाई (मध्य प्रदेश) और दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल) में स्थापित किये गये हैं। इन कारखानों की सफलता से आर्थिक प्रगति को काफी प्रोत्साहन मिलने की आशा है।

6. **कुटी उद्योग-धंधों पर विकास** - सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं में इन उद्योगों के विकास पर कुल 842 करोड़ रुपये व्यय किये जबकि छठी योजना के आरंभिक तीन वर्षों में ही लघु और कुटीर उद्योगों का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि इस समय हमारे देश में लगभग 2 करोड़ से भी अधिक व्यक्ति इन उद्योगों के द्वारा जीविका उपार्जित कर रहे हैं।

7. **पोषण की सुविधाएं** - उचित पोषण व्यक्ति की कार्यक्षमता में व द्धि करके उसकी आर्थिक समस्या का समाधान करने में सहायक होता है। इस द ष्टिकोण से सरकार द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम चालू किये गये हैं। इनमें से प्राथमिक शिक्षा पाने वाले बच्चों के लिए स्कूलों में स्वल्पाहार तथा दूध की व्यवस्था करना, बच्चों के लिए विटामिन 'ए' से युक्त खुराक देना, गर्भवती स्त्रियों के लिए लोहा और फालिक अम्ल युक्त गोलियों की व्यवस्था करना तथा सन् 1954 के अधिनियम द्वारा खाद्य पदार्थों में मिलावट की रोकथाम करना आदि प्रमुख कार्य हैं।

8. **संशोधित 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम** - इस कार्यक्रम का उद्देश्य कुल उत्पादन में व द्धि करना तथा पिछड़े वर्गों के हितों का संरक्षण करना है। छठी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत अधिकांश विकास कार्यक्रम इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए लागू किये गये। यदि यह कार्यक्रम सफल होता है तो निश्चय की भारत में अंसगठित क्षेत्र के कर्मकारों की समस्या का एक बड़ी सीमा तक समाधान किया जा सकेगा।

9. **अन्त्योदय योजना** - महात्मा गांधी के आदर्शों पर भारत में सन् 1978 में अन्त्योदय योजना तैयार की गई जिसे 2 अक्टूबर, 1978 से देश के अनेक राज्यों में लागू कर दिया गया है। इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक गांव से 5 सबसे निर्धन परिवारों का चयन करके उनका आर्थिक विकास करना है। उत्तर प्रदेश में सन् 1983 तक ऐसे लगभग 5 लाख व्यक्तियों पर कुल 25 करोड़ रुपये व्यय किया गया। अब बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश तथा कुछ दूसरे राज्यों में भी इस योजना पर कार्य आरंभ किया जा चुका है।

10. **काम के बदले अनाज योजना** - भारत में अत्यधिक निर्धन वर्गों की सहायता के उद्देश्य से सन् 1978 से 'काम के बदले अनाज' देने का कार्यक्रम लागू किया गया। इस योजना के द्वारा अत्यधिक निर्धन लोगों को सड़कों के निर्माण, सिंचाई योजनाओं, तालाबों को गहरा करने तथा बांध निर्माण आदि कार्यों में लगाकर उन्हें मजदूरी के रूप में अनाज दिया जाता था।

श्रम विभाग हरियाणा

(Labour Department Haryana)

इस विभाग को 1966 में हरियाणा तथा राज्य स्थापित होने के बाद बनाया गया। इस विभाग का मुख्य उद्देश्य अच्छे औद्योगिक संबंध बनाना है। मजदूर तथा प्रबंध के बीच तथा औद्योगिक शांति स्थापित करना है।

हरियाणा श्रम विभाग ने अपना ढ़ांचा पंजाब सरकार से उधार लिया। यह अपने संगठनात्मक पहलू, कार्यात्मक पहलू पर पंजाब से मिलता जुलता है।

संगठन

(Organisation)

मुख्य तौर से इसके संगठन को तीन भागों में बांटा जा सकता है-

1. Political Level
2. Secretariat
3. Executive of the Labour

इसके अलावा इसमें field offices, advisory committees boards, etc. है।

Personnel Hierarchy

Minister
↓
Labour Commissioner
↓
Joint Labour Commissioner-cum-Chief Concilation Officer
↓
Dy. Labour Commissioner
↓
Additional Director
↓
Assistant Director (Admn. Officer)
↓
Law Officer

↓

Statistics Officer

↓

Labour Inspector

Head Quarter Staff

Joint Labour Commissioner-cum-Chief Concilation Officier

↓

Dy. Labour Commissioner

↓

Editor

↓

Statistical Officer

↓

Labour Officer

↓

Labour Inspector

Field Staff

Dy. Labour Commissioner (उपश्रम आयुक्त)

↓

Labour Officer-cum-concilation Officer

↓

Labour Welfare Officer

↓

Asstt. Director (Health & Safety)

↓

Certifying Surgeon

↓

Assistant Director I.H.C. (Industrial Hygien)

↓

PO-I (Providing Officer) I.L.C.(Industrial Tribunal Labour Court)

Labour Commissioner Office

↓

↓	↓
Labour Wing	Factory Wing
↓	↓
Six Section	Only one Section
↓	↓
1 2 3 4 5 6	Factory Section

1. **विवाद**
2. **लागू करने संबंधी**
3. **बजट**
4. **सांख्यिकी**

5. **सांख्यिकी अनुभाग**

Labour Wing **को क्षेत्रीय स्तर पर तीन क्षेत्रों में बांटा गया है-**

1. **फरीदाबाद** (Faridabad)
2. **सोनीपत** (Sonepat)
3. **हिसार** (Hissar)

Field Level Staff of L.W. (F.W.)

1. Faridabad - Circle-IFaridabad, Ballabgarh
2. Sonepat - Circle-II Sonepat, Karnal, Panipat, Gurgaon
3. Hissar - Circle-III Hissar, Bhiwani, Jind, Rohtak, Sirsa.

प्रत्येक क्षेत्र का मुखिया उपश्रम आयुक्त है जिसकी मदद Asstt. **श्रम अधिकारी और श्रम निरीक्षक करते हैं। प्रत्येक** Circle **का मुखिया श्रम अधिकारी होता है जिसकी सहायता श्रम निरीक्षक करते हैं।**

Factory Wing **इसे क्षेत्रीय स्तर पर तीन स्तरों पर बांटा गया है-**

1. **पानीपत** (Panipat)
2. **हिसार** (Hissar)
3. **फरीदाबाद** (Faridabad)

Panipat Circle-I Panipat Circle-II

Karnal, Ambala, Sonepat Yamunanagar

Faridabad Circle=I, II, III, IV

Hissar Circle - Hissar, Rohtak, Sirsa, Gurgaon

प्रत्येक फैक्ट्री विंग के प्रत्येक सर्कल का मुखिया सीनियर Asstt. Director **होता है। इसकी सहायता** Asstt. Director **व** Addl. Officer **करता है। इसके अतिरिक्त इसके पास सलाहकार समितियां तथा बोर्ड हैं। राज्य श्रम सलाहकार बोर्ड, न्यूनतम मजदूरी सलाहकार समिति, प्रवासी मजदूर राज्य सरकार बोर्ड, औद्योगिक मजदूरों के लिए आवास समिति, महिलाओं तथा मजदूर सलाहकार बोर्ड, समान भत्ते सलाहकार समिति।**

Functions of Labour Dept. Haryana

इसका सामान्य कार्य हरियाणा में श्रमिकों के लिए मुख्यतः न्यूनतक कार्यक्रम तैयार करना है और अपनी कार्यप्रणाली के लिए यह विभाग हरियाणा विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है। हरियाणा श्रम विभाग का मंत्री केंद्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा बुलाए गये कार्यक्रम को Attend **करता है। इसका सचिवालय श्रम व श्रम प्रशासन से संबंधित आवश्यक सूचनाएं इकट्ठी करता है। आपूर्ति सप्लाई करता है। श्रम आयुक्त जैसे औद्योगिक श्रम एवं स्वास्थ्य का कार्य भी निभाना पड़ता हैं तथा इसका कार्य श्रम संघों का पंजीकरण करना भी है। उसे श्रम कल्याण आयुक्त भी पुकारा जाता है।**

मुख्यतः राज्य क्षेत्राधिकार के तहत आने वाले उद्योगों में श्रम नीति, कानून, नियम तथा उपनियम लागू करता है। ठेका नियम के सरकारी अधिकारी के तौर पर कार्य करता है। वह अधिकारियों को सत्यापन करता है। उपायुक्त सभी प्रकार के कानूनों को लागू करता है। श्रम अधिकारी उपक्रम आयुक्त की प्रशासन में मदद करता है।

स्वास्थ्य अधिकारी कारखानों में स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लागू करने की प्रक्रिया को देखता है। इस प्रकार श्रम आयुक्त क्रिया का मुखिया होता है।

Organisation & Functions of the State Department

सामान्यतः श्रम विभाग निम्नलिखित कार्य करता है-

1. **यह श्रम कानूनों को लागू करता है ताकि औद्योगिक शांति और अच्छे औद्योगिक संबंध लागू हो सके।**

2. यह श्रम से संबंधित आंकड़ों को एकत्रित, वर्गीकरण एवं वितरण करता है।

3. यह कार्य अवरोधन के मामलों को निपटाता है। हरियाणा में 1991-92 में ऐसे 74 मामलों में से 64 का निपटारा इसके द्वारा किया गया।

4. यह औद्योगिक झगड़ों से संबंधित मामलों को Reconcer करता है। श्रम विभाग हरियाणा के पास अपनी Reconcing मशीनरी है। जिसने 5757 मामले Handle किये जिसमें से 757 का निपटारा किया, 405 Withdraw कर दिए, 170 को फाइल कर दिया गया या Reject कर दिया गया। 1405 को Adjudication के पास भेज दिया गया। इस प्रकार 1991 के अंत तक श्रम विभाग के पास 1486 मामले विचाराधीन थे।

5. पुरस्कारों और समझौतों को लागू करना।

6. हरियाणा में कुछ 746 मामलों की पहचान की गई और उनमें 667 को सफलतापूर्वक लागू किया गया जो कि कुल मामलों का 89.40% था।

   विभाग के क्षेत्रीय स्टाफ द्वारा, वेतन, भुगतान सेवाएं समाप्ति कार्य घंटे आदि से संबंधित 3164 शिकायतों को रिकार्ड किया गया जिसमें से 2984 का सफलतापूर्वक निपटारा किया गया।

7. औद्योगिक इकाइयों के स्थाई आदेशों का पालन करना। हरियाणा में 572 उद्योग थे जिनमें 50 स्थायी आदेशों में इसके अलावा 1991 में 39 अन्य मामलों को Certify किया गया।

8. श्रम संघों के सदस्यता और पंजीकरण को Verify करना। 1991 में पंजीक त श्रम संघों की संख्या 540 थी। कारखाना अधिनियम 1948 के तहत सभी कारखानों में मजदूरों के स्वास्थ्य से संबंधित प्रावधानों को लागू कराना था। इस उद्देश्य के लिए Certifying Surging और जांच अधिकारी की नियुक्ति करता है ताकि इन्हें कोई खतरनाक बीमारी न हो।

   हरियाणा में 3337 मजदूरों का परीक्षण किया गया और 21 मामले व्यवसायिक बीमारियों के तलाश किये गये।

9. **श्रम कानून की क्रिया एवं प्रक्रिया का निरीक्षण करना** - हरियाणा में 168400 मामलों का निरीक्षण किया गया जिसमें से 1148 को सजा दी गई, 8887 को चेतावनी दी गई।

10. **श्रम कल्याण बोर्ड (Labour Welfare Board)** - श्रम कल्याण बोर्ड सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक कल्याण से संबंधित प्रावधानों की देखभाल करता है। बोर्ड ने 1991 में 10900 रुपये 109 सिलाई मशीनें सहायता के रूप में वितरित की 109 म तक मजदूरों के आश्रितों तथा विधवाओं को दी।

    970 औद्योगिक मजदूरों को 843656 रुपये ब्याज रहित कर्जे के तौर पर दिए गए। साइकिल, सिलाई, बुनाई मशीन तथा प्रेशर कुकर खरीदे। इस उद्देश्य के लिए हरियाणा में 19 श्रम कल्याण केंद्र कार्य कर रहे हैं जिनमें 8 को राज्य सरकार 4 को श्रम कल्याण बोर्ड चलाता है। ये केंद्र मजदूरों की सुविधा मनोरंजन और मजदूरों की प्रशिक्षण उनके आश्रितों को सुविधाएं प्रदान करते हैं। हरियाणा में इन केंद्रों के पास 553 अध्ययन कमरे है, 426 Sewing Knitting and Embriding Centres, 203 Music Centre, 663 Games and Entertainment Centre हैं।

11. To implement the bonded labour system abolition Act, 1976.

    इस उद्देश्य के लिए जिला स्तर पर जिलाधिशों को पूरी शक्तियां दी गई है। इसे लागू करने के लिए Law Officers and Vegilence Committee at sub division level to look तथा इनका मुख्य कार्य है इनको बंधन से मुक्त कराना।

12. Enforcement of the Act.

13. **प्रशासन संबंधित मामले (Publication Function of the Dept.)** - हरियाणा श्रम विभाग त्रिमासिक हरियाणा Labour Journal प्रकाशित करता है। मजदूरों तथा उद्योगपतियों के लाभ के लिए यह प्रकाशन अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता है। यह मजदूरों को प्रबंध का ज्ञान प्रदान करता है। कानून के तत्कालीन फैसले, श्रम संबंधी आकंड़े, हरियाणा सरकार के प्रतिदिन के Notification, वर्तमान श्रम समस्याओं पर लेख आदि व कौन-कौन से प्रावधान इसमें सम्मिलित किये जाए।

    इसके अतिरिक्त ये मजूदरों को उनको अधिकारियों और क त्वयों के बारे में शिक्षित करता है।

निष्कर्ष

(Conclusion)

हरियाणा केश्रम विभाग के कार्य का निरीक्षण करने के बाद इसे एक एजेंसी के रूप में स्थापित, एवं अच्छे कार्य करने के तौर पर प्रयोग किया गया है। क्योंकि इसका मुख्य कार्य श्रम कानूनों को लागू करना है। लगभग सभी औद्योगिक संस्थाओं में विभिन्न श्रम Act के कानूनों को लागू करना तथा पालन के संबंध में है।

इस उद्देश्य के लिए विभाग के पास काफी बड़ा ढ़ांचा है जैसे कारखाना श्रम विंग, हैड क्वार्टर कार्यालय, क्षेत्रीय विंग जो इसके क्रियात्मक पहलू को नियंत्रण करने में सहायक है। लेकिन श्रम कानून का महत्व हरियाणा में ज़्यादा नहीं है। जैसे पटाखा कारखाना रोहतक 1995, का इसका उदाहरण है। इसमें प्रक्रिया से संबंधित प्रावधानों को शक्ति से लागू किया जाए। इसलिए श्रम कानून के मुख्य प्रावधानों को लागू कराने के लिए सामाजिक जांच व समीक्षा होनी चाहिए ताकि मजदूरों के कल्याण को प्रोत्साहन दिया जा सके।

अध्याय-9
श्रम कल्याण अधिकारी
(Labour Welfare Officer)

औद्योगिक क्रांति से पूर्व उत्पादन को विभिन्न महत्वपूर्ण इकाइयों पर प्रबन्धकों का प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क था लेकिन औद्योगिकीकरण के पश्चात् श्रमिको तथा मिल मालिकों मे काफी मतभेद प्रकट हुए तथा उनमें पारस्परिक दूरी बढ़ती गई। इसका प्रमुख कारण यह था कि दोनों के हित पूर्णतया अलग थे, अतः हितों का टकराव होना अवश्यम्भावी था। कार्ल मार्क्स ने इसे वर्ग संघर्ष की संज्ञा दी है। उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिक तथा नियोक्ता के बीच उत्पन्न होने वाली समस्याओं को हल करने की आवश्यकता अनुभव की गई, ताकि दोनों में सद्भावपूर्ण वातावरण स्थापित किया जा सके। इस कार्य हेतु जिस अधिकारी अथवा व्यक्ति की कल्पना की गई उसे श्रम कल्याण अधिकारी कहा गया।

श्रम कल्याण अधिकारी की योग्यताओं के सम्बन्ध में निम्न मानक निर्धारित किए गए - (1) श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति के सम्बन्ध में उसकी न्यूनतम आयु 25 वर्ष तथा अधिकतम आयु 35 वर्ष निर्धारित की गई। (2) यह आवश्यक समझा गया कि उसके पास समाजशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र की डिग्री होनी चाहिए। (3) श्रम कल्याण अधिकारी को हिन्दी भाषा तथा स्थानीय भाषा का अनुभव प्राप्त होना चाहिए ताकि वह श्रमिकों से अपना व्यवहार तथा सम्पर्क सुगमतापूर्वक स्थापित हो सके। (4) इसके अतिरिक्त श्रम कल्याण अधिकारी की विभिन्न ग्रेड निर्धारित की गई, जैसे - प्रथम तथा द्वितीय ग्रेड श्रम कल्याण अधिकारी।

श्रम कल्याण अधिकारी की आवश्यकता तथा महत्व
(Need and Importance of Labour Welfare Officer)

उद्योगों तथा कारखानों मे श्रम कल्याण अधिकारी के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। वह मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने की द ष्टि से रीड़ की हड्डी के समान अपनी भूमिका निभाता है। वस्तुतः श्रम कल्याण अधिकारी के महत्व का निम्न शीर्षकों में अध्ययन किया जा सकता है (दूसरे शब्दों में इन्हें हम श्रम कल्याण अधिकारी द्वारा सम्पादित कार्य तथा अधिकारों की श्रेणी में भी सम्मिलित कर सकते हैं)।

1. औद्योगिक विवादों का समाधान
(Conciliation of Industrial Disputes)

आधुनिक जटिल औद्योगिक परिस्थितियों में नियोक्ता तथा श्रमिकों में विवाद एवं मतभेद का होना स्वाभाविक है। उनमें विभिन्न एजेन्सियों के माध्यम से गलतफहमियां तथा भ्राँतियाँ उत्पन्न की जाती हैं। श्रम कल्याण अधिकारी एक-दूसरे के प्रति व्याप्त गलतफहमी का निवारण करता है। श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति के पूर्व उद्योगों में ऐसी कोई विधिक अथवा प्रशासनिक व्यवस्था नहीं थी जिसके अधीन श्रमिकों तथा मालिकों को निकट लाया जा सके तथा औद्योगिक प्रगति में उनको निरन्तर प्रोत्साहित किया जा सके। वस्तुतः श्रम कल्याण अधिकारी मध्यस्थता के लिए प्रसिद्ध हैं। वर्तमान में मिल मालिकों तथा मजदूरों के पारस्परिक अपनी मतभेदों का समाधान करने में श्रम कल्याण अधिकारी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

2. श्रमिको की कार्य दशाओं में सुधार लाना

(Improvement in the Working Conditions of the Workers)

श्रम कल्याण अधिकारी श्रमिकों की कार्य-दशाओं के प्रति संवेदनशील होता है। प्रत्येक सेवा नियोजक अथवा नियोक्ता को श्रमिकों की कार्य-दशाओं को जानना अत्यन्त आवश्यक है। इस द ष्टि से श्रम कल्याण अधिकारी ही एक ऐसा व्यक्ति है जो कार्य-दशाओं तथा श्रमिकों की विभिन्न समसयाओं का समय रहते अध्ययन कर मिल मालिकों को उनसे अवगत कराता है तथा उनका निदान ढूंढने में आशाजनक सुझााव प्रस्तुत करता है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिकों में व्याप्त असंतोष उग्र होने के बजाए कम हो जाता है और उद्योगों में शान्तिपूर्ण तथा सहयोगपूर्ण वातावरण स्थापित कर लिया जाता है।

3. श्रम कल्याण कार्यों की देखरेख

(Supervision of the Labour Welfare Activities)

श्रमिकों की कार्यकुशलता मे व द्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके श्रम-कल्याण कार्यों के प्रति नियोक्ता सजग हो। अतः श्रम कल्याण, अधिकारी का यह दायित्व है कि वह नियोक्ता को श्रम कल्याण कार्यों के प्रति जागरूक करे और उसे आभास कराएं कि इससे श्रमिक की कार्य कुशलता में व द्धि होती है तथा उसका प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है।

(4) हड़ताल एवं तालाबन्दी की रोकथाम

(Prohibition of Strikes and Lockouts)

औद्योगिक शांति स्थापित करने की द ष्टि से हड़ताल एवं तालाबन्दी की रोकथाम करना अत्यन्त आवश्यक है। श्रम कल्याण अधिकारी इस दिशा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। श्रम कल्याण अधिकारी का यह विधिक तथा, नैतिक कर्त्तव्य है कि श्रमिकों तथा श्रमिक संघों पर अवैध हड़ताल को रोकने में अपना प्रभाव डाले। इसी तरह वह नियोक्ता से भी यह अपेक्षा करे कि अवैध तथा अनावश्यक तालाबन्दी न की जाए। यदि दुर्भाग्यवश अवैध तालाबन्दी तथा हड़ताल प्रारम्भ हो जाती है तो श्रम कल्याण अधिकारी का यह दायित्व है कि वह इसमें मध्यस्थता कर हड़ताल तथा तालाबन्दी की अवधि को कम करावें।

4. श्रमिकों में अनुशासन स्थापित करना

(Maintenance of Discipline among Workers)

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त श्रम कल्याण अधिकारी की भूमिका इस द ष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि वह उद्योगों में कार्य समितियों, सहकारी समितियों, कल्याण समितियों तथा श्रमिकों, प्रबन्धकों एवं मालिकों की मिली-जुली समितियों की स्थापना कर इनके माध्यम से श्रमिकों में अच्छे अनुशासन की भावना पैदा करें।

श्रम कल्याण अधिकारी के कर्त्तव्य

(Duties of Labour Welfare Officer)

श्रम कल्याण अधिकारी के कर्त्तव्यों को निम्न भांति विभिन्न श्रेणियों में व्यक्त किया गया हैः

1. श्रम कल्याण अधिकारी को श्रमिकों तथा मालिकों मे सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है।
2. उसका यह कर्त्त्व्य है कि वह श्रमिकों की कार्य-दशाओं के सम्बन्ध में उसे प्रस्तुत की गई शिकायतों को अति शीघ्र दूर करें।
3. प्रायः यह देखा गया है कि कारखानों में श्रम अधिनियमों की नियोक्ता द्वारा अवहेलना की जाती हैं अतः श्रम कल्याण अधिकारी का यह आवश्यक कर्त्तव्य माना गया है कि वह श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा श्रम कल्याण से सम्बद्ध अधिनियमों का उल्लंघन करने पर कारखाने के प्रबन्धक को इसकी सूचना प्रेषित् करे। इसी भांति कारखाने में कैन्टीन, विश्राम ग ह, शिशु-ग ह, शीतल जल की व्यवस्था, शौचालय की सुविधाओं को स्थापित करे तथा उनके उचित रख-रखाव की व्यवस्था करें।
4. श्रम कल्याण अधिकारी का यह कर्त्तव्य अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह श्रमिकों की मनोभावनाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उद्योगों में श्रमिकों तथा मालिकों में उत्पन्न तनावपूर्ण स्थिति को सुलझाने में अपना सहयोग प्रदान करें।

5. श्रम कल्याण अधिकारियों यह कर्त्तव्य है कि वे सहकारी समितियों, कार्य समितियों, मालिक-मजदूर समितियों तथा श्रम कल्याण समितियों की स्थापना की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करें तथा ऐसे संगठनों को प्रोत्साहित करने के लिए सदैव तत्पर रहें। अनुशासन तथा श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा, श्रम कल्याण तथा उनकी गरिमा में तारतम्य पैदा करें।
6. श्रम कल्याण अधिकारी का यह भी दायित्व है कि वह श्रमिकों की कार्य दशाओं तथा कल्याण कार्यों के सम्बन्ध में प्रबन्धकों तथा नियोक्ताओं को अपना परामर्श प्रस्तुत करे और उनकी आवासीय व्यवस्था के बारे में उचित कदम उठाए।
7. उद्योगों में औद्योगिक तनाव उत्पन्न होने की स्थिति में श्रम कल्याण अधिकारी का महत्वपूर्ण योग होता है। ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में उसका यह दायित्व है कि वह निष्पक्ष रूप से अपने कार्यों का निष्पादन करे। इस सन्दर्भ में उसका यह भी दायित्व बनता है कि वह अवैधानिक हड़ताल तथा अवैधानिक तालाबन्दी को रोके। यदि प्रबंधकों एवं मालिकों द्वारा मनमाने तथा भ्रष्टाचारपूर्ण कदम उठाए जाते हैं तो उनकी रोकथाम करना श्रम कल्याण अधिकारी का दयत्व है। उसे चाहिए कि वह इस सम्बन्ध में अपना एक प्रतिवेदन प्रबन्धकों को प्रस्तुत करे।

कल्याण अधिकारी (भर्ती और सेवा शर्ते) नियम, 1951 में श्रम कल्याण अधिकारी के कर्तव्य, स्तर, भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैः

1. सामान्य निरीक्षण संबंधी कार्य (Funtions relating to General Supervision)
   (i) औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, कल्याणकारी कार्यक्रमों, मनोरंजन, सफाई से जुड़ी सेवाओं का निरीक्षण
   (ii) सयुक्त समितियों की कार्यप्रणाली का निरीक्षण
   (iii) मज़दूरी समेत अवकाश
   (iv) मजदूरो की शिकायत निर्वारण मशीनरी आदि का निरीक्षण
2. मजदूरों को सलाह देने सम्बनी कार्य (Function relating to couselling of workers)
   (i) व्यक्तिगत एवं पारिवारिक समस्याओं में सलाह देना।
   (ii) नए कार्य-वातावरण में सांमजस्य करने सम्बन्धी सलाह
   (iii) मजदूरों के अधिकारों सम्बन्धी सलाह
3. प्रबन्ध को सलाह देने सम्बन्धी कार्य (Functions relating to management advice)
   (i) श्रम एवं कल्याणकारी नीतियों के निर्माण में सलाह देना।
   (ii) शैक्षणिक तथा प्रशिक्षण क्रियाओं में सलाह देना
   (iii) वेतन के अतिरिक्त अन्य लाभ-कार्यक्रमों का आयोजन
   (iv) संचार-व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने की सलाह देना आदि।

इसके अतिरिक्त श्रम कल्याण अधिकारी श्रम विधानों को लागू करने, उचित कार्य दशाओं का प्रबंध, औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार औद्योगिक शान्ति, उत्पादकता से सम्बन्धित कार्य भी करता है।

इस प्रकार श्रम कल्याण अधिकारी मजदूर और प्रबन्ध में सर्म्पक-कड़ी का काम करता है।

क्या श्रम कल्याण अधिकारी अपनी भूमिका निभाने मे सफल रहा है?
(Whether Labour Welfare Officer has played his role successfully?)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उद्योगों मे श्रम कल्याण अधिकारी का व्यापक महत्व है तथा उसके कर्त्तव्यों एवं दायित्वों पर औद्योगिक शांति तथा उत्पादकता बहुत कुछ निर्भर करती है। श्रम कल्याण अधिकारी का महत्व केवल श्रमिकों के लिए ही नहीं है बल्कि प्रबन्धकों तथा नियोक्ताओं के लिए भी समान रूप से आवश्यक है। यदि श्रमिकों को उचित सुविधाएं प्राप्त होती हैं तो स्वतः उसकी कार्यक्षमता में व द्धि होती हैं इस व द्धि के फलस्वरूप कारखानों तथा मिलों के मालिकों को प्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है। इसके विपरीत यदि उद्योगों को उचित लाभ नहीं मिल पाता है तो श्रमिकों को मिलने वाली मजदूरी आवासीय तथा अन्य सुविधाएं पर्याप्त रूप से मिलना असम्भव है।

अध्याय-10
श्रमिकों की प्रबंध में भागेदारी
(Worker's Participation in Management)

औद्योगिक प्रबंध में श्रमिकों द्वारा भाग लेने का आशय
(Meaning of Workers' Participation in Management)

'औद्योगिक प्रबंध में श्रमिकों का भाग' एक अत्यंत ही लोचपूर्ण धारणा है जिसका अर्थ उद्योग के विभिन्न पक्षों, उद्योगपतियों, श्रमिकों और सरकार ने अपने अपने हितों को ध्यान में रखकर-प थक-प थक लगाया है। उद्योगपति इसको संयुक्त परामर्श (Joint Consultation) कहते हैं और श्रमिक इसका अर्थ सह-निर्णय (Co-decision) अथवा सह-निर्धारण (Co-determination) समझते हैं। सरकार इस योजना को 'औद्योगिक प्रजातंत्र' तथा 'समाजवादी समाज की स्थापना का पूर्वाभास' समझती है। इसका अर्थ कुछ भी लगाया जाये, किंतु यह विचारधारा मूलतः इस दर्शन पर आधारित है कि श्रम एवं प्रबंध उद्योग के सह-स्वामी (Co-trustees) हैं। अतः दोनों पक्षों को उद्योग की विभिन्न समस्याओं के बारे में विचार करने और निर्णय लेने का अवसर मिलना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी में औद्योगिक क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन केवल औद्योगिक तकनीक में ही नहीं बल्कि मानवीय-संबंधों के क्षेत्र में भी हुए हैं। आज का समाज यह मानने लगा है कि उद्योगपति और श्रमिक दोनों ही उत्पादन क्रिया में साझेदार हैं। यद्यपि आज भी उद्योग का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है लेकिन यह लाभ दोनों के सहयोग पर ही निर्भर करता है। उत्पादन में व द्धि, क्षमतापूर्ण संगठन, उपलब्ध साधनों का प्रभावशाली उपयोग तथा सुधरी तकनीक पर निर्भर रहती है और यह केवल उसी दशा में संभव है जबकि श्रमिक और पूंजीपति में हार्दिक सहयोग हो। मजदूरी व द्धि श्रमिकों को एक सीमा तक ही प्रेरणा देती है, उसके अलावा उसमें उत्साह प्रेरणा व स्वामिभक्ति की भावना भी होनी चाहिए। औद्योगिक समाज आज श्रमिकों को केवल प्रतिफल की उपलब्धि ही उनकी सेवाओं एवं श्रम के बदले में नहीं कराना चाहता, बल्कि उनके प्रयत्नों एवं कार्य को उचित मान्यता दिलाना चाहता है। तथा उनकी गौरवपूर्ण स्थिति का भी आभास कराना चाहता है। इस विचारधारा को कार्यरूप देने को ही श्रमिकों को प्रबंध में भाग लेने की व्यवस्था कहा गया है। इसकों विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न नामों से पुकारा गया है जैसे अमेरिका में संघ-प्रबंध सहयोग (Union Management Co-operation) इंग्लैंड में संयुक्त-परामर्श (Joint Consultation), फ्रांस में श्रम-प्रबंध सहयोग (Labour Management Co-operation) आदि। इस शब्द का अत्यधिक प्रयोग किया गया है लेकिन कभी-कभी इसके अर्थ को स्पष्ट नहीं किया गया है। प्रशासकों के इस विषय के विद्वानों के अनुसार 'प्रबंध में श्रमिकों का भाग' निर्णय लेने में बिना किसी अधिकार या उत्तरदायित्व के कर्मचारियों का प्रबंध के साथ एक सहचर्य (Association) है। अन्य शब्दों में, प्रबंध एवं श्रमिकों का मिलकर निर्णय लेना या कर्मचारियों द्वारा प्रबंधकीय निर्णय लेने की शक्ति में हिस्सा बटाना ही 'प्रबंध में कर्मचारियों का भाग' है।

डॉ० वी० जी० म्हेत्राज (Dr. V.G. Mhetras), इयन क्लेग (Ian Clegg), कीथ डेविस (Keith Devis) तथा डॉ० के० सी० एलेक्जेंडर (Dr. K.C. Alexander) आदि अनेक विद्वानों ने उद्योग में सहभागिता को अपने-अपने अनुसार परिभाषित किया है। किंतु सभी परिभाषाओं में श्रमिकों की सहभागिता को एक ऐसी प्रक्रिया माना गया है जिसके अंतर्गत श्रमिक प्रबंध के निर्णय कार्य में भाग लेते हैं।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि "प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता से तात्पर्य है कि वे प्रबंध के विभिन्न स्तरों की निर्णयन प्रक्रिया के अधिकार में हिस्सा बांटते हुए लाभ में भाग लें ताकि वे उत्तरदायित्व का हिस्सा बांटने को भी प्रोत्साहित हों।"

प्रबंध में श्रमिकों को भाग प्रदान करने के उद्देश्य
(Objectives of the Workers' Participation in Management)

'प्रबंध' में श्रमिकों के भाग की व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य स्थिरता के साथ 'आर्थिक विकास' को प्राप्त करना है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार- "उपक्रम स्तर पर श्रम एवं प्रबंध के मध्य सहयोग का विकास करने वाले साधन तीन उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार के साधन (i) कर्मचारियों, समुदाय और उपक्रम के सामान्य हित के लिए उत्पादकता में व द्धि करने में, (ii) उत्पादन-प्रक्रिया और उद्योग के कार्य-कलापों में कर्मचारियों को अपनी भूमिका के बारे में एक अच्छी समझ प्रदान करने में और (iii) कर्मचारियों की आत्माभिव्यक्ति की इच्छा को संतुष्ट करने में सहायता प्रदान करेंगे। इस प्रकार औद्योगिक शांति, मधुर संबंधों और सहयोग में व द्धि की ओर अग्रसर हुआ जा सकेगा।"

आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक द ष्टिकोण ने 'प्रबंध में कमर्चारियों के भाग' की व्यवस्था के अग्रांकित उद्देश्य हैं-

प्रबंध में श्रमिकों के भाग के उद्देश्यों को 3 भागों में बांटा जा सकता है- (i) आर्थिक उद्देश्य, (ii) सामाजिक उद्देश्य, (iii) मनोवैज्ञानिक उद्देश्य।

1. आर्थिक उद्देश्य से हमारा आशय यह है कि श्रम और प्रबंध में सहयोग की भावना द्वारा उत्पादन व उत्पादकता में व द्धि करना तथा औद्योगिक संबंधों में सुधार करना होता है। इसके अधिकता लाभ के स्थान पर अधिकतम आर्थिक कल्याण को महत्व दिया जाता है।
2. **सामाजिक उद्देश्य** - सामाजिक द ष्टि से श्रम का प्रबंध में भाग का उद्देश्य औद्योगिक विवादों को दूर करना व औद्योगिक शांति के लिए वातावरण तैयार करना होता है। इसके अंतर्गत श्रमिक को समाज में उचित स्थान दिलाना, प्रतिष्ठा बढ़ाना, हीन स्थिति से बचाना, अपने आपको अभिव्यक्त करने की भावना को संतुष्टि प्रदान करना व औद्योगिक लोकतंत्र की स्थापना करना शामिल किया जा सकता है।
3. **मनोवैज्ञानिक उद्देश्य** - इस उद्देश्य से तात्पर्य उद्योग में मानवीय तत्व को मान्यता प्रदान करना, कार्य में गौरव की भावना उत्पन्न करना तथा आत्मभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना है अर्थात् इस व्यवस्था का उद्देश्य श्रमिकों में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन लाना है जिससे वे स्वयं को एक मशीन का पुर्जा ही न समझकर स्वयं को उत्पादन कार्य में सहयोगी समझने लगें।

श्रमिकों के प्रबंध में भाग लेने के विभिन्न रूप अथवा विधियां
(Forms of Workers' Participation in Management)

श्रमिकों को प्रबंध में निम्न रूपों में हिस्सा दिया जा सकता है-

1. **सहभागीदारी (Co-partnership)** - इस योजना के अंतर्गत श्रमिक को कंपनी का एक अंशधारी बना लिया जाता है जिससे वह अंशधारियों की भांति कंपनी की नीति-निर्धारण में हिस्सा ले सकता है तथा अंशथाति के रूप में उन्हें लाभों में भी हिस्सा मिल जाता है। श्रमिक बहुमत में होने पर वे अपना एक प्रतिनिधि संचालन मंडल में भी चुन सकते हैं और इस प्रकार कंपनी की नीतियों पर भी अपना प्रभाव डाल सकते हैं। लेकिन भारत में सभी श्रमिकों की यह स्थिति नहीं है कि वे कंपनी के इतने अंश क्रय कर सकें।
2. **श्रम संचालन की नियुक्ति (Employee's Rrepresentation on Board)** - इस योजना के अंतर्गत संचालक मंडल में श्रमिकों के एक या दो प्रतिनिधियों को (किसी निश्चित आधार पर) संचालक के रूप में शामिल कर लिया जाता है। इन संचालकों को भी वही अधिकार प्राप्त होते हैं जो कि अन्य संचालकों को प्राप्त होते हैं। यह पद्धति इंग्लैंड व अन्य यूरोपीय देशों में अपनायी गई है, लेकिन आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई है, क्योंकि श्रम-संचालन अल्पमत में होने के कारण संचालक मंडल के निर्णय को प्रभावित नहीं कर पाते हैं तथा वे जोखिमपूर्ण निर्णयों में भाग लेने की ओर कोई अभिरुचि प्रदर्शित नहीं करते हैं लेकिन फिर भी वे श्रमिकों के द ष्टिकोण को रखने में अवश्य सफल होते हैं। अतः संघर्ष के समय उनके साथ मिल बैठकर कोई समझौता किया जा सकता है।

3. **संयुक्त परामर्श (Joint Consultation)** - इस पद्धति में श्रमिकों और प्रबंधकों के प्रतिनिधियों की संयुक्त समितियां बना दी जाती हैं तथा संस्था के उद्देश्यों व कार्यों में श्रमिकों को कार्य करने का पूर्ण अवसर दिया जाता है तथा किसी समस्या पर संयुक्त रूप से विचार किया जाता है और अपने सुझाव प्रबंधकों के पास भेजने होते हैं। ये सुझाव केवल परामर्श के रूप में ही होते हैं। किंतु प्रबंध सामान्यतः इनको मान लेता है क्योंकि इसमें श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं।

   भारत में 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव में यह कहा गया है कि संयुक्त प्रबंध परिषदों का विकास औद्योगिक संबंधों की संरचना में एक आवश्यक कड़ी के रूप में किया जाना चाहिए। इसके लिए 1956 में एक त्रिपक्षीय अध्ययन मंडल ने विभिन्न यूरोपीय देशों का दौरा किया तथा अपनी रिपोर्ट 1957 में सरकार को पेश की। भारतीय श्रम सम्मेलन ने 1957 में इस रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए इन परिषदों की भूमिकायें बतायीं- (i) परामर्शात्मक, (ii) संप्रेषणात्मक तथा प्रशासनात्मक। प्रारंभ में यह योजना स्वैच्छिक रूप से प्रारंभ की गई थी लेकिन सरकार ने ऐसी परिषदें बनाने का अधिकार अपने अधिकार में रखा है।

4. **सुझाव-योजना (Suggestion Scheme)** - इस योजना के अंतर्गत श्रमिकों से प्रबंधकीय नीतियों, व्यवस्थाओं, व्यवहारों, क्रियाओं, उत्पादन प्रणालियों, कार्य की दशाओं, अनुसंधान व अन्य मामलों में सुधार हेतु उपयोगी व व्यवहारिक सुझाव आमंत्रित किए जाते हैं। उपयोगी सुझावों को उचित विचार के पश्चात् कार्यान्वित किया जाता है व ऐसे सुझाव देने वाले कर्मचारियों को पुरस्कार, परितोषण व मान दिया जाता है। इससे प्रबंध को नए-नए विचार मिलते हैं और प्रबंध में सुधार करने का अवसर मिलता है

5. **कार्य परिषदें (Committees)** - इन समितियों की स्थापना भारतीय औद्योगिक संघर्ष अधिनियम 1947 के अंतर्गत की गई है। वह औद्योगिक विवादों को दूर करने की एक आंतरिक व्यवस्था है। इसमें किसी विवाद के संबंध में एक कार्य परिषद बना दी जाती है जिसमें दोनों पक्षों के प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक समस्या के लिए अलग कार्य परिषद बनायी जा सकती है। यह पार्षद केवल सुझावात्मक होती है। अतः इसकी सिफारिशें प्रबंधकों द्वारा मानी जानी आवश्यक नहीं है लेकिन फिर भी प्रबंध इनको मान्यता देते हैं क्योंकि इसमें दोनों पक्षों के प्रतिनिधि होते हैं।

   भारत में लोक पद्धति - उपरोक्त विधियों में से भारत के अंतर्गत संयुक्त परामर्श विधि का प्रचलन अधिक हुआ है। इस विधि के अंतर्गत भारत में 'संयुक्त प्रबंध परिषदों (Joint Management Council) की स्थापना की व्यवस्था की गई है। भारत में 1957 के भारतीय श्रम सम्मेलन में स्वीकार एक रिपोर्ट के अनुसार इन संयुक्त प्रबंध परिषदों की तीन भूमिकाएं- (i) परामर्शात्मक (Consultative), (ii) सम्प्रेषणात्मक (Communicative) एवं, (iii) प्रशासनात्मक (Administrative) प्रदान की हैं।

   ये संयुक्त प्रबंध परिषदें कार्य की दशाओं में सुधार, उत्पादकता में व द्धि, सुझाव, प्रोत्साहन, अनुबंध पालन, निर्देशों के आदान-प्रदान में सुविधा, सहयोग की भावना जाग त करने तथा स्थायी आदेशों के संशोधन आदि के संबंध में कार्य करती हैं।

श्रमिकों की प्रबंध में भागेदारी

(Workers' Participation in Management in India)

स्वतंत्रता के उपरांत भारत ने समाजवादी समाज की स्थापना का संकल्प किया जिसकी पूर्ति के लिए यह एक आवश्यक कदम है कि श्रमिकों को उद्योगों के प्रबंध में भाग दिया जाए। सन् 1947 के औद्योगिक संघर्ष अधिनियम में कार्य समितियों की स्थापना का प्रावधान किया गया था। सन् 1948 व 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव में स्पष्ट कहा गया था कि एक समाजवादी प्रजातंत्र में श्रमिक विकास के सामान्य कार्य में साझेदार है, जिसमें उन्हें उत्साह से हाथ बटाना चाहिए, सामूहिक विचार विनिमय होना चाहिए और जहां-जहां संभव हो श्रमिकों और तकनीकी विशेषज्ञों को प्रबंध में भाग देना चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कहा गया था कि "प्रजातांत्रिक समाज के संगठन से पहले औद्योगिक जनतंत्र की स्थापना आवश्यक है और योजना को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने हेतू श्रम का प्रबंध के साथ अधिकारिक सहयोग होना चाहिए इससे उत्पादकता बढ़ेगी, जो उपक्रम, श्रमिक एवं समाज सभी के लिए हितकारी है, उत्पादन विधि और उद्योग के संचालन के विषय में कर्मचारियों का ज्ञान बढ़ेगा एवं कर्मचारियों को अपनी भावना प्रकट करने का अवसर मिलेगा जिससे श्रम और प्रबंध के आपसी संबंध मधुर बनेंगे।" इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रथम परिषदें बनाने का सुझाव था जिसमें प्रबंधकों, तकनीकी विशेषज्ञों और

श्रमिकों के प्रतिनिधि लिए जायें तथा प्रारंभ में योजना की प्रयोगात्मक आधार पर संगठित उद्योगों की बड़ी इकाइयों में लागू किया जाये।

त तीय योजना में भी कहा गया था "आर्थिक व्यवस्था के शांतिपूर्ण और प्रजातांत्रिक ढंग से विकास हेतु उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों को भाग देने के विचार को एक बुनियादी सिद्धांत के रूप में स्वीक ति देना आवश्यक है।"

श्रमिक सहभागिता हेतु प्रयास

(Efforts towards workers' participation in India)

1. *सन् 1956 का अध्ययन दल*

श्रम प्रबंध सहयोग के संबंध में अध्ययन करने के लिए भारत सरकार के विशेषज्ञों का एक दल यूरोपीय देशों को गया था। उसकी रिपोर्ट (1957) में निम्न सुझाव थे-

1. संयुक्त परिषदों और श्रम संघों के दायित्व स्पष्ट किये जायें। श्रम संघों को संयुक्त परिषदों से सहयोग करना चाहिए।
2. सरकार संयुक्त परिषदों वाले उद्योगों में अधिनियम बनाकर श्रमिकों को प्रबंध में भाग देने की योजना लागू करे। अच्छा हो, यदि उद्योगों को योजना से अलग रखा जाए। योजना उन उद्योगों में लागू की जाए, जिनकी प्रबंध व्यवस्था अच्छी हो।
3. उद्योगों में संयुक्त परिषदें स्थापित की जायें। कई शाखाओं वाले उद्योग या कारखाने की एक ही मिली-जुली परिषद हो। जो उद्योग कई राज्य व क्षेत्रों में फैले हैं, उनके लिए स्थानीय, प्रादेशिक व राष्ट्रीय परिषदें बनायी जायें। उप-परिषदें और अध्ययन गोष्ठियां भी बनाई जा सकती है। सदस्यों की संख्या आपसी समझौते के द्वारा नियत की जाएं।
4. फैक्ट्री में काम करने के लिए नियम बनाने, छंटनी, विवेकीकरण कारखाने की बंदी, नये ढंग अपनाने, दंड देने आदि मामलों में संयुक्त परिषदों से परामर्श लेना चाहिए।
5. श्रमिकों के लिए कॉलेज, रात्रि कक्षाओं, शिक्षा गोष्ठियों के आयोजन का भार सरकार अपने कंधों पर ले और इस हेतु त्रिदलीय संगठन बनाए, जिनमें सेवायोजकों, सरकार और श्रमिकों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिएं।
6. उस उद्योग की आर्थिक दशा, बाजार दशा, उत्पादन और बिक्री-कार्यक्रम, आय-व्यय और हानि-लाभ कारखाने के संचालन, वार्षिक चिट्ठों आदि के बारे में जानकारी पाने तथा इनके विषय में सुझाव देने का अधिकार होना चाहिए।
7. इनका उद्देश्य श्रम व पूंजी के मध्य संपर्क रखना, श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर को सुधारना, श्रमिकों की सुझाव देने की भावना को बढ़ाना और अनुशासन रखना है।
8. इन परिषदों को श्रम कल्याण प्रशिक्षण व्यवस्था आदि का भार सौंपा जा सकता है।

2. *भारत श्रम सम्मेलन (1959)*

पंद्रहवें श्रम सम्मेलन (1957) में श्रमिकों के प्रबंध में भाग लेने पर विचार विनिमय किया गया और यह निष्कर्ष निकला कि योजना को वैद्यानिक रूप में न अपनाया जाय और प्रयोग के रूप में इसे प्राइवेट और सरकारी क्षेत्रों के 50 औद्योगिक संस्थाओं में प्रारंभ किया जाये। एक उप-समिति भी नियुक्त की गई, जिसने ऐसी संस्थाओं की सूची बनाई। प्राइवेट सेक्टर में सूती वस्त्र, जूट, इंजीनियरी, रसायन, सीमेंट, तंबाकू, कागज, चीनी, खनिज और बागान उद्योग एवं पब्लिक सेक्टर से यातायात वर्कशाप, रेलवे वर्कशाप, डाक व तार, शिपयार्ड,छापाखाना और बिजली उद्योग लिये गये। इकाइयों के चयन में यह ध्यान रखा गया कि उसमें सुसंगठित कार्यशील और मजबूत श्रमिक संघ मौजूद हों, कम से कम 500 श्रमिक कार्य करते हों, सेवायोजक किसी केंद्रीय सेवायोजक संघ का और श्रमिक किसी केंद्रीय फेडरेशन का सदस्य हो तथा इकाई के अंदर औद्योगिक संबंध अच्छे रहे हों।

3. *त्रिदलीय गोष्ठी (1958)*

सन् 1958 में त्रिदलीय गोष्ठी का अयोजन किया गया। इसमें उन उपक्रमों से चुने हुए नियोक्ताओं और श्रमिकों ने भाग लिया, जिन्हें कि योजना के परीक्षण हेतु चुना गया था। इस गोष्ठी ने संयुक्त प्रबंध परिषद् के गठन के विषय में सिफारिशें कीं, यथा-

1. परिषद् में अधिकतम 12 प्रतिनिधि (नियोक्ताओं व श्रमिकों के बराबर-बराबर प्रतिनिधि) होना।
2. सभी निर्णय सर्वसम्मति से लिया जाना।

3. प्रतिनिधियों को प्रबंध संबंधी प्रशिक्षण देना।
4. श्रमिक प्रतिनिधियों का मनोनयन उपक्रम विशेष के श्रम द्वारा आवश्यकतानुसार गैर श्रमिक भी लिया जाना किंतु 25% से अधिक नहीं।
5. अखिल भारतीय स्तर पर विशेषज्ञों का पैनल इन परिषदों को राय देने के लिए।
6. परिषद के निर्णयों को शीघ्र कार्यान्वित करना। परिषदों के कार्य निम्न रखे जायें- कल्याण कार्यों का प्रशासन, सुरक्षा व्यवस्था व अवकाश सूची का निरीक्षण, उपक्रम की आर्थिक स्थिति, उत्पादन एवं विक्रय कार्यक्रम वार्षिक चिट्ठे आदि के संबंध में विचार विनियम करना एवं सुझाव देना।

4. *द्वितीय विचार गोष्ठी* *(1960)*

मार्च 1960 में द्वितीय विचार गोष्ठी श्रम मंत्रालय के तत्वाधान में देहली में आयोजित हुई। अब तक योजना के संबंध में प्रगति को असंतोषजनक अनुभव करते हुए गोष्ठी में यह विचार प्रकट किया गया कि केंद्रीय एवं प्रांतीय स्तरों पर ऐसे अपयुक्त संगठन बनाये जायें, जो यह देखें कि परिषदें प्रभावी ढंग से कार्य करें। योजना संबंधी कठिनाईयों को दूर करने के उद्देश्य से केंद्र में एक त्रिदलीय समिति बनाने का भी सुझाव दिया गया था।

5. *अंतर्राष्ट्रीय मंत्री सम्मेलन* *(1961)*

सन् 1961 में हुई अंतर्राज्यीय मंत्री सम्मेलन में यह नीति स्वीकार की गई कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के जहां अनुकूल वातावरण हों इस व्यवस्था को लागू किया जाये।

मार्च 1961 में केंद्रीय श्रम शिक्षा मंडल द्वारा मुंबई में तीन क्षेत्रीय सेमिनार आयोजित किये गए।

सन् 1975, अक्टूबर माह में जयपुर में श्रमिकों की सहभागिता पर एक सेमिनार आयोजित किया गया। इसमें तीन प्रकार की संस्थाओं की स्थापना की संस्तुति की गयी। ये संस्थाऐ हैं।

1. शॉप स्तर कमेटी
2. विभागीय कमेटी
3. कारखाना स्तर कमेटी।

उपरोक्त सभी स्तर की कमेटियां सहभागिता के कार्य को वास्तविक रूप प्रदान करायेंगी तथा उसके पक्ष में आने वाली समस्याओं के समाधान में सहायक होंगी। इन प्रयासों के अलावा 1977 तक अनेक ऐसे प्रयास किये गए जो कि योजना के कार्यान्वयन को सरल बना सकें। साथ ही साथ समस्त योजनाओं का मूल्यांकन भी होता रहा। इस मूल्यांकन के आधार पर नई विस्त त योजना 30 दिसंबर 1983, को घोषित हुई जो कि सभी उद्योगों में कार्यशाला स्तर एवं विभागीय स्तर पर श्रमिक सहभागिता को सुनिश्चित करती है।

मूल्यांकन

(Evalution)

श्रमिक सहभागिता की अवधारणा पश्चिमी देशों से उधार लिया गया द ष्टिकोण हैं अतः भारतीय संस्क ति एवं सामाजिक पर्यावरण में इसकी सफलता एक प्रश्न बन गयी थी। यद्यपि भारत में नीति-निर्धारकों ने इसकी सफलता हेतु अनेक प्रयास किये किंतु इसके वाछिंत परिणाम अभी तक परिलक्षित नहीं हो रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में सरलीकरण की प्रक्रिया के आगमन से शायद इस और हम कुछ आर्थिक उपलब्धियां प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की आशा की जा, सकती है।

श्रमिक सहभागिता योजनाओं का विकास

(Development of Workers' Participation Schemess)

श्रमिक सहभागिता की सफलता हेतु हमारें देश में अनेक प्रयास किये किंतु इसकी सफलता सदैव संदिग्ध ही रही। शायद इसका राजनैतिक कारण, भारत की सामाजिक एवं सांस्क तिक विशेषताएं ही रहीं। दूसरी ओर भारतीय श्रमिक का जीवन दर्शन भी आर्थिक, इसकी असफला के लिए बराबर का उत्तरदायी है।

भारत में श्रम सहभागिता की योजनाओं का विकास

(Development of workers' Participation Schemes in India)

हमारे देश में इन योजनाओं का विकास निम्नवत् हुआ है-

1. *कार्य सममितियां (Works' Committees)*

प्रबंध में श्रमिकों को भाग देने की दिशा में उठाया गया एक प्रारंभिक कदम संयंत्र स्तर पर कार्य समितियों की व्यवस्था करने का है। ऐसी समितियों की स्थापना 1947 के औद्योगिक संघर्ष अधिनियम के अंतर्गत अनिवार्य रूप से की जाती है, बशर्ते कि औद्योगिक इकाई में 100 या अधिक श्रमिक कार्य करते हों। इन समितियों से आशा की गई थी कि ये नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच संयुक्त विचार-विमर्श को प्रोत्साहित करेंगी और मतभेदों का समाधान पारस्परिक वार्ता द्वारा हल करते हुए औद्योगिक शांति को बढ़ायेंगी। 1982 के अंत तक 1,446 औद्योगिक संस्थानों में कार्य समितियां कार्यशील रहीं जिसके अंतर्गत 12.57 लाख श्रमिक कार्यरत थे। अनुभव बतलाता है कि ये समितियां अधिक प्रभावी नहीं बन सकी हैं, क्यों कि-

1. इनकी सिफारिशें मात्र सलाहकारी हाती है, बाध्य करने वाली नहीं।
2. प्रबंधकों ने इन समितियों के कार्य में कोई विशेष रुचि नहीं ली है।
3. इनका कार्य क्षेत्र स्पष्ट नहीं है।
4. श्रम संघों के साथ प्रतिस्पर्धा भी चलती है।

2. *संयुक्त प्रबंध परिषद (Joint Management Councils)*

श्रमिकों को प्रबंध में भाग देने की योजना को अधिक व्यापक बनाने के उद्देश्य से संयुक्त प्रबंध परिषदों की योजना ऐच्छिक आधार पर सन् 1958 में शुरू की गई। पहली परिषद् अक्टूबर, 1958 में मद्रास में निजी क्षेत्र के अंतर्गत सैम्पसन ग्रुप की मिलों में स्थापित हुई। सार्वजनिक क्षेत्र में पहली संयुक्त प्रबंध परिषद् 1958 में हिंदुस्तान मशीन टूल्स फैक्ट्री बैंगलोर में बनी। जनवरी, सन् 1975 में सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्र में मिलकर कुल 80 परिषदें कार्यशील थीं।

उपलब्धियां व कठिनाइयां - परिषदों के उद्देश्य की पूर्ति इसकी संख्या से नहीं वरन् उस सहयोग भावना से आंकी जानी चाहिए, जिससे इन्होंने कार्य किया है। सचमुच ही जहां-जहां परिषदों ने सहयोग की सच्ची भावना से कार्य किया है, वहां उन्होंने अच्छे औद्योगिक संबंध, स्थायी श्रम शक्ति, उत्पादकता व द्धि, अपव्यय में कमी, बढ़े हुए लाभों के रूप में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की हैं, किंतु योजना के कार्यान्वयन में कुछ कठिनाइयां भी रही हैं, जैसे-

1. उभय पक्षों द्वारा योजना को अपने अधिकारों में कटौती करना समझ जाना;
2. ऊपर से तो उभय पक्षों के संघों ने योजना का जोरदार स्वागत किया किंतु व्यवहार में वांछित सहयोग व उत्साह नहीं दिखाया;
3. श्रम संघों की विविधता एवं पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता के कारण परिषदों में उनके प्रतिनिधित्व में कठिनाई होना;
4. परिषद् जैसे स्तर की संयुक्त समितियों (कार्य समितियां, संकटकालीन उत्पादन समितियां, कैंटीन समितियां, कल्याण समिति) आदि के अस्तित्व के कारण भ्रम पैदा होना;
5. सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा एक आदर्श नियोक्ता का उदाहरण प्रस्तुत करने में असफलता;
6. श्रमिकों की अशिक्षा;
7. व्यवहारिक पहलुओं के बजाय सिद्धांतों पर जोर;
8. प्रारंभिक परिषदों की असफलता का या सीमित सफलता का अप्रोत्साहनकारी प्रभाव होना आदि।

3. *संचालक मंडल में श्रमिकों को प्रतिनिधित्व देना*

सैद्धांतिक रूप से इस व्यवस्था को सरकार ने स्वीकार कर लिया है। लोक उद्योगों के संबंध में ऐसे प्रतिनिधित्व संबंधी सरकारी नीति 26 नवंबर, 1971 को घोषित की गई थी, किंतु कुल मिलाकर प्रगति धीमी है। पोर्ट ट्रस्टों और राष्ट्रीयक त बैंको के अतिरिक्त

केंद्रीय सरकार के केवल 2 उपक्रम हिंदुस्तान आर्गेनिक कैमीकल्स लि० व हिंदुस्तान एंटीबायोटिक्स लि० में ही श्रमिकों को संचालक मंडल में प्रतिनिधित्व दिया गया है। धीमी प्रगति के लिए कारण निम्नांकित हैं-

1. प्रबंधकों द्वारा सीमित समर्थन देना,
2. श्रम संबंधों की असंतोषजनक दशा,
3. श्रम संघों की मान्यता देने की समस्या,
4. श्रम संघों की बहुसंख्या एवं उनके प्रतिस्पर्धा
5. कार्य समितियों आदि की असफलता।

संयुक्त एवं शॉप परिषदें

भारत सरकार के श्रम मंत्रालय ने 30 अक्टूबर, 1950 को संयुक्त एवं शॉप परिषदों संबंधी एक योजना लागू की, जिसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं-

1. ***योजना का सीमा क्षेत्र*** - यह योजना प्रारंभ में निर्माण और खनन उद्योगों में सार्वजनिक व निजी और सरकारी क्षेत्रों के अंतर्गत लागू होगी। केवल वही इस योजना में रखे जायेंगे जिनमें 500 या अधिक श्रमिक हैं। योजना में शॉप विभागीय स्तर पर शॉप परिषदों (Shop Councils) और उपक्रम स्तर पर संयुक्त परिषदों (Joint Councils) की स्थापना का प्रावधान है।
2. ***शॉप परिषदों के कार्य*** - उत्पादन, उत्पादकता एवं व्यापक कार्यकुशलता को बढ़ाने की द ष्टि से शॉप परिषदें निम्न कार्यों पर ध्यान देंगी- मासिक व वार्षिक उत्पादन लक्ष्यों की प्राप्ति से सहायता देना, क्षति को दूर करना और मशीनी क्षमता व जनशक्ति के अधिकतम उपयोग पर ध्यान देना, कम उत्पादिकता क्षेत्रों की पहचान करना व इसके कारणों को दूर करना, अनुपस्थिति संबंधी अध्ययन करना व सुझाव देना, सुरक्षा संबंधी उपाय करना, अनुशासन बनाये रखने में सहयोग देना, कार्य की भौतिक स्थितियों को सुधारना, कल्याण एवं स्वास्थ्य संबंधी कार्यवाहियां करना एवं उत्पादन आंकड़े, उत्पादन अनुसूचियां और लक्ष्यों की प्रगति से संबंधित विषय में समुचित उभय पक्षीय संपर्क करना।
3. ***शॉप परिषदों का गठन एवं कार्य विधि*** - प्रत्येक विभाग का शॉप के लिए अलग-अलग (नियोजित कर्मचारियों की संख्या का ध्यान रखते हुए) अथवा एक से अधिक विभागों व शॉपों के लिए एक परिषद् गठित करनी होगी। इसका दायित्व नियोजक पर होगा। प्रत्येक परिषद् में नियोजकों व श्रमिकों के बराबर-बराबर प्रतिनिधि रहेंगे। दोनों पक्ष अपने-अपने प्रतिनिधियों का मनोनयन करेंगे। नियोजक प्रतिनिधि संबंधित एकक के ही व्यक्ति होंगे। श्रमिकों के प्रतिनिधि विभाग या शॉप विशेष में से ही होंगे उपक्रम में कितनी परिषदें स्थापित की जाएं अथवा एक परिषद से कितने विभाग या शॉप संबंधित रखे जायें इसका निश्चय नियोजक मान्यता प्राप्त संघ या विभिन्न पंजीक त श्रम संघों या श्रमिकों के साथ सलाह करके स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल किसी तरीके से करेगा। प्रत्येक परिषद् की सदस्य संख्या भी इसी प्रकार निश्चय की जाएगी किंतु यह सामान्यतः 12 से अधिक न होगा। परिषद् के निर्णय आम राय के आधार पर तय होंगे, मतदान प्रक्रिया के आधार पर नहीं। अनिर्णीत मामलों को कोई भी पक्ष संयुक्त परिषद् के विचारार्थ संदर्भ कर सकता है अथवा आशय के अभाव में प्रत्येक निर्णय संबंधित पक्षों द्वारा एक माह के अंदर ही कार्यान्वित करना होगा और इसकी अनुपालन रिपोर्ट परिषद् को भेजी जाएगी। एक से अधिक शॉपों या संपूर्ण उपक्रम को प्रभावित करने वाले निर्णय विचार हेतु संयुक्त परिषद को निर्देशित किए जाएंगे। परिषद् का कार्यकाल 2 वर्ष का होगा। आकस्मिक रिक्तियां मनोनीत या निर्वाचित सदस्यों द्वारा क जायेंगी। बैठकें आवश्यकतानुसार समय-समय पर बुलाई जायेंगी। शॉप परिषद का चेयरमैन प्रबंधकों द्वारा मनोनित होगा, उप-चेयरमैन को श्रमिक सदस्य अपने में से निर्वाचित करेंगे।
2. ***संयुक्त परिषदें*** - पूरे एकक (Unit) के लिए एक संयुक्त परिषद होगी, जिसमें उस यूनिट में वास्तविक रूप से लगे व्यक्ति ही सदस्य हो सकेंगे। परिषद् का कार्यकाल 2 वर्ष होगा। मुख्य प्रबंधक इसका चेयरमैन है और श्रमिक सदस्यों द्वारा अपने में से निर्वाचित उप-चेयरमैन होगा। परिषद् अपने में से एक सदस्य को सचिव नियुक्त करेगी। आकस्मिक रिक्तियों पर सदस्यों को सबंद्ध पक्ष द्वारा मनोनीत किया जायेगा। परिषद् तीन माह में कम से कम एक बार अवश्य बैठक करेगी। इसका निर्णय सर्वसम्मति के आधार पर होगा। वह दोनों पक्षों पर बाधित होगा और उसे एक माह के भीतर ही लागू करना होगा। परिषद् के निम्न कार्य होंगे- पूरे यूनिट के लिए कार्यकुशलता, अधिकतम उत्पादन और मशीन व श्रमिक

संबंधी उत्पादकता, मानकों का निर्धारण करना, ऐसे कार्य करना जो एक से अधिक शॉप या विभागों को प्रभावित करें, शॉप परिषदों के अनिर्णीत मामलों को निपटाना, कार्य योजना व उत्पादन लक्ष्यों की प्राप्ति के संबंध में सारे प्लांट से संबंधित मामलों पर विचार करना, श्रमिकों की कुशलता के विकास एवं प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करना, कार्य घंटों व छुट्टियों संबंधी अनुसूचियां तैयार करना, श्रमिकों के उपयोगी सुझावों को पुरस्क त करना, कच्चे माल और निर्मित माल की किस्म का सुधार, एकक के लिए सामान्य स्वास्थ्य, कल्याण एवं सुरक्षा संबंधी उपाय करना।

नवीनतम उपलब्ध आकड़ों के अनुसार, उपर्युक्त योजना केंद्रीय सरकार की 545 इकाइयों, राज्य सरकारों की 167 इकाइयों, निजी क्षेत्र की 1,132 इकाइयों और सरकारी क्षेत्र की 99 इकाइयों में लागू हो चुकी थीं। श्रमिकों को प्रबंध में अधिक प्रभावी भाग दिलाने के उद्देश्य से श्रमिक क्षेत्र (Workers Sector) की धारण का विकास किया जा रहा है।

श्रमिकों के प्रबंध में सहभागिता की धीमी प्रगति के कारण
(Causes for Slow Progress of Workers' Participation in Management)

हमारे देश में प्रबंध में श्रमिकों को भाग देने का सिद्धांत अभी व्यापक रूप में नहीं अपनाया गया है। अब तक जो भी प्रगति की गई है, उसका आधार प्रायः स्वैच्छिक रहा है। इसके अतिरिक्त इनके मार्ग में अनेक बाधायें रही हैं जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. योजना के प्रति असंतोष तथा श्रमिकों एवं नियोक्ताओं का वैमनस्य।
2. श्रमिकों के बजाय उनके प्रतिनिधि प्रबंध में भाग लेते हैं जिससे उनकी स्वयं की योग्यता का उपयोग नहीं हो पाता।
3. श्रम संघों का आपसी वैमनस्य।
4. नियोजकों तथा श्रमिकों के मध्य समिति के विचार, उद्देश्य तथा लाभ संबंधी बातों का परिपक्व न होना।
5. सशक्त व सुद ढ़ श्रम संघों का अभाव तथा एक ही उपक्रम में एक से अधिक श्रम संघों की विद्यमानता।
6. एक ही उपक्रम में अनेक संयुक्त समितियों का विद्यमान होना, जैसे- कार्य समितियां, स्थायी समितियां आदि।
7. श्रमिकों में सहयोग एवं सहभागिकता के विचारों की कमी।
8. जहां समितियां बना दी गई हैं, वे निष्क्रिय हैं तथा उनकी प्रगति असंतोषजनक है।

श्रमिकों की प्रबंध में सहभागिता को सफल बनाने के लिए सुझाव
(Suggestions for the Success of Workers' Participation in Management)

1. **विस्त त नीति की घोषणा** - सरकार इस संबंध में एक विस्त त नीति की घोषणा करे जिसमें श्रम भागीदारी की विभिन्न योजनाओं को समन्वित रूप में देखा जाए तथा इन योजनाओं को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित किया जाए।
2. **श्रम संघों का पुनर्गठन** - श्रम संघों का पुनर्गठन किया जाए और इनके सुद ढ़ प्रतिनिधित्व एवं प्रजातंत्रात्मक गठन एवं विकास पर जोर दिया जाए।
3. **श्रम संघों की महत्ता** - प्रबंध श्रम संघों को औद्योगिक उत्पादकता को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली उपकरण समझें।
4. **परंपरा एवं संस्थागत व्यवस्था में परिवर्तन** - प्रबंध में श्रमिकों की भागिता की परंपरागत एवं संस्थागत व्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन एवं व्यवस्थायें की जायें-
   i. कार्य समितियां समाप्त कर दी जायें।
   ii. संयुक्त प्रबंध परिषदों को संयुक्त एवं शॉप परिषदों में परिवर्तित कर दिया जाए।
   iii. संयुक्त कार्यात्मक समितियों के काम, क्षेत्र एवं कार्य विधि में एकरूपता स्थापित की जाए।
   iv. उत्पादन समितियों को संयुक्त शॉप एवं शॉप परिषद में मिला दिया जाए।
   v. एक संयुक्त उपक्रम में श्रम भागीदारी की द्विस्तरीय योजना (शॉप एवं उपक्रम स्तर) तथा बहु संयंत्र में त्रिस्तरीय योजना (शॉप, संयंत्र एवं उपक्रम स्तर) लागू की जायें।

vi. उद्योग एवं राष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक सौदाकारी के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के सभी उद्योगों में "राष्ट्रीय संयुक्त सौदाकारी समितियां" स्थापित की जायें।

5. **योजना का शीघ्र एवं प्रभावशाली क्रियान्वयन** - लाभभागिता एवं स्वामित्व भागिता का योजनाओं की शीघ्र एवं प्रभावशाली क्रियान्वयन किया जाये।

6. **सहयोगात्मक उपाय** - जिन उपक्रमों में से योजनायें लागू की जायें उनमें आवश्यक सहयोगात्मक उपायों जैसे- उत्पादकता व द्धि में श्रमिकों का उचित भाग, उचित एवं न्याय पूर्ण मजदूरी, आय भिन्नताओं में न्यूनता, नेत त्व शैली में प्रजातंत्रात्मक प्रव ति, उचित संदेशवाहन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

7. **श्रमिकों की भागिता के क्षेत्रों का वर्गीकरण** - यह अच्छा रहेगा कि प्रबंध में श्रमिकों की भागिता की द ष्टि से कार्यों को निम्न क्षेत्रों में वर्गीक त कर दिया जाए-

   i. निर्णय सहित प्रशासनिक क्षेत्र;

   ii. निर्णय क्षेत्र;

   iii. विचार-विमर्श क्षेत्र;

   iv. सूचना भागिता क्षेत्र;

   v. सामूहिक सौदाकारी क्षेत्र, एवं

   vi. पूर्ण प्रबंध द्वारा निर्णय लेने का क्षेत्र।

8. **श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था** - प्रबंधकों एवं श्रम संघों को स्वतः या सलाहकारी और प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ मिलाकर श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

   महात्मा गांधी जी के शब्दों में, "श्रमिकों और नियोक्ता के संबंध को स्वार्थ की भावना से आबद्ध न होकर पारस्परिक सहानुभूति पर स्थिर होना चाहिए।"

Unit-III

अध्याय-11
भारत में श्रम आन्दोलन पर श्रम संघ आन्दोलन का प्रभाव
(Labour Movement in India and Impact of Labour Movement)

भारत मे श्रम-आन्दोलन देर से प्रारम्भ हुआ। इसका प्रधान कारण यह था कि यहां पर औद्योगिक विकास ही देर से हुआ। अतः श्रमिक वर्ग का निर्माण भी अन्य देशों की अपेक्षा देर में हो सका। भारत में सूती वस्त्र, जूट, चाय के बागान और रेलों का विकास सबसे पहले हुआ। अतः प्रारम्भ काल में श्रमिक आन्दोलन भी इन्हीं उद्योगों तक ही सीमित रहा। श्रम-आन्दोलन का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उस समय मजदूरों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। न तो कोई श्रम विधान था, न कोई शक्तिशाली श्रमिक-संघ ही था। अतः उद्योगपतियों द्वारा मजदूरों का भयानक रूप से शोषण किया गया।

प्रथम फैक्टरी एक्ट सन् 1881 में पास हुआ जिसके द्वारा बच्चों के कार्य के घण्टों पर नियन्त्रण किया गया। इससे पूर्व उद्योगों मे कार्य के घण्टों, बच्चों की उम्र आदि पर नियन्त्रण नहीं था। कारखानों में 6-7 वर्ष के बच्चों से भी 13-14 घण्टे काम लिया जाता था। वयस्क मजदूरों से कार्य लेने की कोई सीमा ही नहीं थी। मजदूरी की दरें अत्यन्त नीची थी। उनके साथ दुर्व्यवहार, यहां तक कि मार-पीट तक की जाती थी। सन 1884 में नारायण मेधाजी लोखाण्डे ने फैक्टरी कमीशन के सामने कहा था, ''मुकद्दम लोग स्कूल मास्टरों के सामन बेंत रखते हैं और बच्चों को पीटते रहते हैं।'' सन् 1889 में मजदूरों ने एक प्रतिवेदन में लिखा था कि एक दिन की अनुपस्थिति पर दो दिन का वेतन काट लिया जाता है। सन् 1927 तक इस नियम में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

सन् 1901 में बम्बई में सबसे पहले बिजली लगी। इसके परिणामस्वरूप रात को काम करना सम्भव हो गया और मजदूरों के शोषण में भी बहुत व द्धि हो गई। सन् 1905 मे लोवाट फ्रेजर ने लिखा था ''सूती वस्त्र उद्योग में सम द्धि का समय है। मिलें भारी मात्रा में माल बना रही हैं और खूब लाभ कमा रही है। बिजली लग जाने पर मजदूरों से 14-15 घण्टे तक काम लिया जाने लगा।''

जूट मिलों की स्थिति भी बहुत खराब थी। 1 मई, सन् 1875 को कलकत्ते के स्टेट्समैन पत्र में लिखा था ''मजदूरों की दशा खराब है। उनको सवेरे 6 बजे से रात के 8 बजे तक काम करना पड़ता है।'' कुछ परिस्थितियों में 20 तथा इससे भी अध्कि घण्टे काम करने का प्रमाण मिलता है। उद्योगों के प्रारम्भ काल की इस स्थिति के विषय में प्रसिद्ध मजदूर नेता श्री पाद अम त डांगे लिखते हैं- ''उन दिनों उद्योगों में 'जंगल का नियम' था। कार्य के घण्टों की कोई सीमा नहीं थी। आदमी, औरत तथा बच्चे क्रमशः 12, 16, 18 यहां तक कि 23 घण्टे भी काम करते थे। न इतवार की छुट्टी थी न काम शुरू करने और बन्द करने का कोई समय था। 5-4 वर्ष के बच्चे पूरे समय काम करते थे और यदि ये काम करते हुए मर जाते थे या घायल हो जाते थे तो उनके जीवन का कोई महत्व नहीं था।''

कारखानों में गन्दगी का साम्राज्य था। नील, बदबू और अन्धकार से भरे स्थानों में मजदूरों को काम करना पड़ता था। न सुरक्षा का कोई प्रबन्ध था न सफाई का। सन् 1907 में एक जांच कराई गई थी तो यह पाया गया कि कारखानों के मजदूरों का स्वास्थ्य

कैदियों के स्वास्थ्य से भी खराब था। उनका औसत वजन बहुत कम पाया गया।

मजदूरों को भयानक परिस्थितियों में रहना पड़ता था। अधिकतर ये गन्दी बस्तियों में रहते थे जहां सफाई का कोई प्रबन्ध नहीं था। सन् 1886 की प्लेग में और सन् 1918 के एन्फ्लूएन्जा में हजारों मजदूर मर गए। इसके अतिरिक्त हैजा, मलेरिया तो प्रतिवर्ष विनाश करते ही थे। आसाम के चाय के बागानों में इस प्रकार के मरने वालों की संख्या हजारों में थी।

गांव से जीविका की तलाश में आए हुए मजदूरों को इस प्रकार के जीवन का सामना करना पड़ा। इस प्रकार की व्यवस्था के प्रति विद्रोह स्वाभाविक था और देश भर में धीरे-धीरे श्रम-आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। भारतीयण श्रम-आन्दोलन को हम निम्नलिखित युगों में बांट सकते हैं:

क. सूत्रपात का युग (1875-1918)

ख. प्रारम्भिक विकास (1918-1928)

ग. समाजवादी प्रभाव का युग (1928-1939)

घ. युद्ध-काल तथा युद्धोत्तर-काल (1939-1947); तथा

च. आधुनिक युग (1947....)

(क) आन्दोलन का सूत्रपात (1875-1918)

श्रमि संघ भरत में बाद में बने थे पहिले श्रमिकों द्वारा संघर्ष प्रारम्भ हुआ। इस युग में मजदूरों में संगठन बहुत कम था परन्तु कार्य और जीवन की परिस्थितियां इतनी खराब थी कि संघर्ष करना अनिवार्य हो गया। सबसे पहले कुछ दयालु सुधारकों ने मजदूरों के कल्याण के लिए कुछ कार्य किया। बंगाल में प्रतापचन्द्र मजूमदार नामक ब्रम्हसमाजी ने मजदूरों के लाभ के लिए पाठशालाएं खोली। इस दिशा में शशिपद बनर्जी का नाम उल्लेखनीय है। इसका जन्म सन् 1840 में बारानगर कलकत्ते हुआ था और इन्होंने ब्रह्म समाज का मत स्वीकार किया था। सन् 1866 में इन्होंने बारानगर में तथा सीरामपुर मे मजदूरों के लिए पाठशालाएं खोलीं। सन् 1870 में मजदूरों के एक क्लब की स्थापना की जहां उनकी नैतिक उन्नति के लिए प्रयत्न किए जाते थे। सन् 1874 में इन्होंने 'भारत श्रमजीवी' नामक पत्र निकाला जिसकी 15,000 प्रतियां छपती थीं और वह एक पैसे में बिकता था। यह भारत का पहला श्रमिकों के लिए प्रकाशित समाचार-पत्र था।

भरत मे उद्योगों के प्रारम्भ होने के बाद अनेकों हड़तालों का उल्लेख मिलता हैं सन् 1862 में हावड़ा के 1200 मजदूरों ने कार्य के घण्टे कम करने के लिए हड़ताल की थी। इसी वर्ष ईस्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी के क्लर्कों ने अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में हड़ताल की। सन् 1863 में बम्बई के नाइयों, 1872 में कलकत्ते के तांगा चलाने वालों की हड़तालों का प्रमाण है। सन् 1873 मे कलकत्ते में कम्पाजीटरों ने सरकारी प्रेस में अत्यन्त सफल हड़ताल की थी। नागपुर के सूती वस्त्र के कारखाने में 'एम्प्रेस मिल' में सन् 1877 में मजदूरी के प्रश्न को लेकर हड़ताल हुई थी। परन्तु यह सब विवाद अस्थायी थे और अधिकतर मामलों में मजदूरों को ही दबना पड़ता था।

भारत में श्रम-आन्दोलन की नींव डालने वाले सोहराब जी शापुरजी बंगाली नामक पारसी सज्जन थे। इन्होंने यह अनुभव किया कि मजदूरों के कल्याण के लिए श्रम विधान का होना आवश्यक है। साथ ही मजदूरों का संगठन भी जरूरी है। इन्होंने दोनों ही दिशाओं में प्रयतन किया। इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड में एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था जिसका उद्देश्य भारत के कारखानों, खासतौर से कपड़े के कारखानों में मजदूरों का शोषण बन्द कराना था। इसका प्रधान कारण यह है कि भारत में मजदूर अधिक घण्टे कार्य करते थे। मजदूरी कम थी, बच्चे भी थोड़ी मजदूरी पर बहुत समय कार्य करते थे। इस प्रकार भारत में कपड़े के उत्पादन की लाग लंग्लैंड से भी कम थी। इस प्रतियोगिता में इंग्लैंड को कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि कुछ व्यक्ति वास्तव में भारतीय मजदूरों से साहनुभूति रखते थें बंगाली ने इन लोगों से सम्पर्क स्थापित किया और उनके द्वारा भारत सरकार पर दबाव डाला कि मिलों में कानून बनाया जाए। सन् 1875 में बम्बई फैक्ट्री कमीशन ने कुछ सुधार करने की सिफारिश की परन्तु सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया। सन् 1878 में बंगाली फैक्ट्री कानून बनाने की रूप-रेखा बनाकर सरकार को भेजी परन्तु सरकार ने उस अस्वीकार कर दिया।

प्रथम फैक्ट्री अधिनियम, 1881

पहला फैक्ट्री अधिनियम 18 जुलाई, सन् 1881 से लागू हुआ। यह उन सब कारखानों में जारी किया गया जिनमें 100 या अधिक कर्मचारी काम करते थे और शक्ति का प्रयोग होता था। अस्थायी कारखाने, बागानों आदि में यह लागू नहीं किया गया। 7 वर्ष से कम अवस्था के बाल श्रमिकों की भर्ती कर दी गई और 12 साल तक के बच्चों के लिए 9 घण्टे कार्य की सीमा निर्धारित की गई। उनको बीच में एक घण्टे का अवकाश और सप्ताह में एक दिन की छुट्टी की व्यवस्था की गई। कुछ नियम सुरक्षा और निरीक्षण के लिए भी बनाए गए।

बम्बई मिलहैण्ड्स एसोसिएशन
(Bombay Millhand's Association)

उस युग की एक बड़ी उल्लेखनीय घटना इस प्रथम श्रमिक-संघ की स्थापना थी। इसे बंगाली और नारायण मेघाजी लोखाण्डे के प्रयत्नो से आरम्भ किया गया। यह कथन कि यह सन् 1890 से प्रारम्भ हुआ और यह एक अस्थायी समिति थी, सही नहीं है। सन् 1883 से 1892 तक इसके कार्यों का प्रमाणा मिलता है और नारायण मेघाजी लोखाण्डे के जीवन-काल 1886 तक यह कार्य करता रहा था। लोखाण्डे एक मजदूर थे। बम्बई के मोरारजी गोकुलदास मिल में साधारण मजदूरी करते थे। फिर इन्होंने हिन्दुस्तन मिल और माण्डवल मिलों में काम किया। बाद में पूरा समय श्रम-आन्दोलन में देना शुरू कर दिया।

सन् 1881 से इन्होंने 'दीनबन्धु' नामक-मजदूरों का समाचार-पत्र निकाला जिसके यह सम्पादक भी थे। 'दीनबन्धु' और 'एसोसियेशन' का दफ्तर सन् 1884 में बाइकुल्ला में था। सन् 1890 में यह एसोसिएश्न के अध्यक्ष थे और 1892 में इस संस्था के सचिव (Secretary) थे।

इस युग की श्रम-आन्दोलन से सम्बन्धित प्रधान घटनाओं को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता हैः

सन् 1884: बम्बई फैक्ट्री समिति की नियुक्ति की गई जिसने श्रमिकों की कार्य की दशाओं की जांच की और कुछ सुधार करने की सिफारिश की। इसी वर्ष 5500 मिल मजदूरों ने अपना मांग-पत्र इस समिति को भेजा जिसमें साप्ताहिक छुट्टी करने की मांग की गई थी।

सन् 1890-20 अप्रैल, सन् 1890 को बम्बई में 10,000 मजदूरों की एक सभा हुई जिसमें प्रस्ताव पास किया गया कि मिल मालिक संघ साप्ताहिक छुट्टी की घोषणा करें। उल्लेखनीय है कि इस मांग को मिल मालिक संघ ने स्वीकार कर लिया था। इस सभा में दो महिला मजदूरों ने भाषण दिया थां

सन् 1890: फैक्ट्री की नियुक्ति की गई जिसके सदस्य शापुर्जी बंगाली और लोखाण्डे थे। इस सीमिति ने मजदूरों के लिए अन्य सुधारों की राय दी। साप्ताहिक छुट्टी करने का सुझाव भी दिया गया।

सन् 1891 में नया फैक्ट्री कानून पास हुआ जिसके अनुसार कई नए संशोध्न किए गए। 50 से अधिक मजदूरों को काम पर रखने वाले कारखानों पर भी नियम लागू किया गया। बाल श्रमिकों की नियुक्ति की सीमा 9 कर दी गई और 9 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए 7 घण्टों की व्यवस्था की गई। बच्चों और महिलाओं के लिए कार्य के घण्टे 5 बजे सन्ध्याकाल तक निश्चित कर दिए गए। सब मजदूरों को एक साप्ताहिक अवकाश और बीच में आधे घण्टे छुट्टी की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त निरीक्षण, सुरक्षा आदि के सम्बन्ध में भी कुछ नियम बनाए गए।

सन् 1882 और 1890 के बीच में 25 बड़ी-बड़ी हड़तालें हुईं। अधिकांश हड़ताले मजदूरी, काम के घण्टे और व्यवहार के प्रश्नों को लेकर हुईं। 1892 में ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई जांच की रिपोर्ट में इनका विस्त त वर्णन मिलता है।

सन् 1907 में भारतीय श्रमिक समिति (Indian Labour Commission) मि. मारीसन की अध्यक्षता में की गई। श्रम के इतिहास में इसका प्रतिवेदन अत्यंत महत्वूपर्ण है। इसी समिति में डॉ. टी. एम. नायर भी सदस्य थे और अपना विस्त त विरोध पत्र इन्होंने पेश किया था जो श्रम-आन्दोलन के इतिहास का अविस्मरणीय कागज माना जाएगा। डॉ. नायर ने मजदूरों के ऊपर लगाए गए अयोग्यता आदि के आरोपो का जबरदस्त खण्डन किया।

सन् 1908 में लोकमान्य तिलक के गिरफ्तार होने के विरोध में मजदूरों ने एक भारी हड़ताल की। यह मजदूर वर्ग की प्रथम राजनैतिक हड़ताल थी। बम्बई में इसके विरोध में दंगे भी हो गए जिनमें बहुत से व्यक्ति हताहत हो गए।

सन् 1911 में फैक्ट्री कानून में फिर संशोधन हुआ। इसमें पुरूषों के लिए कार्य के घण्टे 12 महिलाओं के लिए 11 बच्चों के लिए 6 निर्धारित कर दिए गए। सुरक्षा सफाई के लिए कुछ कठोर नियम बनाए गए। सन् 1875-1918 के काल में कई संगठनों का निर्माण हुआ। उनमें से कुछ निम्नलिखित थेः

1. **भारत और बर्मा के रेलवे कर्मचारियें का संयुक्त संघ (Amalgamated Society of Railway Servants of India and Burma):** यह सन् 1897 में बना। इसे पूरी तरह श्रमिक-संघ नहीं कहा जा सकता। परन्तु बाद में 1828 में यही एक शक्तिशाली श्रमिक संघ में परिणित हो गया। यह मुख्यतः यूरोपियन और एंग्लो-इण्डियन कर्मचारियों की संस्था थी और हड़ताल में इसका विश्वास नहीं था।

2. **भारतीय श्रमिक-संघ (Indian Labour Union):** सन् 1907 में श्रम समिति ने इसका उल्लेख किया है। उस वर्ष ए. सी. बनर्जी इसके अध्यक्ष थे। इन्होंने समित के आगे 16 मजदूरों को उपस्थित किया था। दुर्भाग्य से इस संघ का जो मजाक बुकानन ने बनाया उसे सभी भारतीय लेखकों ने स्वीकार कर लिया है और इस श्रमिक-संघ को कोई भी महत्व नहीं दिया गया।

3. **मुहम्मदन एसोसिएशन बंगाल (Mohammedan Association):** यह सन् 1895 में बनाई हुई। इसमे कलकत्ते के क्षेत्र के जुट मिलों के कर्मचारी थे। सन् 1907 में काजी जहीरुद्दीन इसके अध्यक्ष थे। यह संघ मजदूरों के कल्याण के कार्य करता था परन्तु उनके हितों की रक्षा के लिए अधिकारियों से बातचीत भी करता था। इसे श्रम-कल्याण समिति, कहना ठीक नहीं है यद्यपि इसका कार्यक्रम उग्र नहीं था।

4. **छापेखाने के कर्मचारियों का संघ (Printer's Union, Calcutta):** सन् 1905 में इसकी स्थापना हुई। इसी वर्ष इसके द्वारा एक हड़ताल भी की गई परन्तु इसके बाद इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

5. **कागार हितवर्धक सभाः** सन् 1909 में बम्बई में प्रारम्भ की गई इसके प्रमुख कार्यकर्ता वी.आर. नरे, एस.के. बोले आदि थे। इसका प्रधान उद्देश्य मजदूरों की सेवा करना था ओर जीवन को सुधार करना था। परन्तु इस सभा ने काम के घण्टे के लिए कुछ संघर्ष भी किया था। इसने 'कामगार समाचार' नामक पत्र भी प्रकाशित किया।

6. **समाज सेवा संघ (Social Service Union):** एन. मोतीवाला ने मजदूरों के कल्याण के लिए यह संघ प्रारम्भ किया। इसके द्वारा दो समाचार-पत्र भी प्रकाशित किए गए। सन् 1911 में इस सभा ने अकाल पीड़ितों की उल्लेखनीय सहायता की। सन् 1971-18 में किराए की दरें घटाने के लिए आंदोलन भी किया था।

7. **श्री वेंकटेश गुणावम त वर्षिणी सभाः** यह मद्रास में श्रमिक कल्याण का कार्य करती थी और इसके प्रधान संचालक पी. केशव पिल्लई थे। मद्रास का श्रमिक आंदोलन मूलतः इसी सभा के प्रभाव से उत्पन्न हुआ। इस सभा ने वाडिया को बहुत सहायता दी थी यद्यपि यह एक श्रम-कल्याण तक ही अपने कार्यों को सीमति रखती थी।

8. **मराठा एक्यखू सभा (Maratha Aikyeckhoo Sabha):** सन् 1908 में समिति के सामने के.ए. केलुस्कर ने बताया कि गत बीस वर्षों से यह सभा मजदूरों की सेवा कर रही थी। इसका प्रधान कार्य भी मजदूरों में नैतिकता का विचार करना था।

(ख) प्रारम्भिक विकास (1918-1928)

प्रथम महायुद्ध में श्रमिकों का जो शोषण हुआ उसके दुष्परिणाम युद्ध के समाप्त होने के पूर्व ही दिखाई देने लगे थे। सन् 1917 तक औद्योगिक संबंधों मे कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। उस समय हड़ताल का अर्थ था कि राजद्रोह, जिसके लिए मजदूर या नेता तैयार नहीं थे। बी.पी. वाडिया जैसे नेता भी हड़ताल के लिए इसलिए तैयार नहीं थे कि इससे सरकार के युद्ध-प्रयत्नों को आघात पहुंचता था, परन्तु मजदूरों में व्याप्त असन्तोष छिपा नहीं था। सन् 1917 में बम्बई मिल मालिक संघ के अध्यक्ष सर दिनशा वाचा ने कहा था- ''युद्ध के पश्चात् सारे संसार में मजदूरों की मनोव त्ति में परिवर्तन अनिवार्य हैं। 19 वीं शताबदी में मजदूर गुलाम था। अब वह अपने समय, श्रम और मेहनत का स्वामी होकर अपने अधिकार के लिए संघर्ष करेगा..... हवा

में उड़ने वाला तिनके तूफान की दिशा का संकेत दे रहे हैं। सब तरफ असन्तोष व्याप्त है यद्यपि युद्ध ने उसे दबा दिया है।''

स्वतंत्रता आंदोलन के अनेकों नेता मजदूर आंदोलन को संचालित करने लगे थे। मजदूर अब संगठित थे और मार्ग-दर्शन भी प्राप्त था। मिल मालिकों ने झुकने से इन्कार कर दिया। एक सप्ताह की हड़ताल के पश्चात् सरकार ने हस्तक्षेप किया और तब समझौता हुआ जिसमें मज़दूरों की अधिकांश मांगें स्वीकार की गई। 21 जनवरी, सन् 1919 को हड़ताल समाप्त हुई, परन्तु 2 जनवरी, सन् 1920 को दूसरी सामूहिक हड़ताल बम्बई में हुई और मजदूरों को सफलता प्राप्त हुई।

अहमदाबाद में मजदूरों का नेत त्व अनसूया साराभाई कर रही थीं। उन्होंने सन् 1917 में एक हड़ताल कराई जिसके द्वारा मजदूरों का वेतन बढ़ा। उसी वर्ष उसी वर्ष 'प्लेग बोनस' के प्रश्न को लेकर एक ऐतिहासिक संघर्ष छिड़ गया जिसका नेत त्व गांधी जी ने किया। सन् 1916 से मजदूरों को 'प्लेग भत्ते' के रूप में अतिरिक्त पैसा मिलता था। बाद में मिल मालिकों ने इसे समाप्त करने का निश्चय किया। मजदूरों ने इसके स्थान पर महंगाई के भत्ते की मांग की।

मद्रास में विवाद का नेत तव बी.पी. वाडिया नामक पत्रकार और नेता के हाथों में आया। यह न्यू इण्डिया (New India) नामक पत्र के सम्पादक और श्रीमती एनी बीसेंट के सहयोगी थे। मद्रास के मजदूरों की दशा देखकर उन्होंने 'मद्रास लेबर यूनियन' की स्थापना 13 अप्रैल, सन् 1918 को की। यह भारत का प्रथम आधुनिक ढंग का श्रमिक-संघ था। इसके अतिरिक्त इनके प्रयत्नों से मद्रास में चार संघ बने जिनके संरक्षक भी वाडिया ही थे। इन सब संघों की सदस्य संख्या 20,000 के करीब थी।

वाडिया युद्ध-काल में हड़ताल नहीं चाहते थे क्योंकि वे राजनैतिक रूप में युद्ध में अंग्रेजों की विजय ही चाहते थे। अतः जब तक लड़ाई चलती रही मद्रास संघ ने हड़ताल नहीं की। युद्ध के पश्चात् 1920 मे संघर्ष छिड़ गया। उस समय तक कोई कानून ऐसा नहीं था जो श्रमिक-संघों का संरक्षण करता। वाडिया पर षड्यन्त्र करने का मुकदमा चला और उन पर 7,000 पाउण्ड जुर्माना हो गया। वाडिय को वायदा करना पड़ा कि वे श्रमिक आन्दोलन से कोई संबंध नहीं रखेंगे।

वाडिया जैसा मजदूर नेता भारत में कम हुआ है। वे अत्यन्त दूरदर्शी, बुद्धिमान और ईमानदार व्यक्ति थे। उन्होंने 1919 में भारतीय श्रम का प्रतिनिधित्व विदेशों में किया और भारतीय श्रमिकों की दुर्दशा पर विदेशों में बीसियों भाषण दिए। उस समय भारत के वे अद्वितीय मजदूर नेता थे। यदि विदेशी शासन ने उन्हें हटने से बाध्य न किया होता तो भारतीय आंदोलन बहुत आगे बढ़ गया होता।

युद्धोत्तर भारत में बहुत श्रमिक-संधों की स्थापना हुई। सन् 1912 में एन. एम. जोशी ने कहा ाि कि भारत में 50 से 100 तक श्रमिक-संघ हैं।

सन 1921 में बम्बई औद्योगिक विवाद समिति (Bombay Industrial Dispute Committee) ने पाया कि बम्बई में 48 संघ थे जिनकी सदस्य संख्या 20,863 थी। शेष राज्य में 17 संघ थे जिनकी सदस्य संख्या 8,252 थी। इस प्रकार बम्बई प्रान्त में ही 77 संघ थे। श्री एस.डी. पुनेकर के अनुसार सन् 1920 में अखिल भारतीय श्रमिक कांग्रेस से संबंधित संघों की संख्या अग्रांकित तालिकानुसार थी।

प्रथम युद्ध के पश्चात् श्रमिक-आंदोलन के तीव्र होने के कुछ कारण थे:

1. भारत में स्वतंत्रता आंदोलन को बहुत बल मिला। सर्वप्रामि वाडिया ने स्वतंत्रता संग्राम में मजदूरों के महत्व को स्वीकार किया और उन्होंने एक बार कहा था, ''मजदूर आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्वपूर्ण भाग बनाने की आवश्यकता है। यदि मजदूरों का योगदान नहीं होगा तो राष्ट्रीय आंदोलन प्रजातंत्र के सिद्धांतों पर नहीं चल पाएगा।'' बाद मे गांधी जी, लाला लाजपत राय, सी.एफ. एण्ड्रज आदि व्यक्तियों का सहयोग मजदूर आन्दोलन को प्राप्त हुआ इससे न केवल मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी बल्कि स्वतंत्रता संग्राम को भी बल दिया।

प्रान्त	संबंधित तथा प्रभावित संघ	सदस्य संख्या संबंधित संघों की
बम्बई	56	46,881
बंगाल	5	2,505

उ.प्र.	8	15,800
सी.पी	6	128
सिन्ध	2	128
मद्रास	16	3,559
बिहार	1	
पंजाब	9	70,253
दिल्ली	2	—
रियासतें	1	1,600
लंका	1	—
योग	107	1,40,854

2. इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना अखिल भारतीय श्रमिक कांग्रेस (All India Trade Union congress) का निर्माण था। इससे देश भर के मजदूरों में एकता बढ़ी और आन्दोलन को गति मिली। यह महासंघ सन् 1920 में बना और इसके प्रथम अध्यक्ष लाला लाजपतराय और एन.एम. जोशी सचिव थे। अन्य सदस्यों में जोसेफ बैप्टिस्टा, कानजी द्वारकादास, बी.पी वाडिया जवाहरलाल नेहरू, सैय्यद अब्दुलला ब्रेलवी आदि थे।

3. युद्धोत्तरः काल में मजदूरों को उत्कृष्ट-नेत त्व प्राप्त हुआ। इसी समय में बी.पी. वाडिया, एन.एम. जोशी कानजी द्वारकादास, शंकरलाल, बैंकर जोसेफ, बैप्टिस्टा, अनसूया बेन जैसे नेता मजदूर आंदोलन को मिले और जो न केवल संघर्षों का संचालन कर सकते थे बल्कि मजदूरों के सामने स्पष्ट उद्देश्य भी रख सकते थे।

4. इस काल में श्रमः आन्दोलन के आदर्श (Ideology) स्पष्ट रूप में सामने आए। इससे पूर्व मजदूरों का संघर्ष निषेधात्मक था- अर्थात् वे केवल कुछ बुराइयों के प्रतिकार के लिए लड़ते थे। बाद में सिडनी वेब, महात्मा गांधी और कार्ल मार्क्स के सिद्धान्त मजदूर आन्दोलन का आधार बन गए। इससे मजदूरों का लक्ष्य स्पष्ट हुआ।

5. सन् 1919 में अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन (International Labour Organisation) की स्थापना हो गई जिसके प्रभाव से संसार के व्यक्तियों का ध्यान मजदूरों के महत्व की तरफ गया। इसने भी श्रमिक आंदोलन को बल दिया।

6. युद्धोत्तरः काल में अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर मजदूरों में चेतना बढ़ी और एक देश के आंदोलन की प्रतिक्रिया दूसरे देशों पर हुई। युद्ध में देशों का परस्पर सम्पर्क काफी बढ़ गया था। अतः मजदूर आंदोलन का भी प्रभाव एक-दूसरे पर हुआ।

7. सन् 1917 में रूस की राज्य क्रांति ने संसार के मजदूरों के हौंसले को बहुत बढ़ा दिया। कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों को लेनिन ने साकार रूप प्रदान किया और संसार के मजदूरों को विश्वास हो गया कि मजदूरों का राज्य संभव ही नहीं अनिवार्य भी है।

1918-1928 के मजदूर आन्दोलन की प्रव त्तियां (श्रम संघ आन्दोलन का उदय)

इस युग में मजदूर आंदोलन की निम्नलिखित प्रव त्तियां देखने में आईं:

1. मजदूर आंदोलन के लक्ष्यों और आदर्शों का विकास। यह लक्ष्य मूलतः तीन व्यक्तियों द्वारा निर्धारित हुआ। एक सिडनी वेब का आदर्श था। इसके अनुसार उद्योगों में पंजातंत्र का विस्तार करना ही श्रमिक संघ का प्रधान लक्ष्य हैं दूसरा लक्ष्य कार्ल मार्क्स द्वारा निर्धारित हुआ। इसके अनुसार श्रमिक संघ का प्रधान उद्देश्य साम्यवाद की स्थापना होना चाहिए। केवल थोड़े से सुधार से इनको सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। महात्मा गांधी ने नैतिकता के आदर्श को सामने रखा। मजदूर और उद्योगपतियों को परिवार के सदस्यों के समान रहना और कार्य करना चाहिए।

2. श्रम-आंदोलन पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक होने लगे। सन् 1918 में पहली सामूहिक हड़ताल बम्बई में हुई बाद

में यह सामान्य हो गई। एक कारखाने की हड़ताल दूसरे कारखाने पर भी प्रभाव डालने लगी। पहले के समान संघर्ष बिखरे हुए नहीं होते थे।

3. दूसरी महत्वपूर्ण बात मजदूरों में राजनैतिक चेतना का उदय होना था। सन् 1908 में लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी पर इसका पहला लक्षण दिखाई दिया था परन्तु 1918 के बाद तो मजदूरों ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4. वर्ग चेतना का विकास एक अन्य महत्ववूर्ण लक्ष्य था। सन् 1918 में जॉन स्कर (Jonn Scurr) भारत में आए थे। उन्होंने लिखा था -''भारत की यात्रा में मुझे जिस चीज ने अत्यंत प्रभावित किया वह थी मजदूरों में कष्ट के बावजूद जाग ति। पश्चिम के मजदूर आंदोलन की गूंज पूर्व के बाजारों में सुनाई देने लगी है और श्रमिक-संघ उत्पन्न हो रहे हैं।''

परन्तु इस युग मे श्रम-आंदोलन बहुत अधिक सुद ढ़ नहीं था। बहुत से विवाद अनावश्यक और निरर्थक भी थे। सन् 1919 में औद्योगिक विवाद समिति ने विवादों के निम्नलिखित लक्षण बताए थेः

''बहुत सी हड़ताले बिना सूचना के होती हैं। हड़ताल से पहले स्पष्ट मांगें स्थिर नहीं की जातीं, हड़ताल शुरू होने के बाद लम्बी चौड़ी मांगें सामने रखी जाती हैं। किसी शक्तिशाली संगठन का अभाव है,.... परन्तु मजदूर दीर्घकाल तक हड़ताल कर सकता है।''

परन्तु इस समय के श्रमिक संघ संगठन की द ष्टि से बहुत संतोषजनक नहीं थे। न तो उनका कोई निश्चित विधान था, न चन्दे आदि से प्राप्त होने वाली राशि का कोई हिसाब होता था, अधिकांश संघ अत्यंत दयनीय स्थिति में होते थे। सन् 1930 की मंदी ने उद्योगों को बड़ा आघात पहुंचाया और उससे मजदूर आंदोलन को भी आघात पहुंचा। कारखानों का माल बिकने में कठिनाई होने लगी। अतः मजदूरों के साथ उनका व्यवहार भी खराब हो गा। मजदूरों में बेकारी बढ़ने लगी।

सन् 1924 और 1925 में बम्बई में सामूहिक हड़तालें हुईं।

इस समय की महत्वपूर्ण घटनाएं निम्नलिखित थींः

1. सन् 1922 में फैक्टरी अधिनियम में संशोधन हुआ जिसके द्वारा दैनिक कार्य 11 घण्टे कर दिए गए और सप्ताह का अधिनियम कार्य 60 घण्टे किया गया।

2. सन् 1923 में भारतीय खादान अधिनियम (Indians Mines Act) पास हुआ और खान मजदूरों का कार्य इसके द्वारा निर्धारित हुआ।

3. इस काल में कुछ शक्तिशाली संघ निर्मित हुए जिसमें जमशेदपुर लेबैर एसोसियेशन, गिर्नी कामगार यूनियन बम्बई, बक्बई टैस्टाइल 5 लेबर यूनियन, ऑल इण्डिया रेलवेमैन्स फेडरेशन मुख्य थे।

4. सन् 1923 में 'Workmen's Compensation Act' द्वारा मजदूरों की क्षति-पूर्ति का प्रावधान किया गया।

5. सन् 1926 में भारतीय श्रम-आंदोलन को पहली बार वैधनिक संरक्षण मिला जब 'Indian Trade Union Act' पास हुआ।

6. सन् 1921 में समाजवादी विचार का प्रारम्भ हुआ जिसका प्रारम्भ एम. एन. राय ने किया। इसके बाद श्रीपाद अम त डांगे, जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव इत्यादि समाजवादी नेताओं ने इस विचार को फैलाया। मजदूर आंदोलन भी इनके द्वारा बहुत प्रभावित हुआ। आगे चलकर समाजवादी और साम्यवादी अलग-अलग शिविरों में बंट गए।

(ग)समाजवादी प्रभाव का युग (1928-1939)

भारत में समाजवादी विचार का सूत्रपात सन् 1911 में मानवेन्द्रनाथ राय के द्वारा हो चुका था जिनका अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आंदोलन से संबंध था। इन्होंने एक पत्रिका भी निकाली थी जिसका नाम 'Vanguard and Messes' था। सन् 1923 में श्रीपाद अम त डांगे ने एक साप्ताहिक-पत्र सोशलिस्ट (Socialist) प्रारम्भ किया और बंगाल में मुजफ्फर अहमद ने 'जनवाणी' बंगला भाषा में 1924 में निकाला। सन् 1924 में कानपुर षड्यंत्र केस में सरकार ने साम्यवादियों को दमन करना शुरू किया। इसमें एम.एन. राय मुख्य मुजरिम माने गए थे। बहुत से विदेशी साम्यवादी नेताओं ने भी भारतीय साम्यवाद को बल दिया।

बम्बई में डांगे ने 'क्रांति' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। सन् 1926 और 1927 में इन लोगों ने कई शक्तिशाली संघ बना लिए और कई हड़तालें भी सफलतापूर्वक कराईं। सन् 1924 में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी कांग्रेस में भारतीय साम्यवादी दल को श्रम-सघों से नेत त्व लेने की सलाह दी गई। यहीं से साम्यवादी संघवाद प्रारम्भ हुआ। बहुत से राष्ट्रवादी युवक साम्यवादी दल में सम्मिलित होने लगे और सन् 1928 तक श्रम आंदोलन में इनका प्रभाव काफी हो गया।

इन्होंने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। सन् 1925 में डी.आर. थेंगडी इस संस्था के अध्यक्ष हुए जो साम्यवादी विचारों के थे। एस.वी. घाटे नामक साम्यवादी इसके मन्त्री बनाए गए। इस प्रकार नेत त्व क्रमशः साम्यवादी लोगों के हाथों में आने लगा राष्ट्रवादी नेता जैसे एन.एम. जोशी, दीवान चमनलाल और वी.वी. गिरी चाहते थे कि साम्यवादी तत्वों का प्रभाव कम हो परन्तु उनकी अधिक सफलता नहीं मिली। सन् 1929 में साम्यवादी नेत त्व और अधिक शक्तिशाली हो गया। परिणाम यह हुआ कि देश में हड़तालों का नया दौरा शुरू हो गया। सन् 1926 में 28 हड़तालें देश में हुई थी जबकि 1928 में इनकी संख्या 128 पहुंची।

इस काल में भारतीय श्रम-आंदोलन में तीन प्रव तियां स्पष्ट हो गई। एक तो राष्ट्रवादी तत्व जिसका नेत त्व जवाहरलाल नेहरू आदि कर रहे थे। दूसरा साम्यवादी तत्व और तीसरा विशुद्ध श्रमिक संघवादी जिसके प्रेणता एन.एम. जोशी थे। इन तीन प्रव तियों के परस्पर संघर्ष के परिणामस्वरूप अखिल भारतीय स्तर पर कई बार नए संघ बने। सन् 1920 में नागपुर में एन. एम. जोशी ने नया संघ बनाया जिसका नाम ट्रेड यूनियन फैडरेशन रखा गया। इसमें 30 श्रमिक संघ और 95,639 सदस्य थे। श्रम कांग्रेस में केवल 21 संघ और 92,797 सदस्य रह गए। सन् 1930 श्रम कांग्रेस फिर दो टुकड़ों में विभाजित हो गई और साम्यवादी नेताओं ने अखिल भारतीय रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस स्थापित कर ली। परन्तु इसमें केवल 12 श्रमिक संघ ही सम्मिलित हुए। इस नए संघ का अस्तित्व तीन वर्ष ही रहा। सन् 1934 में हरिनाथ शास्त्री के प्रयतनों में रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस फिर श्रम कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। फैडरेशन फिर भी अलग रहा परन्तु एकता के प्रयास चलते रहे। सन् 1938 में फैडरेशन औश्र कांग्रेसी फिर से एक हुए और 1940 में नागपुर अधिवेशन में फिर से सब संघों का अधिवेशन हुआ। नागपुर से ही विघटन प्रारम्भ हुआ था वहीं पर एकता हुई।

सन् 1938-39 में भारत में 562 पंजीकृत (Registered) श्रमिक संघ थे जिनके सदस्यों की संख्या 3,99,159 थी। सन् 1938-39 में हड़तालों की संख्या 406 थी जिनमें 4,09,075 मजदूरों ने भाग लिया था। और करीब 50 लाख श्रमिकदिवसों (Man-days) की हानि हुई थी।

(घ) युद्ध एवं युद्धोत्तर काल (1939-1947)

द्वितीय महायुद्ध से देश की राजनैति और आर्थिक और समस्याओं का नया रूप सामने आया। जर्मनी की पनडुब्बियों के कारण विदेश का माल आना बहुत क हो गया औश्र उपभोग की अधिकांश सामग्री युद्ध कार्य के लिए ली जाने लगी। सरकार का खर्च बहुत अधिक बढ़ गया जिसके कारण मुद्रा प्रसार बढ़ने लगा औश्र वस्तुओं की कीमतें दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगीं। परिणाम यह हुआ कि मजदूर-वर्ग की कठिनाइयों में बड़ी व द्धि हुई परन्तु मजदूर आंदोलन शिथिल न हुआ। इसका प्रधान कारण राष्ट्रवादी और साम्यवादी नेताओं में मतभेद था। गांधी जी के नेत त्व में राष्ट्रीय आंदोलन युद्ध में सहायता देने के विरुद्ध था। प्रारम्भ में साम्यवादी भी अंग्रेजों के विरुद्ध थे। परन्तु रूस और जर्मनी में युद्ध छिड़ जाने के परिणामस्वरूप साम्यवादियों ने ब्रिटेन के पक्ष का समर्थन शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि मजदूरों का एक दल तो अंग्रेजों के विरुद्ध का और श्रम-आंदोलन जारी रखने के पक्ष में था परन्तु दूसरा दल अंग्रेजों के और भारतीय शासन के पक्ष में चला गया। इस दल ने श्रम-आंदोलन के विरुद्ध प्रचार किया क्योंकि हड़ताल आदि से ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में बाधा पड़ती थी।

श्रम-आंदोलन के कमजोर होने का दूसरा कारण यह था कि कांग्रेस के अधिकाश नेता जेलों में बन्द कर दिए गए और साम्यवादी ही श्रमिक के एकमात्र नेता रह गए और वे हड़तालों के विरुद्ध थे। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश शासन ने दमक चक्र चलाया, भारत रक्षा कानून की धारा 81 अके अंतर्गत किसी भी कार्य को गैर-कानूनी घोषित किय जाने लगा।

मजदूरों की कठिनाइयां दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। निम्नलिखित तालिका से मंहगाई का कुछ अनुमान किया जा सकता हैः

उपभोग सामग्री के निर्देशांक

राज्य	1939	1940	1941	1942	1943	1944	1945
बम्बई	100	107	118	195	219	226	227
मद्रास	100	109	114	156	180	207	228
कानपुर	100	111	181	238	306	314	308

मजदूरों ने महंगाई के भत्ते और बोनस की मांग शुरू की। सभी उद्योग मनमाना मुनाफा कमा रहे थे। कुछ उद्योगों ने बोनस बांटा भी और महंगाई के भत्ते भी दिए परन्तु अनेकों स्थान पर उद्योगपतियों ने कुछ भी देने से इन्कार कर दिया। दमन के कारण बहुत हड़तालें नहीं हुई इस प्रकार ब्रिटिश शासन में मुनाफाखोरी और शोषण का अभूतपूर्व अवसर उद्योगपतियों को मिल गया।

निम्नलिखित तालिका में युद्ध-काल में उद्योगपतियों द्वारा अर्जित मुनाफे का अनुमान किया जा सकता है:

उद्योग द्वारा अर्जित लाभा के निर्देशक

वर्ष	सब उद्योग	जूट	सूती वस्त्र	कागज	लोहा	कोयला
1940	138.0	359.1	142.5	236.3	103.8	6100.8
1941	187.0	344.4	313.6	284.7	133.7	82.6
1942	221.8	351.1	491.3	321.7	110.1	80.5
1943	245.0	276.3	640.0	352.8	111.0	95.6
1944	238.9	310.6	492.1	271.5	117.8	237.0]
1945	233.6	327.6	423.3	279.5	120.2	258.2

इस प्रकार उद्योगों की सम द्धि होते हुए भी मजदूर वर्ग को उसका कोई लाभ नहीं मिला। उनकी वास्तविक मजदूरी (Real Wage) में कमी ही हुई। यद्यपि उनकी मोद्रिक मजदूरी (Nominal Wage) बढ़ी। 1939 को यदि आधार वर्ष माना जाए तो 1945 में मौद्रिक मजदूरी का निर्देशक 210.5 था परन्तु वास्तविक मजूरी का निर्देशांक 74.9 ही रह गया था।

युद्ध-काल में औद्योगिक संघर्षों की स्थिति का अनुमान निम्नलिखित तालिका से किया जा सकता है:

वर्ष	औद्योगिक संघर्ष	भाग लेने वाले कर्मचारियों की संख्या	जन्म दिवस (Man-days) जो नष्ट हुए
1940	322	4,52,539	75,77281
1941	359	2,91,054	33,30,530
1942	693	7,72,654	57,79,965
1943	716	5,25,080	23,42,288
1944	638	5,50,015	34,47,306
1945	820	7,47,350	40,54,499

द्वितीय महायुद्ध के समय में मजदूरों की संख्या में काफी व द्धि हुई है। सन् 1939 में औद्योगिक मजदूर संख्या में 17,51,137 थे जो 1945 में 22,42,977 हो गए। इसका कारण यह था कि युद्ध-काल में उद्योगों की बहुत उन्नति हुई और उत्पादन भी बहुत बढ़ा-नए-नए कारखाने भी खुले। श्रमिक-संघों की संख्या में भी पर्याप्त व द्धि हुई। सन् 1945 में श्रमिक-संघ बढ़कर 865 हो गए और सदस्य संख्या 8,89,388 हो गई।

राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक-संघ में तीव्र राजनीतिक मतभेद उत्पन्न हो गया। सन् 1939 में A.I.T.U.C. एक संगठित संघ था परन्तु युद्ध छिड़ते ही साम्यवादियों और कांग्रेस के शुरू हो गए। जब तक रूस जर्मनी में समझौता रहा साम्यवादी भारतीय श्रम को सघर्ष के लिए उत्तेजित करते रहे। जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो साम्यवादियों ने हड़ताल को जनहित के विरुद्ध घोषित कर दिया। उन्होंने सन् 1942 में गांधी जी द्वारा छेड़े गए भारत छोड़ो आन्दोलन का भी विरोध किया। कांग्रेस और भारतीय साम्यवादी दल ने प्रारम्भ से ही ब्रिटिश शासन को मदद देने से इन्कार किया। सन् 1942 में जब कांग्रेस नेता जेल चले गए तो A.I.T.U.C. नेत त्व साम्यवादियों के हाथ में आ गया जो आज तक उन्हीं के हाथों में है।

युद्ध-काल की दूसरी महत्वपूर्ण घटना मानवेन्द्र राय द्वारा एक नए राजनीतिक दल और नए संघ का निर्माण थी। सन् 1941 में अखिल भारतीय स्तर पर एक श्रमिक फैडरेशन बनाया गया जिसका नाम Indian Federation of Labour रखा गया जिसके अध्यक्ष जमनादास मेहता और सचिव मानवेन्द्रनाथ राय चुने गए। सन् 1946 में इसकी सदस्य संख्या 4,50,479 थी और इससे 193 संघ सम्बन्धित थे। ब्रिटिश सरकार मजदूरी के महत्व से परिचित थी और उस वर्ग को सन्तुष्ट रखने के लिए उसने सन् 1942 में पहली कानफ्रेन्स कराई। यह एक त्रिदलीय संगठन था जिसमें 22 प्रतिनिधि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के और 11 प्रतिनिधि मजदूरों के और 11 उद्योगपतियों के थे। यह निश्चित किया गया कि इसकी बैठक प्रतिवर्ष हो और भारतीय श्रमिकों की समस्याओं पर इसके द्वारा विचार-विमर्श किया जाएं एक कार्यवाहक समिति (Standing Committee) बनाई गई जिसमें 10 प्रतिनिधि सरकारों के 5 मजदूरों के और 5 उद्योगपतियों के रखे गए। A.I.T.U.C. तथा I.F.L. को बराबर प्रतिनिधित्व दिया गया।

सन् 1944 में श्रम-जांच समिति (Labour Investigation Committee) की भी स्थापना की गई। जिसने श्रम की समस्याओं पर महत्वपूर्ण सुझझव दिए। द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होन पर भी महंगाई बढ़ना समाप्त नहीं हुआ। मजदूरों का असन्तोष भी बढ़ता गया और बहुत-सी हड़तालें हुई।

न केवल औद्योगिक मजदूर बल्कि सरकारी कर्मचारी, अध्यापक, रेलवे कर्मचारी आदि सभी वर्ग के कर्मचारियों में असन्तोष था।

(च) आधुनिक काल (1947 के पश्चात्)

भारतीय श्रम आन्दोलन के इतिहास में आधुनिक काल स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद प्रारम्भ होता है। 15 अगस्त, सन् 1947 को कांग्रेस ने शासन सूत्र अपने हाथों में ले लिया। श्रम क्षेत्र में राजनैतिक दलों में इस समय तीव्र स्पर्धा हो रही थी। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (A.I.T.U.C.) साम्यवादी प्रभाव में जा चुकी थी। अतः कांग्रेसी नेताओं ने विशेषकर सरदार बल्लभ भाई पटेल और गुलजारी लाल नन्दा ने एक नया महासंघ बनाने का निश्चय किया। इसका प्रस्ताव मई, सन् 1947 को ही पास किया जा चुका था। तद्नुसार भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस (Indian National Trade Union Congress) की स्थापना हुई। इस संस्था पर गांधीवादी प्रभाव स्पष्ट थां इसके संविधान में लिखा है - ''श्रमिकों के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग में लाए गए साधन अहिंसात्मक और सत्य के अनुरूप होंगे।'' यद्यपि संघ का कार्यक्रम हड़ताल का निषेध नहीं करता परन्तु केवल तभी हड़ताल को अनुमति देता है जब अन्य शान्तिपूर्ण तरीके असफल हो जाते हैं। इस संघ को गांधी जी का आर्शीवाद प्राप्त था और अहमदाबाद टैक्सटाइल एसोसियेशन अपने 60,000 सदस्यों सहित इसमें सम्मिलित हो गया।

दिसम्बर, सन् 1948 में समाजवादी दल ने अपना महासंघ बनाया जिसका नाम 'हिंद मजदूर सभा' रखा गया। शीघ्र ही इसमें 427 श्रमिक संघ सम्मिलित हो गए और सदस्यों की संख्या 6,06,472 हो गई।

अप्रैल सन् 1949 में चौथे अखिल भारतीय महासंघ की स्थापना प्रो. के.टी. शाह की अध्यक्षता में हुई। इसका नाम यूनाईटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस रखा गया। राजनीतिक रूप से संगठन के विचार साम्यवाद की तरफ झुके हुए थे और इसे श्रमिक आन्दोलन में साम्यवाद से समझौता करने में कोई आपत्ति नहीं थी।

अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन की लोकप्रियता घटती जा रही थी और भारतीय ट्रेड यूनियन की शक्ति और सदस्य संख्या बढ़ती जा रही थी। इसका कारण यह था कि सन् 1942 के आन्दोलन में साम्रूवादी बहुत बदनाम हो चुके और तेलंगाना आदि के हिंसक आन्दोलन के कारण सरकार ने साम्यवादी और उनसे संबंधित श्रमिक संधों का दमन शुरू कर दिया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् फिर से हड़तालों का दौर प्रारम्भ हुआ। इसके कई कारण थे।

दिनों-दिन बढ़ती हुई महंगाई ने श्रमिकों को परेशान कर दिया था। एक तरफ उद्योगपति मनमाना लाभ कमा रहे थे और दूसरी तरफ मजदूरों को आर्थिक कष्ट भुगतने पड़ रहे थे। दूसरा कारण यह था कि देश में राजनीतिक उथल-पुथल हो रही थी। राजनीतिक दलनों में सत्ता के लिए भयंकर संघर्ष्ज चल रहा था जिसका प्रभाव उन दलों से सम्बनिधत संधों पर भी पड़ रहा था। साम्यवादी दल जो कि युद्ध काल में सरकार की सहायता कर रहा था स्वतंत्रता के पश्चात् फिर से विध्वंसक कार्य में लग गया था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रमिक-संघों की संख्या और उनकी सदस्यता की प्रगति में पर्याप्त व द्धि हुई है जैसा कि अग्रलिखित तालिका से स्पष्ट है।

श्रम और पूजी के संबंधों में एक नया मोड़ सन् 1967 के चुनावों के बाद आया, जबकि कई राज्यों में कांग्रेस की पराजय हो गई वहा और वहां संयुक्त विधायक दल (संविद) की सरकार गठित हुईं। इन सरकारों में दक्षिण पंथी और वामपंथी दोनों ही प्रकार के सदस्य थे। कुछ सरकारों के श्रम संबंधी विचार अत्यन्त उग्र थे। पश्चिमी बंगाल में सरकार ने श्रम को अत्यन्त उत्तेजित किया। परिणाम यह हुआ कि सन् 1967 और 1968 के वर्ष पश्चिमी बंगाल मे घोर अशांति एवं राजनैतिक उथल-पुथल के वर्ष रहे। इस अशांति के कारण इस राज्य से पूंजी का पलायन शुरू हो गया। अनेकों उद्योग समाप्त हो गए और हजारों व्यक्ति बेकार हो गए। अग्निकाण्डद्व गोलाबारी इत्यादि हिंसात्मक घटनाओं से न केवल उद्योग-धंधों का चलना कठिन हो गया बल्कि जन-जीवन भी संकट में पड़ गया।

इसी समय श्रमिकों ने अपनी मांग मनवाने की एक उग्र प्रणाली काम में लाना शुरू किया जिसे 'घिराव' कहते हैं। मजदूर एकत्र होकर मैनेजर अधिकारी आदि को घर में कैद कर लेते हैं और इस प्रकार उसे बाध्य करते हैं कि उनकी मांग मान ली।

भारतीय श्रम आंदोलन की कमजोरियां
(Weaknesses and Problems Labour Movement)

यद्यपि भारतीय श्रम-आंदोलन लगभग 100 वर्ष पुराना हो गया है परन्तु उसमें वह द ढ़ता. उत्तदायित्व और गम्भीरता नहीं आ पाई है जो पश्चिमी देशों के श्रम-आन्दोलन में पाई जाती है। अभी भी बहुत सी हड़तालें बिना पर्याप्त कारणों के होती हैं और बहुधा असफल भी हो जाती हैं। दोनों ही बातें श्रम-आन्दोलन की कमजोरी को प्रदर्शित करती हैं। फिर भी आज की स्थिति पहले से काफी अच्छी है। पिछली शताब्दी का शोषण, अपमान और आतंक का युग बीत चुका है। आधुनिक युग में श्रम-आन्दोलन में निम्नलिखित त्रुटियां पाई जाती हैं:

1. **एकता की कमी:** यह प्रधान दोष है। श्रम-आन्दोलन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सब मजदूरों में एकता और भ्रात त्व की भावना हो। भारतीय मजदूर का यह पक्ष सदा से दुर्बल रहा और अभी भी यह दोष पूरी तरह से समाप्त नहीं हो पाया है। एकता में कमी के निम्नलिखित कारण हैं:
   (i) *जातिवाद:* यद्यपि जातिवाद गांवों में और पुराना पीढ़ी में ही अधिकहोता है, परन्तु शहर और युवा-वर्ग भी इसके प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हुए। औद्योगिक केन्द्रों में सभी जाति के मजदूर होते हैं। यदि वे एक-दूसरे से जाति के आधार पर मिले-जुले तो श्रमिक संगठन कभी शक्तिशाली नहीं हो सकता।
   (ii) *प्रान्तीयता:* किसी भी बड़े औद्योगिक केन्द्र में देश के सभी प्रान्तों के व्यक्ति होते हैं। उनकी मित्र-मण्डली बहुधा प्रान्तों के आधार पर बनती है। यह भावना भी मजदूर आन्दोलन पर बुरा प्रभाव ड़ालती है।
   (iii) *अनेक धर्म:* भारत बहुत से धर्मों का देश है। धर्मों के भेद ने भी मजदूर आन्दोलनों को कमजोर किया है। एक धर्म के अनुयायी बहुधा दूसरे धर्म के अनुयायियों से कम मिलते-जुलते हैं।
   (iv) *भाषा भेद:* भारत में बहुत-सी भाषाएं बोली जाती हैं। सामान्य भाषा भी एक आधार होती है। विभिन्न भाषाओं के परिणामस्वरूप परस्पर मिलना-जुलना कम होता है और इससे श्रमिक आन्दोलन भी कमजोर होता है।
2. **शिक्षा की कमी:** भारतीय मजदुरों में अधिक शिक्षा नहींहैं वे श्रमिक संघ के महत्व को नहीं समझते। राजनैतिक दांव-पेंच और और अपना हित अहित समझने की शक्ति उनमें अधिक नहीं है। उन्हें नेताओं के मार्ग-दर्शन पर निर्भर रहना पड़ता है, जो सदा उनके लिए हितकर नहीं है।

3. **धन की कमी:** श्रमिक संघ की दूसरी कमजोरी पैसे की कमी है। एक निर्धन देश में श्रमिक संघ को हमेशा ही धन का अभाव रहता है। किसी भी कार्य के लिए-चाहे वह संघर्ष का कार्य हो अथवा कल्याणकारी कार्य धन आवश्यक है। मजदूर नियमित रूप से चन्दा नहीं दे पाते। संघ के कर्मचारियों को नियमित वेतन नहीं मिल पाता। श्रमिक संघ का कुछ न कुछ खर्च लगा ही रहता है यथा दफ्तर का किराया, चिट्ठी-पत्री का खर्च इत्यादि। पैसे की कमी से इन सब कार्यों में भी बांधा पड़ती है।

4. **प्रवासी प्रकृति:** श्रमिकों का गांव बार-बार जाना भी संघ को कमजोर करता है। इस प्रकार के मजदूर न तो सभाओं (Meeting) में उपस्थिति रहते हैं और न हड़ताल, प्रदर्शन आदि में सम्मिलित होते हैं। जरा भी अवसर मिलते ही यह लोग अपने गांव चले जाते हैं। इस प्रकार की उदासीनता से संघ में शक्तिहीनता आती है।

5. **जॉबर प्रणाली:** भारतीय श्रम में जॉबर प्रणाली का संयुक्त होना भी आन्दोलन की कमजोरी का कारण है। यह 'सरदार' 'मिस्त्री' न तो पूरी तरह से संघ के व्यक्ति हैं और न प्रबन्धकों के। इनके प्रभाव से श्रम-आन्दोलन भली-भांति चल नहीं पाता। इनका प्रभाव मजदूरों पर बहुत अधिक है और इन लोगों को प्रबन्धकों का भी विश्वास प्राप्त है। इस मध्यस्थता का लाभ यह लोग अपने स्वार्थ साधन में उठाते हैं।

6. **उचित नेत त्व का अभाव:** भारतीय श्रम संगठन के अधिकांश नेता बाहर से मध्यम वर्ग से आते हैं जो कि मजदूरी की समस्याओं से न तो भली-भांति परिचित होते हैं और न मजदूरों के लिए उनके मन में बहुत सहानुभूति ही होती है। यद्यपि बी.पी. वाडिया, एन.एम. जोशी, वी.वी. गिरि, गुलजारी लाल नन्दा जैसे मजदूर नेता भी देश को मिले हैं, परन्तु इन संघों में एक बड़ी संख्या ऐसे व्यक्तियों की भ होती है जो अपना राजनैतिक उद्देश्य पूर्ण करने के लिए एक बड़ी संख्या ऐसे वयक्तियों की भी होती है जो अपना राजनैतिक उद्देश्य पूर्ण करने के लिए मजदूरों का सहारा पकड़ते हैं। ऐसे वकील जिनकी वकालत नहीं चलती, ऐसे नेता जो अन्य क्षेत्रों से निराश हो जाते हैं, इधर ध्यान देते हैं। यह समस्या भारत में ही नहीं रही है, इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों में बहुधा नेत त्व मध्यम वर्ग से आता है, परन्तु वहां के मजदूरों में चेतना और शिक्षा अधिक है। इस कारण नेत त्व को जनता की भावना के अनुसार चलना पड़ता हैं। भारत में नेता श्रम का मार्ग-दर्शन करते हैं और अक्सर गलत मार्ग दर्शन करते हैं। भारतीय श्रम-आन्दोलन के इतिहास में जब अच्छे नेता दिवंगत हो गए तब श्रम-आन्दोलन भी बहुत शिथिल हो गया। हाल में अपराधी तत्वों ने श्रम-आन्दोलन में प्रवेश किया है।

7. **श्रम परिवर्तन की अधिकता:** भारत में श्रम परिवर्तन (Labour Turnover) की दर विदेशों से अधिक है। इसका परिणाम यह है कि मजदूर न तो किसी कारखाने अादि में समय ठहरते हैं और न ही किसी श्रम संगठन में अधिक रुचि ही लेते हैं। स्थायी मजदूर श्रमिक-संघों के कार्यक्रम में अधिक भाग लेता है, यह विशेषताओं का मत है। इसी प्रकार श्रमिक संघों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

8. **उद्योगपतियों का विरोध:** श्रम और पूंजी के स्वार्थों में बहुधा संघर्ष होता है। अतः श्रम के संगठन को पूंजीपतियों के विरोध सामना करना पड़ता है। विदेशों में उद्योगपतियों ने यह माप लिया है कि श्रमिक-संघ संगठित हो जाएं जिससे कि 'सामूहिक सौदे' किए जा सकें। मजदूरों को अनुशासित रखा जा सके। परन्तु भारतीय उ़द्योगपतियों में इतनी उदारता अभी नहीं आई है। उनका द ष्टिकोण वैसा ही संकुचित है जैसा आज से 50 वर्ष पूर्व था। केवल थोड़े से आधुनिक उद्योगों ने ही श्रम के संगठन का महत्व समझा है।

9. **सरकारी नीति:** विदेशी सरकार ने श्रमिक-संघों को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। सन् 1913 से पहले श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता भी नहीं थी। बहुत से ब्रिटिश उद्योगपति सूती वस्त्र, जूट, चाय, बागान आदि चला रहे थे। ब्रिटिश उद्योगपतियों की बहुत-सी पूंजी भारत में लगी हुई थी। अतः मजदूरों के संगठन को ब्रिटिश सरकार कभी पसन्द नहीं कर सकती थी। सन् 1918 के बाद जब मजदूर आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन से संयुक्त हो गया तब ब्रिटिश सरकार और अधिक सतर्क हो गई। सन् 1920 में मद्रास हाई कोर्ट ने वी.सी. वाडिया को जो दण्ड दिया था, इससे ब्रिटिश सरकार की मनोव त्ति स्पष्ट हो गई। बाद में भी सरकार ने जब कभी उग्र आन्दोलन देखे तो उनका कठोरता से दमन किया। राष्ट्रीय सरकार ने भी श्रम-आन्दोलन को प्रोत्साहन नहीं दिया बल्कि तटस्थता और सतर्कता का ही अधिक परिचय दिया।

10. **राजनैतिक दलबन्दी:** अन्तिम कारण है श्रम-आन्दोलन का राजनैतिक दलबन्दी से संयुक्त होना। कांग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ आदि सभी दल श्रम संघों को अपने कब्जे में रखना चाहते हैं जिससे कि राजनैतिक उद्देश्यों की

पूर्ति के समय उनका उपयोग किया जा सके। कुछ लोगों ने विशुद्ध अराजनैतिक संगठन भी चलाए हैं, परन्तु इसमें से अधिक सफलता नहीं मिली। राजनैतिक दलों के प्रभाव से संघों की एकता समाप्त हो जाती है और बहुधा श्रमिक विपरीत दिशाओं में यहां तक कि एक दूसरे के विरोध में भी कार्य करते हैं। इससे श्रमिकों की भी हानि है। राजनैतिक दलों को श्रमिकों के हित को ही सर्वोपरि रखना चाहिए, परन्तु आर्दशहीन राजनीतिक में यह संभव नहीं दिखाई देता।

11. **कल्याणकारी कार्य का अभाव:** श्रमिक संघ की शक्ति केवल संघर्ष पर नहीं निर्भर होती, कल्याण-कार्य पर भी निर्भर रहतीहै। जब औद्योगिक संबंध अच्छे रहते हैं, उस समय एकता बनाने, परस्पर परिचय प्राप्त करने और भाईचारा पैदा करने के लिए कल्याण कार्यों का अत्यन्त महत्व है। भारत में कई कारणों से इस पक्ष की उपेक्षा हुई है। धन की कमी, कल्पना का अभाव, समय की कमी आदि में श्रमिक संघ केवल समितियां (Strike Committees) रहे हैं। अब कुछ ध्यान अन्य कार्यों पर भी दिया जा रहा है।

12. **हिंसा और अपराधों का सहारा:** भारतीय श्रम-आन्दोलन में एक गलत तत्व का हाल में ही प्रवेश हुआ है। वह है हिसंक एवं अपराधी समाज विरोधी तत्वों का प्रभाव बढ़ना। बिहार की कोयला खदानों में इस प्रकार का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। वहां पर बहुत से व्यक्तियों को जान से मार दिया गया है। अपराधियों ने वहां पर बहुत धन भी पैदा किया है। मजदूरों का यह लोग कोई उपकार नहीं कर सकते।

भारतीय श्रम-आन्दोलन को स्वस्थ व सशक्त बनाने के लिए सुझाव

(Suggestions)

1. **उचित नेत त्व:** जहां तक सम्भव हो नेत तव मजदूरों में से ही आना चाहिए। इससे लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ेगा कि गैर-जिम्मेदार नेता लोग श्रम का शोषण अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए न कर सकें। इस कार्य के लिए कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं:

   (i) *संधों के कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देना:* संघों को चलाना एक कुशल कार्य है जिसका प्रशिक्षण देना उसी प्रकार जरूरी है जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, पाइलट आदि को जरूरी होता है। भारत में इस बात पर करीब-करीब बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया है। इसके लिए उसी प्रकार के शिक्षालय होने चाहिए जैसे पत्रकारिता के लिए होते हैं। सरकार ने इस दिशा में नहीं के बराबर काम किया है। कुछ छात्र-व त्तिया दी गई है, कुछ लोगों को विदेश यात्रा कराई गई है।

   (ii) *कार्यकर्त्ताओं को वेतन दिया जाए:* बहुत से मजदूर नेता अवैतनिक होते हैं। उनको अपने निर्वाह के लिए कभी-कभी अनुचित साधनों का सहारा लेना पड़ता है और अच्छे कार्यकर्ता भी इस कार्य से नहीं बचते हैं। वेतन की व्यवस्था आवश्यक है।

   (iii) *श्रमिक संघों की कार्य समितियों में वास्तविक मजदूरों की प्रधानता होनी चाहिए:* जिससे कि संघों का वास्तविक नेत त्व मजदूरों के हाथ में रहे । ट्रेड यूनियन एक्ट ने यह व्यवस्था रखी है कि पदाधिकारियों में कम से कम 50% उस उद्योग के कर्मचारी हों। होना यह चाहिए कि तीन-चौथाई मजदूर हों और अध्यक्ष और मन्त्री आदि पद पर भी मजदूर ही रखे जाएं।

2. **एक उद्योग में एक संघ:** यह सुझाव श्री वी.वी गिरी ने दिया था। सन् 1959-60ई. में विवरण भेजने वले संघों में से 70 प्रतिशत से अधिक ऐसे संघ थे जिनकी सदसरू संख्या 300 से कम थी। ऐसा कई कारणों से हो सकता है। एक ही उद्योग में बहुधा कई संघ बन जाते हैं जो एक दूसरे से संघर्ष करते रहते हैं और इस कारण एकता समाप्त हो जाती है। दूसरा कारण है श्रमिकों का सदस्य ही न बनना, नियमित चन्दा न देना आदि। श्री गिरि का सुझाव अच्छा था, परन्तु राजनैतिक दलबन्दी के चलते ही इसका पूर्ण होना कठिन है।

3. **श्रम की व्यवस्था:** यह जटिल समस्या है। श्रमिक संघों का मुख्य स्रोत श्रमिकों से मिलने वाला चन्दा है। सदस्यों को नियमित रूप से चन्दा देना चाहिए और यह राशि इतनी अवश्य होनी चाहिए कि संघ का साधारण कार्य सुचारू रूप से चल सके। ट्रेड यूनियन एक्ट के सन् 1960 के संशोधन के अनुसार प्रति सदस्य 25 पैसा प्रमिास देना अनिवार्य है। यह राशि 50- होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाए, जो समर्थ मजदूर हैं वे विशेष दान (Donations) दें। बाहर से भी राशि एकत्र की जाए। धन का सही उपयोग हो। इसके लिए हिसाब की कड़ी और

खुली जांच की जाए, जिससे कि धन का सही उपयोग किया जाए। मजदूरा का चन्दा वेतन मिलने से पूर्व ही कट जाना चाहिए जिससे कि पैसा इकट्ठा करने का झंझट न रहे। श्रमिकों को सुरक्षित कोष भी बनाना चाहिए जिससे कि हड़ताल आदि में उसको काम में लाया जा सके।

4. **श्रमिकों में अनुशासन हो:** आधुनिक समय में इस बात पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। पश्चिमी बंगाल में श्रमिकों और नेताओं की अनुशासनहीनता का परिणाम न केवल मजदूरों को बल्कि पूरे राजय को भोगना पड़ा है। सैकड़ों उद्योग समाप्त हो गए हैं और हजारों मजदरू बेकार हो गए है। संघर्ष को चलाने, उद्योगों को बढ़ाने और अपनी उन्नति के लिए मजदूरों को अनुशासित होना आवश्यक है। इस अनुशासन को शिक्ष, प्रसार तथा श्रमिक संघ के द्वारा करना ही उचित होगा। दमन तथा आतंक के बल पर इस स्थापित करना उचित नहीं है। यद्यपि कानून का उल्लंघन करने पर, जैसे हिंसा तोड़-फोड़ करने पर अन्य अपराधियों के समान दण्ड देने के अतिरिक्त कोई अन्य रास्ता नहीं है।

5. **उद्योगपतियों के अत्याचारों पर नियंत्रण:** संधों को और मजदूर नेताओं को मालिकों के कोप का शिकार होना पड़ता है इसकी रोकथाम जरूरी हैं। डॉ. राधाकमल मुकर्जी ने इस विषय में एक महत्वपूर्ण सुझाव दिया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार अमेरिका में नेशनल लेबर रिलेशन्स एक्ट, 1935 में बना था, वैसा ही भारत में ही होना चाहिए। उक्त कानून के अनुसार यदि मिल मालिक संघों के कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं या मजदूरों या कार्यकर्त्ताओं को आतंकित करते हैं तो उन्हें दण्डित किया जा सकता है। भारत में इस सम्बन्ध में कोई ठोस कदम उठाया नहीं गया। बम्बई में औद्योगिक विवाद नियम, 1938 में व्यवस्था थी कि यदि किसी मजदूर कार्यकर्त्ता पर अत्याचार हो तो उसके लिए उद्योगपति पर 1,000 रु. जुर्माना किया जा सकता है। आवश्यकता यह है कि भारतीय औद्योगिक विवाद नियम में यह संशोधन हो और इसका कड़ाई से पालन किया जाए। कठिनाई यह है कि यह सिद्ध करना कठिन है कि कार्यकर्त्ता पर अत्याचार हुआ। उद्योपतियों का संघ के कार्य में कोई हस्तक्षेप या बाधा डालने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

श्रमिक संघों की वर्तमान प्रव त्तियां: भारतीय श्रमिक संघ क्रमशः अधिक वयस्क होते जा रहे हैं। आधुनिक समय में निम्न प्रव त्तियां देखने में आ रही हैं:

1. बाहरी नेत त्व का प्रभाव समाप्त हो रहा है। मजदूर स्वयं अपना नेत त्व करने लगे हैं। यह अत्यन्त आवश्यक लक्षण है। इसे मजदूरों का राजनैतिक शोषण कम होता है। इसका कारण यह है कि शिक्षित व्यक्ति भी उद्योगों में कार्य करने लगे हैं। और वे मजदूर संघों का नेत त्व करने में सर्वथा समर्थ हैं।

2. मजदूर संघों में क्रमशः निदमितता बढ़ रही है। उसके सदस्य भी स्थायी होने लगे हैं और नियमित चन्दा देने, हिसाब रखने आदि का रिवाज भी बन रहा है। असंगठित उद्योगों के मजदूर भी अब संगठित होने लगे हैं।

3. श्रमिकों और श्रमिक संघों की रुचि राजनीति में क्रमशः बढ़ती जा रही है। आज के मजदूर में राजनैतिक चेतना काफी बढ़ रही है। स्थानीय और केन्द्रीय चुनावों तथा अन्य राजनैतिक कार्यों में मजदूरों का योगदान बढ़ रहा है। परन्तु साथ ही कुछ स्थानों में यह एक बुराई ही काफी हद तक बढ़ गई है। पश्चिमी बंगाल में मजदूर वर्ग इतना अधिक उत्तेजित और राजनीति से प्रभावित हो गया है कि उद्योगों का चलना ही सम्भव नहीं रहा। हत्या, घिराव, आतंक, विरोधियों को समाप्त करना इत्यादि दोषों के कारण वहां का मजदूर आन्दोलन समाप्त ही है। वहां के मजदूर का संघों में रचनात्मक द ष्टिकोण है और न लोकतन्त्र के प्रति आस्था। आतंक के बल पर कुछ भी कराया जा सकता है।

4. मजदूर संघों के प्रति समाज का द ष्टिकोण भी क्रमशः बदल रहा है। पहले इन संघों को अशान्ति उत्पन्न करने वाली संस्थाएं ही समझा जाता है और जनसाधारण की धारणा इनके प्रति खराब थी। यह पूंजीवादी समाज का प्रभाव था। अब क्रमशः इन संघें के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो रही है। स्वयं स्ंघ भी अब निर्भय हो चले हैं। मजदूर संघ के कार्यकर्त्ता और नता अब इन कार्यों से डरते नहीं हैं।

5. श्रमिक संघों में माफिया का नियन्त्रण: भारतीय श्रम-आन्दोलन की एक नवीन प्रव त्ति इन पर संगठित अपराधियों जिन्हे माफिया भी कहते हैं का नियन्त्रण होना है। यह लोग हिंसा, अपराध और आतंक के बल पर श्रम-आंदोन पर कब्जा कर रहे हैं। बिहार के कोयला उद्योग पर इनका शत-प्रतिशत नियन्त्रण है। इनके पास धन-बल और बाहुबल (Muscle Power) तथा राजनीतिक संरक्षण होता है। इनका उद्देश्य मजदूरों का कल्याण कदापि नहीं होता बल्कि स्वयं धन अर्जित करना होता है। स्वस्थ श्रम-आन्दोलन के लिए यह घातक प्रव त्ति है। अन्य नगरों में भी इनका कुछ न कुछ प्रभव दिखाई देने लगा है। इनका कठोरता से उन्मूलन होना चाहिए।

अध्याय-12
भारतीय व्यवसाय संघों का अधिनियम, 1926
(Indian Trade Union Act, 1926)

भारत में व्यवसाय संघ का इतिहासः व्यवसाय संघ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की देन है। इसका उदय पूंजीपतियों के निरंकुश नियन्त्रण का सामना करने के लिए हुआ था। भारत में व्यवसाय संघ आन्दोलन का प्रारम्भ बड़े-बड़े उद्योगों के साथ हुआ। सन् 1890 में एक विशाल आमसभा का आयोजन किया गया जिसमें 10 हजार श्रमिकों ने भाग लिया। इस सभा की सफलता से प्रेरित होकर मुम्बई मिल मजदूर संघ की स्थापना की गई यहां से व्यवसाय संघ सम्बन्धी विधायन का इतिहास प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् स्थानीय आन्दोलन होते रहे तथा नए संघ भी स्थापित हुए। 1910 में मुम्बई में श्रमिक हित वर्द्धक सभा का गठन किया गया जिसके अन्तर्गत एक मासिक-पत्र का प्रकाशन किया गया।

भारत में सर्वप्रथम व्यवसाय संघ की स्थापना सन् 1897 ई. में मुम्बई में हुई। सन् 1920 में वर्किघम मिल का मामला एक महत्वपूर्ण मामला था। इस मामले में चेन्नई (मद्रास) हाईकोर्ट ने व्यवसाय संघ को हड़ताल समिति के विरुद्ध एक अन्तरित व्यादेश (Interim injunction) दिया जिसके द्वारा व्यवसाय संघ की समिति को इसके लिए मना कर दिया गया कि वह श्रमिकों या कर्मचारियों को काम पर वापस आने से इन्कार करके नियोजन (Employment) ने उनकी संविदाओं के भंग करने के लिए अवप्रेरित न करें। इस व्यादेश द्वारा श्रमिकों को हड़ताल करने के लिए उकसाना वर्जित कर दिया गया। इस आदेश के जारी होने पर श्रमिक नेताओं द्वारा यह समझा गया कि यदि वे श्रमिकों को हड़ताल के लिए उकसाएंगे तो उस पर इस कार्य के लिए मुकदमा चलाया जाएगा और वे दण्डित भी किए जा सकेंगे।

वास्तव में इन श्रमिक नेताओं का उद्देश्य श्रमिकों को उनके नियोजाकें द्वारा किए जाने वाले शोषण से बचाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु इन श्रमिक नेताओं ने आवाज उठाई तथा मांग की कि केन्द्रीय सरकार एक ऐसा कानून बनाए जिसके द्वारा व्यवसाय संघों को सुरक्षा मिल सके। मार्च 1921 में सर्वप्रथम एन.एम. जोशी, जनरल सेक्रेटरी, ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने केन्द्रीय विधान मण्डल को इस प्रकार का कानून बनाने के लिए प्रेरित किया, परन्तु नियोजकों (Employer) ने ऐसे उपाय अपनाने का इतना सबल विरोध किया कि सन् 1926 तक भारतीय व्यवसाय संघ अधिनियम पारित नहीं किया जा सका। सन् 1926 में वांछित कानून व्यवसाय संघ अधिनियम (The Trade Unions Act, 1926) के नाम से सन् 1926 में पारित हुआ। यह अधिनियम पहली जून सन् 1927 को लागू हुआ।

अधिनियम का उद्देश्य (Object of the Act): भारतीय व्यवसाय संघों का अधिनियम, 1926j (The Indian Trade Union Act, 1926) का शीर्षक, व्याख्या और प्रस्तावना इस अधिनियम के उद्देश्यों की विवेचना करते हैंः

''ट्रेड यूनियनों (व्यापार संघों) की रजिस्ट्री किए हुए तथा कतिपय दशाओं में रजिस्ट्री किए हुए श्रमिक संघों सम्बन्धी विधि को निरूपित करने के लिए व्यवस्था करने के उद्देश्यार्था अधिनियम।''

''चूंकि यह उचित हैं कि व्यवसाय संघों (trade unions) की रजिस्ट्री के लिए तथा कतिपय विषयों में रजिस्ट्री हुए ट्रेड यूनियनों से सम्बन्धी विधि को निरूपित करने के लिए लिए व्यवसाय की जाए, अतः अब निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाता है।''

इसमें यह अनुसरित होता है कि यह अधिनियम अन्य मामलों के अतिरिक्त निर्धारित विषयों के लिए आवश्यक व्यवस्थाएं करता हैः

1. व्यवसाय संघों के रजिस्ट्रेशन संबंधी कार्यवाही।

2. पंजीकरण (registration) के पश्चात् व्यापार संघों पर दायित्वों का आरोप।

3. पंजीकृत व्यवसाय संघों (Trade Unions) को प्रदत्त छूटें तथा विशेषाधिकार।

व्यवसाय संघों के अधिनियम के अन्तर्गत व्यवसाय संघ का प्रशासन राज्य सरकारों के हाथ में दे दिया गया हैं प्रत्येक राज्य सरकारों को व्यवसाय संघ के रजिस्ट्रार की नियुक्ति करनी होती हैं व्यवसाय संघ को उस राज्य में अपना रजिस्ट्रेशन करना होता है जिसमें कि उसका प्रधान कार्यालय (Head Office) स्थित हो और यदि उसे कार्यालय का अन्तरित किसी दूसरे राज्य में होता है तो उसे राज्य में रजिस्ट्रेशन का भी अन्तरित कर दिया जाता है।

इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् भी श्रमिक नेताओं ने यह अनुभव किया कि औद्योगिक नियेजाकों (Employers) पर ऐसा कोई बन्धन नहीं था कि वे व्यवसाय संघों को मान्यता दें। इस अधिनियम के अन्तर्गत यद्यपि व्यवसाय संघों के पंजीकरण की तो व्यवस्था की गई थी परन्तु उन्हें मान्यता देने का कोई दायित्व नहीं था। इस आवश्यता को पूरा करने के लिए सन् 1948 में व्यवसाय संघ (संशोधन) अधिनियम पारित किया गया।

भारतीय व्यवसाय संघों का (संशोधन) अधिनियम, 1947 [The Indian Trade Unions (Amendment) Act, 1947]: सन् 1947 में तत्कालीन सरकार ने नियोजक के ऊपर यह आधार (obligation) आरोपित किया कि व्यवसाय संघों को मान्यता दें। भारतीय व्यवसाय संघों का (संशोधन) विधेयक को भी पारित किया जो कि भारतीय व्यापार संघ (संशोधन) अधिनियम कहलाया।

यह अधिनियम अन्य मामलों के अतिरिक्त निम्नलिखित कर दी गई।

1. प्रतिनिधि व्यवसाय संघों की मान्यता अनिवार्य कर दी गई।

2. इस प्रश्न पर कि कोई व्यवसाय संघ प्रतिनिधि है या नहीं, उस बारे में विवाद के मामले में औद्योगिक न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा जो कि इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किया जाएगा।

3. श्रमिकों तथा नियोजकों के अनुचित व्यवहारों का विवेचन। वहां मान्यता को वापस लेने के लिए भी उपलब्ध किए गए हैं, जहां कि मान्यता प्राप्त मजदूर संघ की कार्यपालिका (Executive) या उसके सदस्य अनुचित व्यवहार करते हैं या

   जबकि व्यवसाय संघ एक प्रतिनिधि व्यवसाय संघ नहीं रह गया हो. या इस अधिनियम में दी गई किसी विवरणी (return) को पेश करने में व्यवसाय संघ की विफलता हो।

4. यदि किसी नियोजक द्वारा वर्जित व्यवसाय किया जाता है तो उसे दण्डनीय अपराध माना जाएगा तथा दण्ड स्वरूप जुर्माना किया जाएगा।

   इस अधिनियम में उपर्युक्त व्यवस्थाओं के होते हुए भी रजिस्ट्रार द्वारा व्यवसाय संघ के बहीखातों की जांच एवं निरीक्षण की व्यवस्था नहीं की गई थी। इसलिए इसे तथा अन्य कमियों को पूरा करने के लिए फरवरी, 1959 में केन्द्रीय विधायिका ने विधेयक प्रस्तुत किया। यद्यपि यह विधेयक समेकन करने वाला उपाय था, फिर भी इनमें निम्नलिखित उपलब्ध सम्मिलित किए गएः

1. पंजीकृत (Registered) व्यवसाय संघों का निरीक्षण उस प्रयोजन के लिए नियुक्त अधिकारियों द्वारा किया जाना।

2. सभी पंजीकृत व्यवसाय संघों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सदस्यों की सूची, सदस्यों द्वारा दिए गए चन्दों का ब्यौरा, हिसाब-किताब आदि निर्धारित एंग से तैयार करें।

3. प्रशासनिक सेवकों के व्यापार संघों को यह अनुज्ञा (permission) नहीं हैं कि वे अपने कार्यकारी बोर्ड में बाहरी व्यक्तियों को रखें। यदि वे ऐसा करते हैं तो वे व्यवसाय संघ कर मान्तयता खो देंगे। इसके साथ ही यदि उन्होंने अप्रशासनिक सेवकों (Non-Civil Servant) को सम्मिलित किया है या ऐसे संघ से सम्बन्ध रखा है जिसमें अप्रशासनिक सेवक सम्मिलित हैं, तो भी वे मान्यता खो देंगे।

4. सशस्त्र बल (Armed Forces) और पुलिस को इस विधेयक के दायरे से बाहर किया गया।

5. जिन शर्तों पर व्यवसाय संघों को मान्यता दी जाती थी उन शर्तों का विस्तार किया गया।

6. कोई भी सामान्य व्यवसाय संघ चार बाहरी व्यक्तियों से अधिक या कुल संख्या के एक चौथाई भाग से अधिक बाहरी व्यक्ति नहीं रख सकता था, उनमें से जो भी संख्या कम हो।
7. श्रम न्यायालयों को अधिकार दिया गया था कि वे व्यवसाय संघ के पदाधिकारियों (Office Bearers) के चुनाव से सम्बन्धित मामलों को निपटाएं।
8. इस संशोधन अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि यदि कोई व्यवसाय संघ इस अधिनियम की व्यवस्थाओं का उल्लंघन करे अथवा अपनी संस्था के नियमों का पालन न करे अथवा वे बन्धनकारी पंचाटों (award) के आदेशों अथवा अनुबन्धों का उल्लंघन करे तो उनका पंजीकरण (Registration) रद्द कर दिया जाए।

परन्तु यह विधेयक पारित न हो सका क्योंकि संसद का विघटन हो गया। परन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में उपयुक्त विधान बनाने के लिए अक्टूबर सन् 1952 में भारतीय श्रमिक अधिवेशन में विचार किया गया। सन् 1960 में भारतीय व्यवसाय संघों का (संशोधन) अधिनियम, 1960 (The Indian Trade Unions Amendment Act, 1960) पारित हुआ तथा सन् 1964 में भारतीय श्रमिक संघ (संशोधन) अधिनियम द्वारा भी कुछ परिवर्तन हुए।

''श्रम विषयक राष्ट्रीय आयोग ने श्रमिक संहिता का एक आलेख प्रकाशित किया है जिसमें व्यवसाय संघों के विधाायन, पंजीकरण और उसकी मान्यता प्राप्त संघों के अधिकारों, अनुचित श्रमिक आचारों, हड़तालों और कारखानों बन्दियों पर प्रतिबन्ध इत्यादि मामलों में विधायन में आवश्यक प्रस्ताव किए हैं।''

सन् 1969 के प्रस्तावित व्यवसाय संघों के अधिनियम द्वारा एक ऐसे संघ के गठन का उद्देश्य रखा गया था जिससे कि उसमें अपनी मांगों को मनवाने की उचित शक्ति विद्यमान हो और नियोजक भी समर्थ ढंग से वार्तालाप कर सकें।

इस प्रकार व्यवसाय संघों का अधिनियम के पारित होने से श्रमिकों की आर्थिक तथा सामाजिक दशा में उन्नति हुई है। आज व्यवसाय संघ अपने सदस्यों की काम करने की दशाओं में सुधार करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इनक उद्देश्य श्रमिकों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा करना है तथा नियोजकों द्वारा किए जाने वाल अनुचित कार्यों का विरोध करना एवं उन्हें रोकना है।

''30 अगस्त 1978 को लोकसभा में पेश औद्योगिक सम्बन्धी बिल संयुक्त प्रवर समिति को सुपुर्द कर दिया गया जिसमें श्रमिक संघों के गठन, पंजीकरण की शर्तें, अधिकार तथा दायित्व पर व्यापक उपबन्ध है। प्रस्तावित एवं स्वीकृत श्रम-नीति के मसविदे में संघों की स्वतंत्रता के बारे में कहा गया है कि सरकार की नीति श्रमिक संगठन आन्दोलन को जो त्वरित विकास की प्रक्रिया में अनुकूल भूमिका अदा करना है तथा मजबूत बनाना है। श्रमिकों और मालिकों के संघों की श्रम-नीति के क्रियान्वन और नियोजन प्रक्रिया का घनिष्ठ सम्बन्ध है।''

श्रम संघों का पंजीकरण (Registration of Trade Unions)

यद्यपि इस अधिनियम के अन्तर्गत व्यवसाय संघों का रजिस्ट्रेशन करना आवश्यक नहीं है परन्तु व्यवसाय संघों की वैधानिकता स्वरूप तभी प्राप्त होता है जबकि उनका रजिस्ट्रेशन करना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है। कि इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड व्यवसाय संघों को कुछ सुविधाएं प्रदान की गई हैं। अतः भारतीय व्यवसाय संघ अधिनियम, 1926 में धारा 3 से लेकर धारा 14 तक व्यवसाय संघों के पंजीकरण सम्बन्धी प्रावधान बनाए गए हैं जो निम्नांकित हैं:

धारा 3 के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य के लिए उपयुक्त सरकार श्रम संघ के लिए एक रजिस्ट्रार की नियुक्ति करेगी। (धारा 3 (1))

उपयुक्त सरकार इस अधिनियम के अधीन तथा रजिस्ट्रार के अधीक्षक तथा निदेशन के अधीन ऐसे अधिकारों और कर्त्तव्यों को प्रयोग करने तथा पालन करने के प्रयोजन के लिए, जैसा कि वह आज्ञा द्वारा निर्दिष्ट (Direct) करें, व्यवसाय संघ के लिए इतने अतिरिक्त (Additinal)] रजिस्ट्रार और उप-रजिस्ट्रार (Deputy Registrar) नियुक्त कर सकती है जितने कि वह उचित समझे, वह स्थानीय (local) सीमाओं को परिभाषित कर सकती है। उनके अन्दर कि ऐसा अतिरिक्त या उपरजिस्ट्रार इस प्रकार निर्दिष्ट अधिकारों और कर्त्तवयों को प्रयोग में लावेगा और उनका पालन करेगा। (धारा 3 (2))

उपधारा (2) के अधीन किसी आदेश के उपबन्धों के अन्तर्गत, जहां कहीं उस क्षेत्र में जिसमें कि व्यवसाय संघ का रजिस्ट्री किया हुआ कार्यालय स्थित है, एक अतिरिक्त या उपरजिस्ट्रार रजिस्ट्रार के अधिकारों और कर्त्तव्यों को प्रयोग में लाता है और पालन

करता है और इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए व्यवसाय संघ के सम्बन्ध में वह रजिस्ट्रार समझ जाएगा।

पंजीयन करने का ढंग (Mode of Registration)

व्यवसाय संघों के अधिनियम की धारा 4 (1) के अन्तर्गत व्यवसाय संघ के कोई सात या अधिक सदस्य, व्यवसाय संघ के पंजीकरण के लिए प्रार्थना पत्र दे सकते हैं। यह प्रार्थना-पत्र, व्यवसाय संघों के रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। ऐसा प्रार्थना-पत्र, अवैध नहीं माना जाएगा यदि उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय संघों के पंजीकरण (Registration) के लिए प्रार्थना-पत्र दिया गया है और प्रार्थना पत्र के दिनांक के पश्चात् किसी भी समय, परन्तु व्यवसाय संघ के पंजीकरण के पहले प्रार्थियों में से कुछ, जिन्होंने कि प्रार्थना पत्र दिया है, जो कि कुल संख्या के आधे से अधिक नहीं होंगे, व्यवसाय संघों के सदस्य नहीं रहे हैं, या उन्होंने उस प्रार्थना पत्र से अपने आप को अलग करने क लिए रजिस्ट्रार को लिखित सूचना दे दी है। (धारा 4 (2))

पंजीकरण के लिए प्रार्थना पत्र (Application for Registration): किसी भी व्यवसाय संघ के पंजीयन के लिए प्रार्थना पत्र रजिस्टार के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा उक्त प्रार्थना पत्र के साथ व्यवसाय संघ के नियमों की एक प्रतिलिपि निम्नलिखित विवरणों सहित संलग्न की जानी चाहिएः

1. आवेदन करने वाले सदस्यों का नाम, व्यवसाय तथा पता।
2. व्यवसाय संघ का नाम, पता तथा उसके प्रधान कार्यालय का पता।
3. व्यवसाय संघ के पदाधिकारियों के पद, नाम, आयु, पता तथा पेशे।
4. व्यवसाय संस्था, स्त्री और पुरुषों की अलग-अलग आयु, पते और पेशे।
5. चन्दा लेने का ढंग और योग। प्रत्येक सदस्यता ग्रहण करने वाले सदस्य के लिए आवश्यक है कि वह 25 पैसे प्रतिमाह देता रहे।
6. निधि का निर्माण उसके संरक्षण उसके संरक्षण का ढंग और उसका उपयोग किन मदों पर किया जाएगा।
7. प्रमाण-पत्र की संख्या, दिनांक जो यह स्पष्ट करता है कि उसके पंजीकरण की फीस जमा कर दी गई है।
8. संघ का मुख्य आफिस कहां होगा जिससे पत्राचार किया जा सके।
9. आफिस के अधिकारियों के निकालने का ढंग और कारण।
10. नियमों के संशोधित तथा परिवर्तित तथा समाप्त किए जाने के ढंग।

यदि कोई व्यवसाय संघ पंजीयन के लिए आवेदन करने के एक वर्ष पूर्व से विद्यमान है तो उक्त प्रार्थना पत्र के साथ रजिस्ट्रार को यह भी सूचना दी जानी चाहिए कि व्यवसाय संघ के दायित्व एवं आस्त्यिां (Liabilities an Assets) क्या हैं। वे सभी सूचनाएं निर्धारित प्रपत्र (Prescribed Form) पर होनी चाहिए। इस अधिनियम की धारा 7 के अनुसार रजिस्ट्रार इस आशय की सन्तुष्टि के लिए कि आवेदन-पत्र धारा 5 के उपबन्धों का पालन करता है अथवा नहीं, अथवा व्यवसाय संघों की धारा 6 के अनुसार पंजीकृत किया जाए अथवा नहीं, अतिरिक्त जानकारी मांग सकता है।

धाारा 7 (2) यह उपलबन्ध नहीं है कि वह नाम जिसके अधीन व्यवसाय संघ का पंजीकरण होना प्रस्तावित किया जाए, किसी ऐसे नाम से अभिन्न है जिससे कि कोई अन्य विद्यमान व्यवसाय संघ पंजीकृत किया हुआ है या रजिस्ट्रार के मतानुसार वह ऐसे नाम के प्रायः इतना अनुरूप है जिससे कि जन-सामान्य को या दोनों व्यवसाय संघों में से किसी भी व्यवसाय संघ के सदस्यों को धोखा होने की सम्भावना है तो रजिस्ट्रार उन व्यक्तियों से जा पंजीयन के लिए प्रार्थना करे, प्रार्थना पत्र में लिखे गए व्यवसाय संघ के नाम को बदल देने की मांग करेगा और जब तक ऐसा परिवर्तन नहीं किया जाएगा, वह उक्त व्यवसाय संघ पंजीकरण करने से इन्कार कर देगा।

रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड यूनियन बनाम गवर्नमेण्ट प्रेस इम्पलाइज यूनियन के बाद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सरकारी प्रेस में काम करने वाले अपने संघ पंजीकृत करा सकते हैं।

इसके अलावा धारा 7 के अन्तर्गत रजिस्ट्रार और भी स्पष्टीकरण की मांग कर सकता है और उन मांग के अनुकूल शर्तों के पूरा न किए जाने पर पंजीकरण के लिए बाध्य नहीं होगा। स्पष्टीकरण की मांग कोन्डाल राव बनाम रजिस्ट्रार ट्रेड यूनियन के निर्णयानुसार अन्य किसी से नहीं, बल्कि आवेदनकर्ता से ही की जा सकती है और यही उचित भी होगा।

सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के संघ को रजिस्ट्रार पंजीकरण से इन्कार कर सकता है।

पंजीयन (Registration): यदि रजिस्ट्रार धारा 8 के अनुसार इस बात से सन्तुष्ट है कि पंजीकरण से सम्बन्धित सभी आवश्यकताओं को पूरा कर दिया गया है तो वह ऐसे रजिस्टर में जो कि विहित किए जाने वाले रूप में रखा जाएगा व्यवसाय संघ सम्बन्धी उन विवरणों को दर्ज करके, जो कि रजिस्ट्री के लिए प्रस्तुत प्रार्थना पत्र के साथ दिए विवरण मं समाविष्ट है, उस व्यवसाय संघ का पंजीयन करेगा।

पंजीकरण का प्रमाण पत्र (Certificate of Registration): व्यवसाय संघ रजिस्ट्री हो जाने के पश्चात् रजिस्ट्रार रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र प्रदान करता है। यह प्रमाण-पत्र इस बात का निर्णायक प्रमाण होता है कि 'व्यवसाय संघ' व्यापार संघ की व्यवस्थाओं के अनुसार पंजीकृत किया जा चुका है।

रजिस्ट्रार निम्नलिखित परिस्थितियों में किसी भी व्यवसाय संघ को पंजीकृत करने से मना कर सकता हैः

1. यदि व्यापार संघ के नियमों में धारा 6 के अन्तर्गत निर्दिष्ट बातों के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम नहीं बनाए गए हैंः
   - अ. यवसाय संघ का नाम,
   - ब. व्यवसाय संघ की स्थापना का उद्देश्य,
   - स. उन सब कार्यों का उल्लेख जिनके लिए व्यवसाय संघ के कोष का प्रयोग किया जा सकता है।
   - द. व्यवसाय संघ के सदस्यों की एक सूची रखने अथवा पदाधिकारियों द्वारा इनके निरीक्षण की सुविधा प्रदान करने के सम्बन्ध में,
   - इ. साधारण सदस्यों के प्रवेश के सम्बन्ध में, जो कि वास्तव में ऐसे उद्योग में कार्य कर रहे हों, जिससे व्यवसाय संघ सम्बन्धित हैं तथा इसके अतिरिक्त सम्मानित या अस्थायी सदस्यों के प्रवेश के सम्बन्ध में नियम जो धारा 22 के अन्तर्गत व्यवास संघ की कार्यकारिणी के पदाधिकारियों के रूप में कार्य करेंगे।
   - घ. व्यवसाय के संघों के सदस्यों द्वारा चन्दे के भुगतान के सम्बन्ध में, जो प्रतिमाह 25 पैसे से कम न हों।
   - फ. वे दशाएं जिनसे किस सदस्य को प्रदान किया गया लाभ नियमों के अन्तर्गत प्राप्त करने का अधिकार होगा तथा वे दशाएं जिनमें किसी सदस्य पर जुर्माना किया जा सकेगा।
   - ज. संघ के नियमों में संशोधन करने, बदलने या रद्द करने की विधि।
   - ह. व्यवसाय संघ के कार्यकारिणी के सदस्यों की नियुक्ति से हटाए जाने की विधि।
   - आई. व्यवसाय संघ के कोषों की सुरक्षा, तथा वार्षिक ऑडिट (Audit) की रीति तथा पदाधिकारियों द्वारा पर्याप्त सुविधा देने के सम्बन्ध में।
   - जे. व्यवसाय संघ के विघटन की रीति।
2. निर्धारित सूचनाओं के अतिरिक्त, रजिस्ट्रार द्वारा यदि धारा 5 व 6 के अन्तर्गत अन्य किसी सूचना की मांग की जाए उसकी पूर्ति न होने पर।

कोई भी व्यवसाय संघ जब रजिस्ट्रीकृत हो जाता है तो उसको निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हो जाते हैंः

(i) वह उसी नाम से, जिससे कि उसका रजिस्ट्रीकरण किया गया था, एक नियमित निकाय बन जाता है।

(ii) वह एक निरन्तरित उत्तराधिकार प्राप्त कर लेगा और उसकी एक सामान्य मुहर होगी।

(iii) वह अपने नाम से चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति अर्जित एवं धारण कर सकेगा।

(iv) वह अपने अभिकर्ता (agent) के माध्यम से संविदा कर सकेगा।

(v) वह अपने रजिस्ट्रीकृत नाम से ही वाद दायर कर सकता है और उस पर बात दायर किया जा सकता है।

पंजीकरण को रद्द करना (Cancellation of Registration): भारतीय व्यवसाय संघों के अधिनियम, 1926 के अधीन किसी भी व्यवसाय संघ के प्रमाण पत्र वापस लेने व रद्द करने को शक्ति रजिस्ट्रार को प्रदान की गई है। रजिस्ट्रार निम्नलिखित मामलों में प्रमाण पत्र को वापस ले सकता है या रद्द कर सकता है:

1. जहां व्यवसाय संघ ने निर्दिष्ट रूप में सत्यापित आवेदन द्वारा ऐसी प्रार्थना की है।
2. जहां रजिस्ट्रार को इस बात का समाधान हो जाए कि प्रमाण-पत्र कपट गलती से प्राप्त किया है।
3. जहां व्यवसाय संघ का अस्त्तित्व नहीं रह गया है।
4. जहां व्यवसाय संघ ने जानबुझकर (Wilfully) रजिस्ट्रार से सूचना पाने के बाद अधिनियम के किन्ही उपबन्धों का उल्लघन किया है, या किसी ऐसे नियम को प्रवर्तन में चालू रहने दिया है जो अधिनियम के किन्हीं उपबन्धों के विरुद्ध है।
5. जहां व्यवसाय संघ ने अपने नियमों में अन्तर्विष्ट (contained) किन्हीं उपबन्धों को विखण्डित (reseind) कर दिया है।
6. जबकि संघ के प्राथमिक उद्देश्य नहीं रह गए हैं।

किसी भी व्यवसाय संघ के प्रमाण पत्र को रद्द किए जाने का आवेदन प्राप्त करने पर रजिस्ट्रार को चाहिए कि उस प्रार्थना-पत्र की वापसी या रद्द किए जाने का व्यवसाय संघ की साधारण बैठक ने अनुमोदित (Approved) कर दिया है या नहीं तथा इस प्रयोजन के लिए वह ऐसी मांग अगली सूचना में कर सकता है।

किसी भी प्रकार इस बात का पता लग जाने पर कि यूनियन अपने वैधानिक प्रयोजन को अवैधानिक साधनों से पूर्ण करने में प्रयत्नशील है और रजिस्ट्रार प्रमाण-पत्र को रद्द करने की नोटिस यूनियन के अधिकारियों को दे सकता है, एक पूर्व पंजीकृत यूनियन के नाम एक जैसे रहने पर धारिता उत्पन्न करने वाले नाम की सहायता पर भी ऐसाी कार्यवाही की जा सकती हैं व्यवसाय संघ के अस्तित्व में न रहने पर ऐसी कार्यवाही को प्रकाश में लाना आवश्यक है।

यदि प्रमाण-पत्र को वापस लेने या रद्द करने के लिए आवेदन पत्र कथित व्यापार संघ के अलावा अन्यथा दिया जाता है तो प्रमाण-पत्र वापस लेने या रद्द करने से पूर्व रजिस्ट्रार के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह उस व्यवसाय संघ से जिन आधारों पर प्रमाण-पत्र वापस लेना या रद्द करने का प्रस्ताव किया है उन आधारों को लिखित रूप से निश्चित करके कम से कम दो मास पूर्व उस आशय की सूचना दें।

अपीलें (Appeals):

(1) अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत रजिस्ट्रार के निर्णयों के विरुद्ध अपील करने का एक सीमित अधिकार प्रदान किया गया हैं कोई ऐसा पक्षकार जो किसी व्यवसाय संघ को रजिस्ट्रीकृत करने के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार के निर्णय द्वारा या रजिस्ट्रीकरण प्रमाण-पत्र की वापसी, या रद्द किए जाने के निर्णय से असन्तुष्ट है, उसके विरुद्ध अपील कर सकता है। इस प्रकार की अपील एक निर्धारित अवधि के भीतर कर दी जानी चाहिए। रजिस्ट्रार के जिन आदेश के विरुद्ध अपील की जा रही हो उस आदेश के दिए जाने के 60 दिन के भीतर अपील कर देनी चाहिए।

अपील निम्नलिखित दशाओं में की जा सकती है:

क. जहां की व्यवसाय संघ का प्रधान कार्यालय किसी प्रेसीडेन्सी नगर की सीमा के भीतर स्थित है,

ख. जहां कि ऐसा प्रधान कार्यालय, किसी अन्य क्षेत्र में स्थित है वहां ऐसे न्यायालय में जो मौलिक अधिकारिता से युक्त प्रधान सिविल न्यायालय के अपर न्यायाधिश या सहायक न्यायाधीश के न्यायालय से अपर न हो, और जिसे समुचित सरकार उस क्षेत्र के भीतर इस सम्बन्ध में नियुक्त करें।

2. अपीलीय न्यायालय उस अपील को रद्द कर सकता है, या रजिस्ट्रार के काम पर आदेश जारी कर सकता है कि वह उस संघ का रजिस्ट्रीकरण का प्रमाण पत्र वापस कर दें। वह किसी ऐसे आदेश को भी रद्द कर सकता है कि प्रमाण-पत्र को वापस किया जाने रद्द करने के सम्बन्ध में किए गए हैं। अपील न्यायालय द्वारा किए गए आदेश का

पालन करने के लिए रजिस्ट्रार बाध्य होगा।

किसी पंजीकृत व्यवसाय संघ का कोई अधिकारी या सदस्य किसी करार के लिए, जो सदस्यों के मध्य उस व्यवसाय संघ के किसी ऐसे उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए किया गया है जो धारा 15 में उल्लिखित हैं भारतीय दण्ड संहित की धारा 120 ;खद्ध में दण्ड का भागी नहीं होगा यदि वह करार किसी अपराध को करने के लिए किया गया न हो। (धारा 17)

वास्तव में इस अधिनियम की धारा 17 आपाराधिक षड़यंत्र के सम्बन्ध में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120 के अंतर्गत एक रजिस्टर्ड व्यवसाय संघ के पदाधिकारी या सदस्य द्वारा किए गए अपराध के सम्बन्ध में उन्मुक्ति प्रदान करती है। इस धारा का प्रभव यह है कि रजिस्टर्ड व्यवसाय संध के दो या अधिक सदस्यों के बीच व्यवसाय के विवाद के अनुसरण में कोई कार्य करने या कराने के सम्बन्ध में किया गया करार उस समय तक एक षड़यन्त्र के रूप में दण्डनीय नहीं कहा जा सकता जब तक कि यदि वह किसी एक व्यक्ति द्वारा किया गया होता अपराध न कहा जाता।

2. **दीवानी मुकदमों से उन्मुक्ति (Immunity from civil suit):** कोई मुकदमा या अन्य वैध कार्यवाही किसी अदालत में पंजीकृत व्यवसाय संघ के खिलाफ या उसके किसी अधिकारी या सदस्य के खिलाफ किसी कार्य के बारे मे जो किसी व्यवसाय विवाद (Trade Dispute) को ध्यान में रखते हुए, उसको बढ़ावा देने के लिए किया गया है याजिस विवाद में व्यवसाय संघ का कोई सदस्य पक्षकार है, कोई कार्यवाही केवल इस आधार पर कायम नहीं की जाएगी कि ऐसी कार्य किसी दूसरे व्यक्ति को नियोजन की संविदा (contract of employment) को भंग करने के लिए प्रेरित करता अथवा किसी व्यक्ति के व्यवसाय, कारोबार या नियोजन में हस्तक्षेप करता है किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पूंजी या श्रम को अपनी इच्छानुसार व्ययन (Dispose off) करने में हस्तक्षेप करता है। (धारा 18)

यदि व्यवसाय संघर्ष को बढ़ाने के लिए श्रम-संघ के अभिकर्त्ता द्वारा कोई हानि प्रद अथवा कष्टदायक कार्य किया गया हो तो तथा यह सिद्ध कर दिया जाए कि उक्त कार्य उसेन व्यवसाय संघ की कार्यकारिणी के स्पष्ट निर्देशन या जानकारी के बिना किया है तो पंजीकृत व्यवसाय संघ, दीवानी न्यायालय में उक्त कार्य के लिए होने वाले कानूनी कार्यवाही के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

3. **करारों की अपवर्तनीयता (enforceability of agreements):** किसी पंजीकृत व्यवसाय संघों के सदस्यों के मध्य किया गया कोई करार केवल इसी बात के कारण शून्य या शून्यीकरण (void or voidable) नहीं है कि करार के उद्देश्यों में से कई उद्देश्य व्यापार पर रोक लगाता है।

परन्तु इस धारा की कोई बात उन शर्तों से संयुक्त किसी करार के भंग के लिए, जिन पर व्यवसाय संघ के कोई सदस्यः

क. अपना माल बेचेंगे या नहीं बेचेंगे,

ख. कारोबार का सव्यवहार करेंगे अथवा नहीं करेंगे,

ग. काम करेंगे या नहीं करेंगे,

घ. नियोजित करेंगे या नहीं करेंगे, या

ड. नियोजित किए जाएंगे या नहीं किए जाएंगे क्षतिपूर्ति की धनराशि दिलवाने या वसूल करने (for enforcing of recovering ranges) के अभिव्यक्त (express) प्रयोजनों के लिए संस्थित (Institutal) किसी विधिक पर कार्यवाही को ग्रहण करेन के लिए किसी न्यायालय (civil court) को समर्थ नहीं करेगी। (धारा 19)

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवसाय संघों को आपराधिक षड़यन्त्र तथा दुष्कृति और करारों के भंग के उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। यह उत्तरदायित्व क्रम साधारणतया तो पूरे यूनियन का रहेगा किन्तु विशेष रूप से उनके अधिकारिों पर ही माना जाएगा। अपनी उन्मुक्ति की आड़ में व्यवसाय संघों को अनुचित श्रम व्यवहार (आचार) नहीं करना चाहिए।

एक निगमित निकाय (A body corporate): धारा 13 के अर्न्तत प्रत्येक व्यवसाय संघ एक निगमित निकाय है, जिसका अस्तित्व स्थाई होगा तथा उसकी एक 'सामान्य-सील' (common seal) होगी। उसे चल और स्थावर सम्पत्ति (inmovable property) प्राप्त करने, रखने तथा उसके सम्बन्ध में अनुबंध करने का अधिकार होगा। यह उक्त नाम से वाद चला सकती है तथा उसके विरुद्ध भी उक्त नाम से वाद चलाया जा सकता है।

ख. मान्यता प्राप्त व्यवसाय संघों तथा नियोजकों की ओर से किए जाने वाले अनुचित आचरण हो सकते हैं:

एक मान्यता प्राप्त व्यवसाय संघ द्वारा किए जाने वाले निम्नलिखित कृत्य अनुचित आचरण हो सकते हैं।

1. यदि किसी व्यवसाय संघ के सदस्य अनियमित हड़ताल में भाग लेते हैं।
2. संघ की कार्यकारिणी की हड़ताल की राय देना या उकसाना अथवा सक्रियता से समर्थन करना अनुचित है।
3. व्यवसाय संघ के अधिकारी द्वारा यदि मिथ्या लेखा विवरण प्रस्तुत किया जाता है तो एक अनुचित कार्य होगा।

नियोजकों द्वारा अनुचित आचरण (Unfair practices by employers): **अग्रलिखित कार्य जो कि नियोजकों द्वारा किए जाएंगे, अनुचित होंगे:**

1. व्यवसाय संघ को संगठित करने और निर्माण करने, या व्यवसाय संघ में सम्मिलित होने अथवा व्यवसाय संघ की सहायता करने के सम्बन्ध में अपने कर्मचारियों को अपने अधिकारों का प्रयोग करने में जो नियोजक व्यवधान पैदा करते हैं या अनुचित दबाव डालते हैं ओर उन्हें शारीरिक श्रम में लागते हैं तो नियोजक के वे कृत्य अनुचित आचरण होंगे।
2. नियोजक को चाहिए कि वह व्यवसाय संघ के निर्माण या प्रशासन में अथवा उसे आर्थिक अंशदान करने में अथवा उसको अन्य सहायता करने में हस्तक्षेप न करें।
3. किसी कामगार को उन्मुक्त (discharge) करना अथवा उसके विरुद्ध विभेद करना क्योंकि उसने किसी मामले के सम्बन्ध में जांच या कार्यवाही में आक्षेप किया है या साक्ष्य दिया है।

   किसी मान्यता प्राप्त व्यवसाय संघ के अधिकारी के विरुद्ध विभेद करना या उसे इस कारणवश अलग रखना कि व्यवसाय संघ का पदाधिकारी है बहुत ही अनुचित आचरण है।

व्यवसाय संघ की मान्यता, कसौटी, उसका रद्द किया जाना तथा मान्यता-प्राप्त संघों के अधिकार

(Recognition of Trade Union, Conditions, Cancellation and Rights of Recognise Trade Union)

श्रमिक संघों की मान्यता के ऐतिहासिक प ष्ठ भूमि का अध्ययन आवश्यक है। प्रारम्भ में जब सामूहिक सौदेबाजी की प्रणाली प्रचलित नहीं थी और नियोजक तथा कर्मकार के बीच व्यक्तिगत समझौता हुआ करता था, तब संघों की मान्यता का प्रश्न बड़ा ही गौण तथा नगण्य था। नियोजक-वर्ग उसे मान्यता प्रदान करना अपने स्वाभिमान के प्रतिकुल समझते थे, इतना ही नहीं, किसी मध्यस्थ के साथ भी श्रमिक प्रतिनिधियों से बात करने में संकोच करते थे, इस कारण से कि प्रकारान्तर से यह उन्हें मान्यता देने के बराबर होगा। नियोजक श्रमिक संघों की आवश्यकता को औद्योगिक जगत् में कुछ महत्व ही नहीं देते थे। आरम्भ में मान्यता देना या न देना पूर्णातया नियोजक के विवेक पर निर्भर करता था। बतौर अधिकार श्रमिक संघ मान्यता की मांग नहीं कर सकते थे।' इससे उन्हें अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था, क्योकि उनके प्रतिनिधि या कार्यकारिणी के सदस्य सीधे नियोजक से विचार-विमर्श नहीं कर सकते थें नियोजक मनमाने ढंग से कर्मकारों से व्यक्तिगत संविद्‌ा करके अवांछित ढंग से उनका शोषण किया करते थे।

इस समस्या के निराकरण के लिए मान्यता के आवश्यक प्रावधान हेतु अधिनियमों में संशोधन किया गया और दी इण्डियन ट्रेड यूनियन (संशोधन) अधिनियम 1947 पारित तो हुआ, किन्तु उसे लागू नहीं किया जा सका। उक्त अधिनियम की धारा 28 क से 28 झ में मान्यता सम्बन्धी प्रावधान किए गए। औश्र अब तक प्रभावी नहीं बनाया जा सका। पुनः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अनिवार्य मान्यता किए जाने का प्रस्ताव तो आया लेकिन वह भी क्रियान्वित न हो सका। सौभाग्य या दुर्भाग्य से सरकार यह मत रहाहै कि औद्योगिक समस्याओं का एकमात्र हल श्रमिक संघ को अनिवार्यतः मान्यता देने की व्यवस्था नहीं है। मान्यता एवं आचार संहिता आदि पर व्यापक विचार हेतु पिछले श्रममंत्री ने संघों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया और एक सामान्य नीति तय करने पर जोर दिया। इन्टक का सुझाव था कि मान्यता सदस्यता के आधार पर दी जानी चाहिए, जबकि

एकट के अनुसार गुप्त राय लेकर ऐसा करना उपयुक्त होगा। सार्वजनिक उपक्रमों के लिए गठित संसदीय समिति ने सुझाव दिया कि कम से कम एक यूनियन को मान्यता देना प्रबन्धकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए क्योंकि मान्यता देने की वर्तमान प्रणाली प्रभावहीन है। इस प्रकार सरकार की शिथिलता से आज के दिन भी स्थिति पूर्ववत् बनी हुई है और संघों को मान्यता देने के सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित नियम नहीं है। ऐसा वैधानिक व्यवस्था का अभाव तो सर्वत्र है, किन्तु सौभाग्यवश भारत के 4 राज्यों-गुजरात, राजस्थान महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में मान्यता का वैधानिक प्रावधान बना दिया गया है महाराष्ट्र सरकार ने इसके लिए 'महाराष्ट्र रिकाग्निशन ऑफ ट्रेड यूनियन एण्ड प्रिवेन्शन ऑफ अनफेयर लबर प्रैक्टिसेज ऐक्ट, 1971' लागू किया है। अन्य सरकारों को भी इस दिशा में ठोस कदम उठाना चाहिए। सभी बातों के पूर्ण रहने तथा रजिस्ट्रार द्वारा पंजीञ्कृत संघों का नियोजक द्वारा मान्यता न प्रदान किए जाने तक कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहता। इंग्लैण्ड, भारत तथा अन्य देशों में यह विकट समस्या बनी हुई थी कि किस प्रकार मान्यता के प्रश्न को हल किया जाए, जिसके अभाव में श्रमिक संघ बिना किसी आधार एवं अधिकार के पड़े रहते थे। नियोजक द्वारा मान्यता न देने का हठ और संघ द्वारा उनकी मांग के फलस्वरूप तनातनी का वातावरण विद्यमान रहता था।

मान्यता संबंधी विवाद औद्योगिक विवाद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि न तो संविधि विधि न तो 'कामन ला' के अन्तर्गत ही किसी व्यवसाय संघ को नियोजक को नियोजक से मान्यता पाने का अधिकार दिया गया है। केरल उच्च न्यायालय ने स्पष्ट कहा है- "Recognition dispute is not an industrial dispute, recognition is a matter of volition on the part of the employer. A trade union has neither a common law right nor statutory right, which enables it and entitles it to compel an employer to give recognition to it as the beargaining agents of its members." इस वाद में यूनियन ने मान्यता हेतु ''सिविल-सूट'' फाइल किया था। रघुबर दयाल जयप्रकाश बनाम भरत संघर्ष मे स्पष्ट निर्णय किया गया है कि व्यवसाय संघों की वैधानिक स्थिति एक रूप से प्रतिस्थापित हो जोन के पश्चात् भी अनुच्छेद 19 (1) (ग) उन्हें मान्यता प्रदान करने सम्बन्धी अधिकार प्रदान नहीं करता है।

इस समस्या के निराकरण के लिए इंग्लैण्ड में सन् 1947 ई. में एक संशोधन करके प्रत्येक पंजीकृत श्रमिक संघ को नियोजक द्वारा मान्यता देना अनिवार्य बना दिया गया। उसी वर्ष पेश किया गया समान संशोधन दुर्भाग्य से हमारे यहां लागू नहीं किया जा सका। आरम्भ में इसमें लोगों की विशेष रुचि भी नहीं थी, क्योंकि इस समस्या को औद्योगिक विवाद का अभिन्न अंग नहीं माना जाता था। हमारे यहां सन् 1966 में पुनः इस पर विचार करके उसी वर्ष अधिनियम के पूर्व प्ररूप को ध्यान में रखते हुए एक संशोधन पेश किया गया, जिसे स्वीकृति भी प्राप्त हो गई। सरकार ने यह घोषणा की, कि नियोजकों को चाहिए कि वे पंजीकृत श्रमिक संघों को मान्यता प्रदान करें। मान्यता करना दोनों पक्षों- श्रमिक तथा नियोजक के लिए हितकर ही है, क्योंकि इससे पारस्परिक विचार-विमर्श करना सरल हो जाता है।

सरकार ने मान्यता प्रदान करने का सुझाव दिया है और यह भी कि मान्यता प्राप्त व्यवसाय संघ को ही प्रबन्धकों से सौदेबाजी करने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। जहां 100 से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, वहां मान्यता आवश्यक होनी चाहिए। मान्यता से दोनों पक्षों को काफी लाभ एवं सुविधाएं प्राप्त हो जाती है। जैसे बड़े-बड़े स्थानों में, जहां हजार दो हजार से भी अधिक कर्मकार काम करते हैं, वहां सभी से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित करना तथा महत्वपूर्ण मामलों पर सबकी सहमति लेना नियोजक के लिए कठिन काम होगा। अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग की कहावत चरितार्थ होगी। आधुनिक युग में सामाजिक स्तर एवं औद्योगिक समस्याएं इतनी ज़जटिलतम हैं कि साधारण कर्मकार केलिए उन्हें समझना असम्भव है। उसके प्रत्येक पहलू से अर्द्धशिक्षित कर्मकार का परिचित होना तथा उसके निराकरण के लिए विचार करना, साधारण श्रमिक के बूते के बाहर होगा, अतः दक्ष एवं औद्योगिक विधि-व्यवस्था में सर्वथा पटु लोगों को इसके लिए अवसर देने का एकमात्र उपाय संघों को मान्यता देना है, जिससे कार्यकारिणी में, कुछ बाह्य सदस्य निश्चित रूप से हुए विचारों वाले राजनैतिक, औद्योगिक पहलुओं से परिचित तथा अनुभवी व्यक्ति सम्मिलित किए जा सकें। अनुशासन संहित कुछ कसौटियों के आधार पर प्रबन्धकों द्वारा मान्यता देना अनिवार्य बनाती है।

इण्डियन लेबर कान्फ्रेन्स ने अपने 16 वें सत्र में इस बात पर बल दिया कि प्रबन्धकों या नियोजकों को चाहिए कि वे श्रमिक-संधों का मान्यता दें और यह संस्तुति भी कीः

1. कोई भी संघ किसी उद्योग के प्रतिनिधि के रूप में मान्यता प्राप्ति की आधिकारिक मांग कर सकता है।
2. वह किसी स्थान में बहुसंख्यक संघ (majority union) होने के आधार पर मान्यता का दावा कर सकता है, बशर्ते तद्विषयक शर्तें पूर्ण हों।

त्रिपक्षीय श्रम-सम्मेलन इस मुद्दे पर संघों की सदस्यता के सत्यापन के मामले में एक समझौते पर पहुंच गया है और सिफारिश की है कि किसी एक उद्योग अथवा औद्योगिक इकाई में सामूहिक सौदेबाजी कर सकने वाले मजदूर संघ की पहचान के लिए एक नई प्रणाली लागू की जाए, जो उद्योगों में प्रतिद्वन्द्वी मजदूर संघों की शक्ति का पता लगाएगी। इसके अन्तर्गत मजदूर संघों की सदसय संख्या का मिलान वेतन-रजिस्टर से किया जाएगा। केवल मजदूर संगठन ही सामूहिक सौदा करने का अधिकार प्राप्त कर सकेंगे, जो नयी आचार संहिता पर खरे उतरेंगे। कर्मचारी द्वारा यह बताए जाने के आधारपर कि वह यूनियन का सदस्य है, चेक ऑफ और तदनुसार सौदेबाजी के एजेन्टो की नियुक्ति होनी चाहिए, जो तीन वर्ष तक वैध रहे, जब तक कोई दूसरा संघ उसे सफलतापूर्वक चुनौती नहीं दे पाता। औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को यह निश्चित करने का कार्य सौंपा जाए कि एकमात्र सामूहिक सौदेबाजी एजेन्ट होने के लिए कितनी सदस्य संख्या होनी चाहिए। जहां यह सम्भव हो सामूहिक सौदेबाजी परिषद् का गठन किया जाए, जिसमें एक से अधिक यूनियनों का प्रतिनिधित्व हो। सम्मेलन ने यह भी सिफारिश की कि मजदूर संगठनों और मालिकों के लिए अलग-अलग आचार संहिताएं बनायी जाएं और उनका उल्लंघन करने वालों को दण्ड का निर्धारण औद्योगिक सम्बन्ध आयोग करे। साथ ही राष्ट्रीय श्रम-आयोग की रिपोर्ट में प्रस्तावित औद्योगिक आयोग का गठन किया जाए और उसी को यूनियन की सदस्यता की सम्पुष्टि का काम सौंपा जाए।

मान्यता प्राप्ति का ढंग (Method of Recognition): इन्हें निम्न दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः

1. नियोजक एवं संघ के पारस्परिक संविदा, समझौते या अनुबन्ध द्वारा मान्यता (धारा 28 ग)।
2. श्रम न्यायालय द्वारा (धारा 28 घ)।

प्रथम वर्ग में आने वाले तरीके के अन्तर्गत संघ की मान्यता के लिए पहले संघ के अधिकारी नियोजक से प्रार्थना करेंगे औश्र दूसरे उपाय का सहारा नहीं लेंगे। यदि नियोजक उनकी इस प्रकार की प्रार्थना स्वीकार करके उस सम्बन्ध में कोई समझौता कर लेता है, तो ठीक ही है। संघ्ज्ञ का यह परम कर्त्तव्य है कि वह नियोजक को अपने पक्ष में लाने का प्रयास करें। मान्यता के सम्बन्ध में कोई मान्य समझौता होने पर दोनों पक्षों में एक लिखित एवं हस्ताक्षरयुक्त समझौता-पत्र तैयार किया जाएगा, जिसे रजिस्ट्रार के यहां पंजीकृत कराना आवश्यक होगा। यदि संघ अपने प्रयास में पूर्णतया विफल रहता है, तो 3 मास की अवधि समाप्त होने पर वह द्वितीय उपाय का सहारा लेगा और स्थानीय श्रम-न्यायालय में मान्यता दिलाने के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करेगा। दोनों पक्षों को अपनी-अपनी बातों को प्रस्तुत किए जाने का अवसर प्रदान करने के बाद ही न्यायालय कोई निर्णय देगा। मान्यता के आदेश देने के पूर्व श्रम-न्यायालय संघ के अधिकारियों से और भी स्पष्टीकरण की मांग कर सकता है। प्रत्येक बात को देखकर एवं सन्तुष्ट होकर ही मान्यता देने का आदेश न्यायोचित होगा। किसी भी प्रश्न को स्पष्ट करने की मांग पर संघ को स्पष्टीकरण देना होगा, अन्यथा मान्यता देना न्यायालय के विवेकाधिकार का विषय बन जाएगा। पर्याप्त एवं समुचित कारण रहने पर मान्यता का प्रार्थना पत्र अस्वीकृत भी किया जा सकता है, मान्यता प्रदान करने के पश्चात् श्रम-न्यायालय उसकी सूचना उस स्थापन के नियोजक को देगा, जिससे सम्बन्धित वह संध है और आदेश की एक प्रतिलिपि भी जिससे कि संघ को मान्यता प्रदान की जाए।

मान्यता प्रदान करने की कसौटी

पारस्परिक समझोते से या श्रम-न्यायालय के आदेश द्वारा, मान्यता देने की कुछ मान्य कसौटियां है जिन्हें ध्यान में रखकर और निम्न शर्तों के पूर्ण होन पर ही मान्यता दी जानी चाहिए।

1. मान्यता की मांग करने वाला संघ एक पंजीकृत संघ है।
2. संघ की संविधान जमा किया गया है और वह वैधानिक है और उसका उद्देश्य दोनों वैधानिक है।
3. संघ आचार-संहित को स्वीकार करता है तथा तदनुरूप कार्यशील होने के लिए उद्यत तथा प्रतिज्ञाबद्ध है।

4. संघ के सभी सदस्य उसी नियोजक के अधीन कार्य करते हैं या उसी स्वभाव (of the same nature) उद्योग से सम्प क्त हैं।

5. यूनियन बहुसंख्यकी संघ (majority union) है। उसमें प्रतिष्ठान के अधिकांश कर्मकार सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं। अधिकतम प्रतिनिधित्व का प्रश्न वहां उठाया जा सकता है जहां कि एक ही स्थापन में कई श्रमिक संघ समान्तर कार्य करते हैं। उनमें से मान्यता देना न्यायानुकूल होगा।

6. संघ को अस्तित्व में आए कम से कम एक वर्ष व्यतीत हो गया है। फोरबीज कैम्पवेल ऐण्ड कं. लि. बनाम इन्जीनियरिंग मजदूर सभा के मामले में यह निर्णीत हुआ कि पिछले 12 महीने में उसकी कार्यकारिणी की बैठकें अवश्य हुई रहनी चाहिए।

7. उसके स्टेट्स में न्यूनतम दो वर्ष में कोई परिवर्तन नहीं होगा। संघ कम से कम स्थापन के 50 प्रतिशत कर्मकारों का प्रतिनिधित्व वैघानिक रूप से करने के लिए अर्ह है।

8. संघ ाया फेडरेशन अपने क्षेत्र में कम से कम 25 प्रतिशत सदस्यता वाला हैं यह प्रश्न तब उठता है, जब कई संघों के समामलेन से एक फेडरेशन की स्थापना होती है जिसे 25 प्रतिशत सदस्यता वाला होना चाहिए, यदि वह क्षेत्र विशेष के कर्मकारों के प्रतिनिधित्व का दावा करता है।

यूनियन की मान्यता की कसौटी का उल्लेख मई, 1958 में इण्डियन लेबर कान्फ्रेंस के 16 वें अधिवेशन में किया गया। उल्लेखनीय है कि ऐसे संघ को मान्यता नहीं मिल सकेगी, जिसने कुछ अपवादों के अतिरिक्त सदस्यों के निष्कासन के अधिकार सम्बन्धी प्रावधान अपने संविधान में सम्मिलित किया है।

मान्यता का वापस लिया जाना (Withdrawal of Recognition) (धारा 28 (ड़)) रजिस्ट्रार या नियोजक श्रम न्यायालय को लिखित रूप से मान्यता के वापस लिए जाने के लिए निम्नलिखित में से किन्हीं आधारों पर आवेदन दे सकता हैः

(i) संघ सही अर्थ में सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने में विफल है।

(ii) किसी प्रकार के विवरण की मांग किए जाने पर संघ्ज्ञ उसकी आपूर्ति नहीं करता।

(iii) संध की कार्यकारिणी या सदस्यों ने आवेदन देने की तिथि के तीन महीने के भीतर धारा 28 में उल्लिखित कोई अनुचित व्यवहार किया है या करती है. जैसे-कपटपूर्ण विवरण प्रदान करना या अनियमित हड़ताल से सहमत होना या उसका समर्थन करना।

(iv) संघ अपने वार्षिक लेखा-जोखा प्रतिवेदन रजिस्ट्रार के पास नहीं भेजता है और न तो वह उसकी वार्षिक जांच ही कराता है।

(v) संघ की कार्यकारिणी की बैठक 6 महीने के अंदर नहीं होती। 6 मास की अवधि में बैठक कराना अपेक्षित है या तो रजिस्ट्रार मान्यता लिए जाने की स्वं पहल करे या नियोजक उक्त कारणों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करे। सामान्यतया एक बार प्रदत्त मान्यता वापस नहीं ली जाती। लेकिन परिस्थिति-विशेष में (जिसका कि उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) ऐसा करना असंगत, अनुचित एवं अवैध नहीं होगा। मान्यता छीने या वापस लिए जाने के पूर्व श्रम-न्यायालय संघ को 'कारण बताओ' नोटिस तामील करेगा कि ''क्यों न अमुक-अमुक कारणों से उसकी मान्यता समाप्त कर दी जाए।'' दोनों पक्षों को अपन स्पष्टीकरण देने तथा उसकी पुष्टि में सक्ष्य प्रस्तुत करने का समुचित अवसर प्रदान करने के बाद श्रम-न्यायालय इस बात से सन्तुष्ट है कि संघ अब मान्यता प्रदान करने योग्य नहीं रह गया है तो वह मान्यता वापस लिए जाने की घोषणा करेगा। संघ के अस्तित्व के समाप्त होने के साथ मान्तया अपने आप खत्म हो जाएगी। तमिलनाडु एलेक्ट्रिसिटी बोर्ड यूनियन द्वारा नाम बदल लेने के कारण मान्यता वापस ले लिया। मान्यता का वापस लेना अवैध माना गया, क्योंकि कोई भी यूनियन अपना नाम बदलने से रोकी नहीं जा सकती।

नई मान्यता के लिए आवेदन (धारा 28 ज): मान्यता वापस किए जाने की तारीख से 6 मास की अन्यून अवधि बीत जाने के बाद मान्यता के लिए आवेदन पत्र दे सकता है और इस अधिनियम में निर्धारित प्रक्रिया उस आवेदन के सम्बन्ध में उसी प्रकार लागू होगी जैसे कि वह मान्यता विषयक नया आवेदन-पत्र हो।

राष्ट्रीय श्रम आयोग के मान्यता विषयक सुझावः

1. जहां 100 या इससे अधिक कर्मकार कार्यरत हों वहां श्रमिक संघों को अनिवार्यतः मान्यता दी जानी चाहिए। 30% सदस्यों का जिस संघ को समर्थन प्राप्त है, उसे ही मान्यता दी जानी चाहिए।
2. मान्यता प्राप्त संघों को विधिवत सौदेबाजी करने, सदस्यों से सदस्यता शुल्क प्राप्त करने तथा अन्य कार्यों के लिए अधिकृत किया जाना चाहिए।
3. अल्पसंख्यक श्रमिक संघ को श्रमिकों को सेवामुक्त करने सम्बन्धी विषयों पर श्रम-न्यायालय में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।
4. प्रतिनिधि संघ का चुनाव या तो सदस्यता के आधार पर या गुप्त मतदान द्वारा किया जाना चाहिए।

मान्यता प्राप्त संघों के अधिकार (Rights of recognied Trade Unions) (धारा 28 च) अनुशासन संहिता (Code of Discipline) में उन अधिकारों को उल्लेख किया गया है, जिन्हें पाने का दावा एक मान्यता प्राप्त श्रमिक-संघ कर सकता है। उसकी पुष्टि इण्डियन लेबर कांफ्रेस ने भी की है। उन अधिकारों को विवेचन निम्न प्रकार हैः

1. किसी भी औद्योगिक विवाद में संघ की कार्यकारिणी को अपने किसी भी सदस्य या सदस्य समूह का प्रतिनिधितव करने का अधिकार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 36 में प्रदत्त है। लेकिन प्रतिनिधतव करने का केवल उसी संघ को अधिकार होगा, जिसमें 15 प्रतिशत कर्मकार उसकी सदस्यता स्वीकार कर चुके हैं। त्रिपक्षीय श्रम-सम्मेलन ने यह सिफारिश की है कि उन्हीं संघटनों को भारतीय श्रम-सम्मेलन में प्रतिनिधित्व दिया जाए, जो इस सम्मेलन की सिफारिशों का पालन करना स्वीकार करें और संघटन को केन्द्रीय संघटन माना जाए, जिसकी स्थापित सदस्य संख्या चार उद्योगों में कम से कम पांच लाख है। इंग्लैण्ड एवं अमरीका में भी इसी प्रकार से संघ को अधिकार प्रदान किए गए हैं। वर्कर्स आफ बी.एण्ड सी. बनाम लेबर कमिश्नर के मामले में यह विर्णीत हुआ कि संघ ऐसे कर्मकार के मामलें में प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा जो उसका सदस्य नहीं है। अपने सदस्यों के विवाद को उठाने नियोजन या अनियोजन के सम्बन्ध में वार्ता करने, कानूनी कार्यवाही तथा औद्योगिक विवाद में प्रतिनिधित्व करने या उसे विधिक अधिकार प्राप्त है। न्यूजपेपर्स लि. इलाहाबाद बनाम स्टेट इण्डस्ट्रियल ट्रिव्युनल के मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मामले के उठाने को केवल इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी कि विवाद अपंजीकृत संघ से उठाया है। यूनियन द्वारा या अन्यथा विवाद उठाया जा सकता है। हां, पंजीकृत संघ ही लम्बित कार्यवाही में प्रतिनिधित्व करने में सक्षम होगा। जब लेबर कोर्ट में संघ कर्मकारों की तरफ से उपसंजात (appear) हो रहे हों तो कोई भी कर्मकार व्यक्तिगत रूप से पार्टी बनाने या उपसंजात होने का अधिकार नहीं रखेगा।

   हर एक मामले में, चाहे यह निष्कासन, निलम्बन एवं छंटनी को लेकर हो या अवकाश, छुट्टियां, जबरी काम पर से लौटाने, प्रकाश, आवास, यातायात या अन्य सुविधाओं से संबंधित, कर्मकार अपने संघ द्वारा बचाव पाने का अधिकार रखते हैं। बाम्बे यूनियन आफ जर्नलिस्ट्स बनाम हिन्दू तथा एसोशियेटेड कं. लि. बनाम उनके कर्मकारगण के विनिश्चय में व्यवसाय संघों पर सामूहिक सौदेबाजी करने पर अधिक जोर दिया गया है तथा सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जा सके और श्रमिक-विवादों का शान्तिपूर्वक हल निकाला जा सके।
2. प्रत्येक पंजीकृत एवं मान्यताप्राप्त संघ को चल एवं अचल सम्पत्ति रखने, खरीदने, उपयोग करने का पूर्ण अधिकार होता है। वे अपने संघ कार्यालय के समुचित संचालन के लिए बिल्डिंग बनवा सकते हैं।
3. मान्यता प्राप्त संघों को कर्मकारों के हित में सामुहिक समझौते सौदेबाजी करने का और भी अधिक अधिकार मिल जाता है, जिसका लाभ सभी सदस्यों को मिलेगा और उन्हें भी जो उसी स्थापन में कर्मकार हैं, किन्तु संघ की सदस्यता स्वीकार नहीं की है। स्मरण रहे कि सरकार ने 13 मई 1988 में एक विधेयक पेश किया है, जो औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक को संशोधित करेगा और उसके तहत औद्योगिक इकाइयों में श्रमिकों की तरफ से सामूहिक सौदेबाजी के लिए एक एजेन्ट या परिषद् क गठन की व्यवस्था होगी। इस एजेन्ट या परिषद् का कार्यकाल पहले से ही निर्धारित रहेाग। इस विधेयक में औद्योगिक संस्थानों में ट्रेड यूनियन की शक्ति का सत्यापन प्रणाली के सम्बन्ध में सतारूढ़ दल द्वारा संचालित भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा विपक्ष्ज्ञ नियन्त्रित यूनियनों के बीच समझौते

का प्रयास किया गया है। विधेयक में मजदूर संघों की सदस्य संख्या की जांच के लिए लिए सामान्य परिस्थितियों के लिए इन्टक का यह फार्मूला स्वीकार किया गया है कि यह जांच वेतन से काटे जाने वाले यूनियन के चन्दे के आध्धर पर की जानीच चाहिए। लेनि असाधारण परिस्थितियों के लिए विपक्षी मजदूर संघों के गुप्तदान के सुझाव को भी स्वीकार किया गया है। विपक्ष ने इसे श्रमिक विरोधी तथा श्रमिक संघों की गतिविधियों पर अकारण अंकुश तथा हड़तालों पर गलत तरीके से रोक लगाने वाला बताया है। निलम्बन, निष्कासन आदि के लिए तो संघ लड़ता ही है, बोनस, महंगाई-भत्ते, मूल वेतन, व द्धि आवास एवं प्रकाश की आपूर्ति एवं अन्य सुविधाओं के साधनों की उपलब्धि कराने के लिए भी संघ सदैव अपने सदस्यों के हित में सामूहिक रूप से सौदेबाजी कर सकता और करता रहता है। मु. दयोली वक्रम बनाम दी स्टेट इन्डस्टियल कोर्ट्र, नागपुर के मामले में निर्णत किया गया कि संघ द्वारा की जाने वाली सामूहिक सौदेबाजी से केवल उसके सदस्य ही नहीं, बल्कि ऐसे कर्मकार भी लाभान्वित होंगे, जो संघ के सदस्य नहीं हैं। लाभ सामान्यतया सबको मिलेगा।

इस अधिनियम में प्रस्तावित संशोधन के पश्चात् अब ऐसा व्यवसाय संघ्ज्ञ ही कलेक्टिव वारगेनिंग एजन्ट माना जाएगा जिसमें कुल सदस्यों की संख्या के 51% कर्मकार सदस्यता ग्रहण किए होंगे। यदि 51% से कम सदस्य हैं तो दो संघ मिलकर ऐसा एजेन्ट बन सकते हैं। यह सुझाव रामनुजम कमेटी ने दिया है। अमेरिका के टैक्टहार्टल ऐक्ट की धारा (ब) (2) मे भी समान प्रावधान है, जिससे गैर-सदस्यों को भी सामूहिक सौदेबाजी का लाभ मिलना चाहिए। उसके अनुसार ''धारा का अर्थ है सामूहिक समझौते के पत्राचार तथा प्रशासन में संघ कानुनन ऐसे कर्मकारों के जो सदस्य नहीं हैं, अलाभ की सभी सौदेबाजी नहीं कर सकता। सौदेबाजी के प्रयोजन के लिए गैर-सदस्यों को उसी प्रकार व्यवह्त किया जाएगा, मानों वे सदस्य हों। साथ ही गैर-सदस्य के प्रति भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए, मात्र इसलिए कि वह यूनियनों के नियमों को मानने के लिए उत्साहित हों। ऐसा ही वांछित है चाहे यूनियन शाप एग्रीमेन्ट है अथवा नहीं।''

इस सम्बन्ध में संघ का मुख्य कार्य सदस्यों के विवादग्रस्त हितों की रक्षा करना होता है जो सामूहिक सौदेबाजी में न्यायोचित ढंग से की जा सकती हैः

4. **पत्राचार एवं विचार-विमर्श का अधिकारः** श्रमिक संघ की कार्यकारिणी को अधिकार है कि निष्कासन, निलम्बन, छंटनी, सेवा-दशाओं में परिवर्तन, जबरी छुट्टी (lay off), आर्थिक दण्ड के बारे में नियोज से पत्राचार करें और उक्त कार्यवाहियों के कारण और औचित्य की जानकारी की मांग करें। सभी पत्राचार संघ के या उसके किसी भी अधिकारी के नाम से किए जा सकते हैं। किसी भी महत्वपूर्ण मामले पर विचार-विमर्श करने के लिए संघ के अधिकारीगण नियोजक के पास जा सकते हैं एवं एतदर्थ उन्हें बाध्य भी कर सकते हैं।

5. संध्घ अपने सदस्यो को अनुशासन-भंग करने पर दण्डित कर सकेगा। संघ-नीति और संघ दण्ड (Union fine) में अंतर होता है। भारत और अमेरिका आदि देशों में अभी तक यह अनिर्णीत विषय बना हुआ है कि क्या संघ अपने सदस्यों पर किए गए आर्थिक दण्ड को न्यायालय के माध्यम से वसूल कर सकता है? अनुशासन बनाए रखने के लिए नियमावली रखना वांछित है। इस प्रकार के अधिकार न रहने पर संघ का कार्य सुचारू रूप से चलना असम्भव हो जाएगा। अमेरिका में संघ की नीति न्यायालय के क्षेत्राधिकार से उन्मुक्त रहती है। अवैधानिक ढंग से किसी सदस्य को उन्मुक्तता की आड़ में दण्डित करना न्यायोचित नहीं होगा।

6. सरकार का ध्यान आकृष्ट कराने का अधिकारः नियोजक द्वारा किए गए किसी भी जोर-जुल्म या अवैधानिक कार्य के प्रति सरकार की मदद मांगने का उसे अधिकार है।

7. नोटिस वोर्ड रखने का अधिकारः प्रत्येक मान्यता प्राप्त संघ को प्रतिष्ठान के परिसर में सूचना पट्ट लगाने का अधिकार होगा। इस दिशा में नियोजक से मदद करने की अपेक्षा की जाती है। उस पर समयानुसार नियोजिती को आवश्यक बातों की जानकारी कराने के उद्देश्य से सूचनाएं लिखी या चिपकायी जा सकती है। सूचना पट्ट लगाने के लिए नियोजक की बाध्यता है। कोई मीटिंग बुलाने, वार्षिक आय-व्यय का विवरण देने, तथा किसी मामले पर सदस्यों की सहमति लेने या किसी समझौते के लिए सहमति लेने या सम्पन्न समझौते की जानकारी देने, हड़ताल के आह्वान के निमित्त उसका प्रयोग किया जा सकता है। उस पर अभद्र, अनैतिक एवं उत्तेजक बातों को लिखना उचित नहीं होगा।

8. सदस्यता-शुल्क प्राप्त करने का अधिकारः संघ के सदस्यों से सदस्यता-शुल्क वसुल करने का संघ को अधिकार होता है। इसके अधिकृत अधिकारी स्थापन के अन्दर भी समयानुसार वसूली कर सकते हैं। प्रत्येक सदस्य, संघ शुल्क 25 पैसा प्रतिमास देगा।

9. संघ के प्राधिकारी किसी भी उचित समय पर कार्य किए जाने वाले स्थान का निरीक्षण एवं अवसरानुकूल कर्मकारों से पुच्दा और कोई आवश्यक जानकारी हासिल कर सकते हैं।

10. कोई भी फेडरेशन जो संघों के समामेलन से अस्तित्व में आया है, अपने प्रतिनिधिमण्डल को किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन में भेज सकता है। उसके निर्णय एवं सुझावों को अपने यहां क्रियान्वित कराने के प्रयास तथा सरकार एवं नियोजकों का ध्यान उस आरे आकृष्ट कर सकते हैं।

11. कानून की निगाह में संघ एक वैधानिक समवाय (legal entity) माना जाता है, इसलिए वह अपने नाम में वाद प्रस्तुत कर सकता है, या उसके नाम से उसके खिलाफ वाद लाया जा सकताहै। संविदा में प्रवेश करते समय उसे अपनी सीलमुहर के प्रयोग का अधिकार होगा।

12. मान्यता प्राप्त संघ अपने सदस्यों को आर्थिक लाभ पहुंचाने की द ष्टि से किसी भागीदारी में भागीदार होकर लाभार्जन के लिए प्रयत्नशील हो सकता है।

13. संघ अपने नाम को परिवर्तित करने का भी अधिकार रखता है। लेकिन इसके लिए तभी कदम उठाया जाएगा, जब कुल सदस्य-संख्या के 2/3 सदस्य उसके पक्ष में हों। वह अपने कार्यालय को भी स्थानान्तरित कर सकता हैं किसी भी परिवर्तन की सूचना देना अनिवार्य है। धारा 12 में किसी भी ऐसे परिवर्तन की सूचना 14 दिनों के अन्दर रजिस्ट्रार के पास भेजना अनिवार्य है।

14. समामेलन तथा एकीकरण का अधिकार (Merger and amalgamation): एक संघ दूसरे संघ में मिल सकता है। चाहे अपना पूरा अस्तितव (Identity) खोकर या कुछ अधिकार को रखते हुए। इस प्रकार के समामेलन के लिए सभी सदस्यों की एक साधारण सभा में 60 प्रतिशत बहुमत से प्रस्ताव पारित होना आवश्यक है। प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेज दी जाएगी। (देखिए धारा 24)

15. सामूहिक सुधार की दिशा में संघ अपनी योजनाओं का प्रारूप तैयार और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए प्रयत्न कर सकता है। विदेशों के संघों के समान अपने देश के संघ आर्थिक द ष्टि से सम द्ध तो नहीं हैं। फिर भी यहां के संघों में से कुछ संघों ने प्रशंसनीय कार्य किए हैं और आशा है कि भविष्य में भी इसी प्रकार का प्रयास करके वे मार्ग-दर्शन करते रहेंगे। धनाभाव के कारण श्रमिक संघों द्वारा किए गए कल्याण कार्य का क्षेत्र बहुत सीमित रहा है। फिर भी कुछ संघों ने जैसे अहमदाबाद टेक्सटाइल श्रमिक संघों द्वारा किए गए कल्याण कार्य का क्षेत्र बहुत सीमित रहा है। फिर भी कुछ संघों ने जैसे अहमदाबाद टेक्सटाइल श्रमिक संघ, मजदूर सभा कानपुर तथा मिल मजदूर संघ इन्दौर ने सराहनीय कार्य किया हैं इस सम्बन्ध में अहमदाबाद संघ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं वह संघ अपनी आय का 60 प्रतिशत तक अर्थात् 40,000 रुपया कल्याण-कार्यों पर व्यय करता है। इस कल्याण कक्ष, वाचनालय तथा पुस्तकालय, शारीरिक शिक्षा एवं समाज केन्द्र, व्यायामशालाएं आदि बनाई गई हैं। बाल केन्द्र भी खोले गए हैं। श्रमिक बस्तियों में चिकित्सालय, एक प्रसूति ग ह (Maternity home), कर्मचारी सहकारी उपभोक्ता संघ की स्थापना की गई है। कानपुर की मजदूर-सभा वाचनालय, पुस्तकालय तथा चिकितसालय कर्मकारों के हितों के लिए चलाती है।

16. संघ त्रिपक्षीय समिति (Tripartite Committee): उत्पादन, कल्याण, कैन्टीन, आवास-आपूर्ति (Allotment) कमिटी के लिए तथा ग्रीवेन्स कमिटी और संयुक्त प्रबन्ध समिति में भी अपने प्रतिनिधि नामिक कर सकता है। आय नीति-निर्धारक विषय में भी उन्हें भेजा जा सकता है। अमेरिका में संघों के नीति-विषयक मामलों मे अधिक हिस्सा बंटाने की सिफारिश की गई है, ताकि कर्मकार यह शिकायत करने का अवसर न पा सकें कि नियोजकों की नीति उनके हितों के बिल्कुल प्रतिकुल पड़ती है। इसके लिए सुझाव दिया गया है - "One possible procedure might be the inclusion of union representatives with voting rights in an institutionalized body with authority to decide questions of professional policy." इतना ही नहीं यूरोप की बहुत सी यूनियनें बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स में भी अपना प्रतिनिधि रखने पर जोर देती हैं।

अध्याय-13
संगठित मजदूरों की समस्याएं

(Problems of Organised Workers)

श्रम शक्ति किसी भी समाज का भौतिक आधार होती हैं भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में श्रम समस्याएं अनेक एवं कठिन हैं, औद्योगिक क्षेत्र में श्रम-समस्याएं अधिक और पेचीदी हैं जबकि देश की सम द्धि काफी हद तक औद्योगिक प्रगति पर निर्भर करती है। इस प्रकार श्रम-समस्याओं का प्रभाव न केवल उत्पादन प्रक्रिया तक सीमित है परन्तु ये समाज के हर वर्ग एवं पक्ष को प्रभावित करती है। वास्तव में श्रम समस्याएं सहयोग की कमी के कारण उत्पन्न होती हैं क्योंकि प्रबंध और मजदूरों को एक साथ काम करना होता है और दोनों का उद्देश्य भी उत्पादन के लक्ष्यों का प्राप्त करना है परन्तु यदि इस प्रक्रिया में सहयोग की कमी पाई जाए तो श्रमिक समस्याएं जन्म ले लेती है औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप हमारे समाज के मूलभूत परिवर्तन आए। भारत में भी औद्योगीकरण, वाणिज्यकरण और बाजार अर्थव्यवस्था के आगमन से श्रम विभाजन और व्यवसाय की प्रकृति में परिवर्तन आए है। इससे व्यक्ति अपनी रूढ़िवादी हुनर से अलग हो गया है। इस के परिणाम स्वरूप कई समस्याओं न जन्म लिया है जैसे बेरोगारी, समाजिक सुरक्षा, औद्योगिक सम्बन्ध आदि।

इस अध्याय में केवल संगठित मजदूर वर्ग की कुछ मुख्य समस्याओं का वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित हैः

1. **श्रम कल्याण की समस्या (Problem of Labour Welfare):** भारत के मजदूर रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों में पलायन करते है। वहां पर बिना कल्याण उपयों के नए वातावरण में अपने आप को ढ़ालना मुश्किल होता है। भारत में विभिन्न श्रम कल्याण विधान के पश्चात भी वास्तव में उनके कल्याण के लिए कोई ठोस कार्य नहीं किए गए है। काफी हद तक तो श्रम कल्याण कानूनों को लागू करने में सरकार तथा उद्योगपतियों ने उदासीनता दिखाई है। जिनके कारण आवास, यातायात, स्वास्थ्य, कैन्टीन, सहकारिता, शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि सुविधाएं संगठित क्षेत्र के मजदूरों को प्रदान नहीं की जा सकी है।

2. **मजदूरी की समस्या (Problem of Wages):** उत्पादन के लिए मजदूरों को दिया जाने वाला पैसा मजदूरी कहलाता है। वास्तव में मजदूरी एक मौलिक विषय है जिसके चारों और लगभग अन्य श्रम समस्याएं घूमती है। मजदूरी उद्योगपति के लिए लागत तथा मजदूर के लिए आय का साधन है। मजदूर की कुशलता काफी हद तक इस पर निर्भर करती है। भारत में मजदूरों को बहुत कम मजदूरी दी जाती है जिससे उनका गुजारा नहीं होता। लगभग 90% उद्योग शहरों में स्थित है और मजदूरों ने ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन किया है जिससे सुखद जीवन व्यतीत करना मुश्किल हो जाता है क्योंकि कम वेतन में वह गुजारा नही कर पाता। उसके पास आवास की सुविधा नहीं है और मजदूरों का बड़ा हिस्सा मकान के किराए देने में खर्च हो जाता है।

   इसके अतिरिक्त एक जगह से दूसरी जगह एक उधोग से दूसरे उधोग में मजदूरी में भिन्नता पाई जाती है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के पास होने के बावजूद भी मजदूरी में हर राज्य में भिन्नता है। वास्तव में इन कानूनों को लागू नही किया जा सका है और संगठित क्षेत्र में कुछ उधोगों में न्यनूतम मजदूरी नहीं दी जाती। क्योंकि राज्य सरकारें समय-समय पर न्यूनतम मजदूरी तक करती रहती है।

3. **श्रम सघो की समस्या (Problem of Trade Unions):** श्रम संघों का मुख्य कार्य सामूहिक सौदेबाजी को बनना है इसके अतिरिक्त मजदूरों के अधिकारों के प्रति उन्हें सचेत करना है तकि वे बेहतर मजदूरी, कार्य दशाए, सुरक्षा आदि की मांग कर सके। भारत में श्रम रोजगार संघों की सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति काफी हद तक कमजोर है। इसका

कारण है सभी मज़दूर इन संघों के सदस्य नहीं बनते, छोटे-छोटे श्रम संघों की संख्या अधिक है और वे एक दूसरे का विरोध करते रहते हैं। परिणामस्वरूप वे प्रबंध के साथ प्रभावशाली रूप से सौदेबाजी नहीं कर पाते और कम मजदूरी, खराब कार्यदशाएं और मजदूरों को बदतर कल्याणकारी उपाय का सामना करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त श्रम संघों की वित्तिय हालत खराब है और जो पैसा इकट्ठा किया जाता है लगभग उस मुकदमेंबाजी पर खर्च कर दिया जाता है।

भारत में महिलाएं श्रम संघों में भागीदारी कम करती है जिसके कारण उनकी समस्याएं प्रबंध के सामने नही रखी जाती।

श्रम संघों का नेत त्व आन्तरिक न होकर किसी न किसी राजनैतिक दल के साथ जुड़ा हुआ है। जो अपने हिसाब से हड़ताल और आंदोलन आदि का फैसला करते है। मजदूरों का हित उनके लिए गौण होता है।

कुल मिलाकर मजदूर श्रम संघों की भूमिका से अपना विश्वास खो चुके है।

4. **सामाजिक सुरक्षा की समस्या (Problem of Social Security):** सामाजिक सुरक्षा एक कल्याणकारी राज्य ओर सामाजिक न्याय का प्रतीक है औद्योगिक जीवन में काफी खतरे है जिनका मजदूरों का सामना करना पड़ता है उदाहरणतया बेरोजगारी, अल्पकालीन अयोग्यता, बीमारी, म त्यु आदि। आज के भीड़भाड़ से भरे औधोगिक क्षेत्र में बीमारियां अधिक होने लगी है। बाल मजदूर, महिला मजदूर, जुआ, गरीबी/कर्जा आदि की काफी समस्याएं है औधोगिक दुर्घनाएं भी बढ़ी है।

इन सब समस्याओं के मध्य नगर सामाजिक सुरक्षा का महत्व अत्यधिक हो जाता है। परन्तु कुछ उद्योगों में अयोग्यता बीमा, बीमारी एवं दुर्घटना बीमा, प्रसूतिकाल सुरक्षा, बुढ़ापा सुरक्षा आदि के प्रावधान किए है, सरकार ने इस सम्बन्ध में अनेक अधिनियम बनाए है परन्तु इनका क्रियान्वन काफी धीमा है। निजी क्षेत्र में उधोगपति इस प्रकार के कानूनों की अनदेखी करते है। सरकार की निरीक्षण मशीनरी अपर्याप्त एवं भ्रष्ट है।

5. **मजदूरी की प्रवासीय समस्या (Migratory Problem of Wokers):** मजदूरों का एक बड़ा हिस्सा किसी भी व्यवसाय एवं स्थान पर स्थिर नहीं रहता जिसके कारण वे किसी भी श्रम, संघ की सदस्यता, श्रम कानून का लाभ आदि नहीं उठा पाते। वे शहर से बहार गांवों में रहते है ताकि जीवन यापन कीमत कम आए। उनमे अपने अधिकारों के प्रति चेतना, अपनो बुरी हालत के लिए प्रबंध वार्तालाप करना आदि से वास्ता नही होता।

जो मजदूर शहरों में या इनकी परिधि-पर रहते है उन्हें नागरिक सुविधाएं जैसे पीने का पानी, सीवरेज, पार्क, पक्की सड़के एवं यातायात की सुविधाएं नहीं मिल पाती। प्रदूषण भी बढ़ता है।

6. **गैरहाजिरी एवं व्यवस्था बदलने की समस्या (Problem of Absentum and Turnover):** भारत में मजदूरों में गैरहाजिरी एवं व्यवस्था बदलने की गम्भीर समस्या है इसके काफी कारण है जैसेः

   (i) बीमारी

   (ii) शिफ्ट प्रणाली

   (ii) ग्रामीण मजदूर

   (iv) औधोगिक दुर्घटनाएं

   (v) बुरी आदते

   (vi) गैर जिम्मेदाराना व्यवहार

   (vii) खराब कार्य-दशाएं आदि

गैरहाजरी के कारण उननकी माणिक मजदूरी काफी कम होजाती है व्यवसाय बदलने के कारण उनके कार्य में ब्रेक आ जाता है और निरन्तरता नहीं रहती इसका उत्पादन एवं मजदूरी पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7. **अशिक्षा को समस्या (Problem of ulitray):** मजदूरो की बड़ी संख्या आज भी शिक्षा जगत से काफी दूर है। उनके बच्चों को स्कूल में नही भेजा जाता। शिक्षा के अभाव में अज्ञानता, रूढ़िवाद, अन्यविश्वास आदि की समस्याएं पनपती

है और शोषण के आसार बढ़ जाते है। अशिक्षित मजदूर वर्ग श्रम विधान, सरकारी श्रम नीति एवं कार्यक्रमों को समझने में असक्षम होते है और वे अपनी दशा को सुधारने के लिए कभी ठोस कदम नहीं उठा पाते।

आज के तकनीकी युग में अशिक्ष्ज्ञित मजदरू के रोजगार का दायरा सिमट रहा है और तकनीकी मजदूरो की मांग बढ़ रही है।

अशिक्षित मजदूर वर्ग अपने रहन-सहन, परिवारिक जीवन और सामुदायिक जीवन को अच्छी प्रकार बसर नहीं कर पाते और उनका जीवनस्तर निम्न हो कर रह जाता है।

8. **श्रम विधानों का अप्रभावकारी क्रियान्वन (Poor Implementation of Labour Registrations):** भारतीय सरकार और राजय सरकारों ने विभिन्न श्रम विधान पास किए है। परन्तु इन्हें प्रभावशाली रूप से लागू करने में ये सरकारें असफल रही है जिसके कारण खराब कार्य दशाए, मजदूरों का शोषण, श्रम कल्याण सुविधाओं को कमी आदि समस्याएं विराजमान है। परन्तु विकसित देशों ने इन विधानों को सख्ती से लागू किया है और ये औधोगिक जीवन का अंग बन गए है।

9. **शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण की कमी (Lack of Educational and Training Facilities):** व्यस्क शिक्षा की सुविधा को छोड़कर मजदूरों को अन्य मौलिक शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों वंछित रहना पड़ता है। यहां पर व्यवसायिक प्रशिक्षण मजदूर एवं उसके परिवार के सदस्यों को नहीं दिया जाता। उचित प्रशिक्षण के बिना तकनीकी विकास के युग में कार्य करना खतरे से खाली नहीं और मजदूरों का मानसिक विकास भी नहीं हो पाता।

इस प्रकार संगठित क्षेत्र में भी मजदूरों की अनेक समस्याए है इन्हें दूर करने के लिए कुछ सुझाव दिए जा सकते है जैसे सामाजिक सुरक्षा और श्रम कल्याण विधानों को सख्ती से लागू करना, श्रम सधो को शक्तिशाली बनाना, बेहतर कार्य दशाए स्थापित करना, उचित मजदूरी का प्रावधान, अनुचित प्रथाएं बंद करना, शिक्षा तथा प्रशिक्षण सुविधाओं को बढ़ाना आदि शामिल हैं।

भारत में असंगठित कामगारों की समस्याएं
(Problems of Unorganised Workers in India.)

असंगठित कामगारो का आशय उन कामगारों से है जो कारखाना अधिनियम की परिधि में नही आते हैं। इसके दायरे में आने वाले प्रमुख वर्ग निम्नांकित हैः

1. ठेके का श्रम जिसमें भवन निर्माण में लगे हुए श्रमिक शामिल हैं।
2. आकस्मिक श्रम।
3. कुटीर एवं लघु स्तरीय उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक।
4. हथकरघा एवं शक्ति करघा उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक।
5. बीड़ी व सिगार उद्योग के श्रमिक।
6. दुकानों व व्यापारिक संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिक।
7. मेहतर व सफाई करने वाले श्रमिक।
8. चर्म शोधन कारखानों के श्रमिक।
9. आदिवासी श्रमिक।
10. अन्य प्रकार के असंगठित श्रमिक।

असंगठित उद्योगों में संलग्न श्रमिको की सही संख्या उपलब्ध नहीं है क्योंकि इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक व विस्त त है। श्रम जांच आयोग के अनुसार इस उद्योगों में अनुमानतः 10 लाख श्रमिक संलग्न हैं। आधुनिक अनुमान के अनुसार 1984 में असंगठित क्षेत्र में रोजगार में लगे व्यक्तियों की संख्या 78.8 मिलियन थी जो देश की कार्यशील जनसंख्या का 30% थी। एक अन्य अनुमान

के अनुसार कुल मिलाकर असंगठित उद्योगों में श्रमिकों की संख्या लगभग 2 करोड़ आंकी गई है।

ठेका श्रम (Contract Labour): ठेके के श्रम को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- व श्रमिक जो किसी कार्य के ठेके के अंतर्गत काम पर लगाए जाते है तथा अन्य जो श्रमिकों के लिए टेकों के अंतर्गत काम पर लगाए जाते हैं।

आकसिम्क श्रम (Casual Labour): रेल उद्योग, इंजीनियरी उद्योग तथा सार्वजनिक निर्माण विभागों में आकस्मिक श्रमिक अनुपस्थितता के कारण रिक्त स्थानों को भरने तथा काम में अस्थायी व द्धि के कारण रोजगार में लगाए जाते हैं। अनेक प्रकार के कार्यों में आकस्मिक श्रम की नियुक्ति आवश्यक समझी जाती है।

लघु उद्योगों में श्रमिकों को रोजगार (Labour in Small Scale Industries): लघु उद्योगों के विकास के साथ-साथ इन उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही है। हथकरघा व शक्ति करघा उद्योगों में लगभग 30 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त है। बीड़ी उद्योग में लगभग 10 लाख श्रमिक काम करते हैं। भारत में श्रमिकों की एक बड़ी संख्या दुकानों और व्यवसायिक प्रतिष्ठानों, नगर महापालिकाओं आदि में काम करती है। जलपानग हों व सिनेमाग हों में लगभग 50 लाख श्रमिक कार्यरत हैं।

उक्त आधार पर असंगठित क्षेत्र के कामगारों की समस्याओं को निम्नलिखित चार भागों में बांटा जा सकता हैः

1. **मजदूरी सम्बन्धी समस्याएं (Problems Relating to Wages):** मजदूरी वह धुरी है जिस पर अधिकांश श्रम समस्यायें चक्कर काटती है। मजदूरी ही श्रमिक के जीवन-निर्वाह का मुख्य स्रोत होती है। श्रमिक की कार्यक्षमता अधिकाशतः उसको दी जाने वाली मजदूरी पर ही निर्भर करती है। किन्तु नियोक्ता और श्रमिक मजदूरी को अलग-अलग द ष्टि से देखते हैं और इसके महत्व को मापने के लिए दोनों के पास पैमाने भी अलग-अलग हैं। विभिन्न समयों, विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न उद्योगों मे मजदूरी की दरों में भिन्नता पाई जाती है।

   भारत में मजदूरी की दर अत्यधिक नीची है। अधिकांश श्रमिकों को जीवन-निर्वाह से भी कम पुरस्कार मिलता है। विभिन्न प्रयासों के बावजूद देश में मजदूरी का स्तर निम्न ही बना हुआ है।

2. **संघवाद सम्बन्धी समस्याएं (Problems Relating to Trade Unionism):** सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से श्रमिक उत्तम मजदूरी, उत्तर कार्य दशाएं, उचित काम के घण्टे, रोजगार की सुरक्षा आदि की मांग करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की स्थापना संघवाद का ही चरम परिणाम है। संघवाद का अध्ययन श्रम अर्थशास्त्र व श्रम समस्याओं के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। भारत में उद्योग, परिवहन, खनन, बागान व वाणिज्यिक संस्थानों में संगठित श्रम पाया जाता है जबकि कृषि क्षेत्र में श्रमिक असंगठित रह गया है।

   आधुनिक समय में सामूहिक सौदेबाजी व औद्योगिक प्रजातंत्र की समस्या अत्यकिध जटिल हो गई है और इसलिए समस्याओं के वास्तविक समाधान के सम्पूर्ण प्रयास असफल हो जाते हैं। अतः हड़तालें व तालेबन्दियां सामान्य क्रम बन गए हैं।

3. **रोजगार की सुरक्षा से सम्बन्धिता समस्याएं (Problems Relating to the Security of Employment):** आधुनिक युग में बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी और प्रछन्न बेरोजगारी की व्यापक समस्या पाई जाती है। बेरोजगारी ही सामाजिक दोष एवं शोषण का प्रमुख स्रोत है। अतः रोजगार की असुरक्षा, श्रमिक के परिवार के भविष्य, बालकों की शिक्षा एवं पारिवारिक कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी के कारण श्रमिक बुरी आदतों का शिकार होते हैं और उनकी प्रतिभाएं कुण्ठित हो जाती हैं। आज रोगजार की असुरक्षा के लिए निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैंः

   (i) जनसंख्या में तीव्र व द्धि;

   (ii) ग्राम उद्योागें की उपेक्षा;

   (iii) औद्योगीकरण की धीमा प्रगति;

   (iv) आधुनिक तकनीकी का प्रयोग;

   (v) विवेकीकरण;

(vi) सामाजिक गतिशीलता में व द्धि; तथा

(vii) जनसंख्या का विस्थापन।

4. **सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी समस्याएं (Problems Relating to Social Security):** सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत 'सामाजिक बीमा' और 'सामाजिक सहायता' की योजनाएं आती हैं। आधुनिक लोकतान्त्रिक कल्याणकारी राज्य में समाज (राज्य) से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने प्रत्येक सदस्य को सुरक्षा प्रदान करेगा। बेरोजगारी, औद्योगिक दुर्घटनाएं औद्योगिक बीमारियां, व द्धावस्था, हड़तालें तालेबन्दी आदि अनेक ऐसे दोष हैं जो ऋणग्रस्तता, अकार्यकुशलता, उत्पादकता का ह्रास, जीवन स्तर में गिरावट जैसी समस्याओं को जन्म देते हैं। अतः समाज में शान्ति, सम द्धि एवं स्थिरता के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना एक अनिवार्यता है। ऐसी व्यवस्था अवांछित व्ययों को कम करेगी, समाज के सम्भाव्य श्रमिकों को बचाएगी, उन्हें भौतिक एवं मानसिक राहत देगी तथा सामाजिक एवं नैतिक दोषों को घटाएगी। सामाजिक सुरक्षा के अभाव में श्रम समस्याएं बढ़ेगी; अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाएगी और समाज विघटित होने लगेगा।

डेलयोडर ने श्रम समस्याओं का निम्न प्रकार वर्गीकरण किया है:

(i) श्रमिक के विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाली समस्याएं जैसे निम्न जीवन-स्तर, निम्न कार्य-कुशलता, अशिक्षा, ऋणग्रस्तता आदि।

(ii) श्रम शक्ति के सही उपयोग में बाधा डालने वाली समस्याएं जैसे-बेरोजगारी, अनुपस्थितता व श्रम प्रवर्त्तन, औद्योगिक संघर्ष आदि।

(iii) श्रमिक को सामाजिक कार्यों में भाग लेने में बाधा डालने वाली समस्याएं जैसे कर व अधिनियम।

ड्राफ्टी के अनुसार, ''श्रम समस्या एक मानवीय समस्या है जो कि उस समय उत्पन्न होती है जबकि व्यक्ति आर्थिक उपक्रमों में भाग लेने के परिणामस्वरूप सुख व सम द्धि प्राप्त करने में असफल रहते हैं। वह उस समय भी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपने को दूसरे सम्बन्धित वयक्तियों व समूहों से समायोजित नहीं कर पाते अथवा उद्योग के अनुकूल अपने को नहीं बना पाते।''

श्रम समस्याएं उत्पन्न होने के कारण
(Causes of Labour Problems)

श्रम समस्याओं के अभ्युदय का प्रमुख कारण निम्नांकित हैं:

1. **आर्थिक कारण (Economic Causes):** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रम नियोक्ता के मध्य संघर्ष बना रहता है। इसका प्रमुख कारण दोनों के आर्थिक हितों में परस्पर टकराव का पाया जाना है। इस टकराव के मुख्य कारण हैं: (i) मजदूरी की दर का न्यायोचित ढंग से निर्धारित न होना; (ii) एकाधिकारिक प्रभावों के कारण मजदूरी की दरों का निरन्तर परिवर्तित होते रहना; (iii) नियुक्ति के समय श्रमिक को कार्य करने की दशाओं, कार्य के घण्टे, औद्योगिक प्रबन्ध तथा श्रमिकों के प्रति व्यवहार आदि का ज्ञान न होना; (iv) नियोक्ताओं को श्रम की कार्य-कुशलता व गुणों का ज्ञान न होना; (v) लाभांश को निरन्तर बढ़ाने की प्रव त्ति और इसलिए श्रमिकों का शोषण; (vi) श्रमिकों से निर्धारित अवधि से अधिक काम लेना।

उपर्युक्त घटक श्रमिकों व नियोक्ताओं के मध्य संघर्ष बढ़ाते रहते हैं।

2. **मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes): श्रमिक**-नियोक्ता संघर्ष के लिए कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी उत्तरदायी होते हैं। श्रमिक एक सजीव प्राणी है और समाज में रहता है। उसे न केवल पेट भरने के लिए रोटी चाहिए अपितु सामाजिक सम्मान भी चाहिए। वह चाहतास है कि समाज उसे औद्योगिक प्रगति का एक महतवपूर्ण एवं उपयोगी अंग समझे। वह औद्योगिक जन-तन्त्र में विश्वास करता है। किन्तु आधुनिक युग में मानवीय सम्बन्धों की समस्या अधिक उग्र होती जा रही है। इसके प्रमुख कारण हैं: (i) स्वचालन व यन्त्रों का अत्यधिक प्रयोग; (ii) कार्य की निरसता एवं श्रमिकों के उत्तरदायित्व एवं सम्मान का ह्रास; (iii) श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के कारण श्रमिकों का अनेक

वर्गों में विभाजन; (iv) विभेद भावना का उदय।

3. **सामाजिक कारण (Social Causes):** सामाजिक घटक भी श्रम समस्याओं को बढ़ाने के लिए उत्तरदायी रहे हैं। ये कारण अग्राकित हैं: (i) कुटीर एवं लघु उद्योगों का ह्रास; (ii) पूंजी का संकेनद्रण, पूंजीपतियों की संख्या में कमी तथा श्रमिकों की संख्या में व द्धि; (iii) श्रम व पूंजी की एक-दूसरे के प्रति अज्ञानता; (iv) उत्पादक संघों का निर्माण आदि।

4. **राजनीतिक कारण (Political Causes):** एक उद्योग का प्रबन्ध उद्योग-पति अथवा प्रबन्धकर्त्ताओं द्वारा किया जाता है। ये उद्योगपति तथा प्रबन्धक श्रमिकों की अपेक्षा अधिक बलशाली होते हैं। वे अपनी सुविधानुसार श्रमिकों की भर्ती करते हैं और जब चाहें उनकी छंटनी कर देते हैं। वे श्रमिकों को औद्योगिक प्रबन्ध में थोड़ा सा भी भाग नहीं देना चाहते। इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि आधुनिक प्रजातान्त्रिक युग में श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक जागरूक हो गया है। वह श्रम प्रबन्ध में अधिकाधिक भाग लेना चाहता है। इस उद्देश्यों की पूर्ति हेतु श्रम संगठनों की स्थापना पर अधिक बल दिया जाता है।

क्या श्रम समस्याएं प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था में विद्यमान रहती है?
(Are the Labour Problems Present in Every Economic System)

श्रम समस्याओं का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोष रूप से श्रमिकों से होता हैं प्रश्न यसह है कि क्या ये श्रम समस्याएं सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में होती हैं अथवा नहीं। आर्थिक प्रणाली की द ष्टि से अर्थव्यवस्था को दो भागों में बांटा जा सकता है: (i) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तथा (ii) समाजवादी अथवा नियन्त्रित अर्थव्यवस्था।

समाजवादी विचारकों के अनुसार श्रम समस्याएं केवल पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में ही जन्म लेती हैं। इसका कारण यह है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था 'निजी सम्पत्ति', 'उत्तराधिकार के नियम', 'लाभ की भावना', 'एकाधिकारिक प्रव त्ति' आदि पर आधारित है। इस व्यवस्था में उद्योगपति का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए वह श्रमिकों को कम मजदूरी देता है और अधिक काम लेता है, बाल एवं महिला श्रम को काम पर लगाता है।

समस्याओं के समाधान के प्रयत्न
(Efforts to Solve the Problems)

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् औद्योगिक विकास के फलस्वरूप असंगठित क्षेत्र के उद्योगों में रोजगाररत श्रमिकों की संख्या में अभूतपूर्व व द्धि हुई। 1980 में उनकी अनुमानित संख्या 70,04 लाख थी। असंगठित श्रम से तात्पर्य उन श्रमिकों से है जो असंगठित अथवा अनियमित उद्योगों में कार्य करते हैं एवं जो अपने सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वयं को संगठित नहीं कर सके हैं क्योंकि उनका रोजगार आकस्मिक प्रकृति का है, उनमें निरक्षरता एवं अज्ञानता है, जिन प्रतिष्ठानों में वह कार्यरत है उका र्काकारी निवेश अति निम्न है एवं उनका आकार भी छोटा है, उनके प्रतिष्ठान केंद्रीकृत न होकर छितरे हुए हैं, तथा उनके नियोक्ताओं अथवा सामुहिक की शक्ति श्रेष्ठ है। असंगठित श्रमिकों की वास्तविक संख्या उपलब्ध नहीं है परन्तु अनुमानतः उनकी संख्या दो करोड़ से अधिक होगी। इनमें आधे से अधिक (55%) अन्य कृषकों के खेतों में कृषक मजदूर है, 17% तक निर्माण (गैर उद्योगीय प्रतिष्ठानों एवं घरेलू उद्योग में स्वरोजगाररत), 13% सेवाओं (छोटे प्रतिष्ठानों द्वारा वैयक्तिक सेवाएं एवं घर से बाहर स्वरोजगाररत अथवा व्यक्तियों द्वारा नियुक्त घरेलू कर्मचारी), 1.5% निर्माण में एवं 2% यातायात एवं संचार में कार्यरत हैं। असंगठित श्रमिकों की इन विभिन्न क्षेत्रों की कुछ सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों की आय संगठित क्षेत्र में उनके साथियों की तुलना में न केवल सापेक्षतया कम है अपितु अनेक बार तो इतनी कम होती है कि वे जीवन स्तर के न्यूनतम निर्वाह योग्य भी नहीं होतीं। कुछ मामलों यथा कृषि एवं निर्माण में सारा वर्ष रोजगार न मिलने के कारण संपूर्ण आय और भी अधिक कम हो जाती है।

2. उन्हें काम की सुरक्षा प्राप्त नहीं होती क्योंकि उनके रोजगार का स्वरूप अस्थायी है जैसा कृषि एवं निर्माण में। यद्यपि वे निर्माण एवं सेवाओं संबंधी रोजगारों में अधिकांश समय तक कार्यरत रहते हैं परन्तु नियोक्ता द्वारा उन्हें किसी भी समय निकाला जा सकता है।

3. वे सरकार द्वारा प्रदत्त सामान्य कल्याण संबंधी कुछ सुविधाओं का लाभ नहीं उठा सकते। उदाहरण तथा नगर के सुसेवित क्षेत्र में आवास न पा सकने के कारण वे सार्वजनिक सुविधाओं यथा सड़कों, बिजली, पेयजल, स्कूल एवं अस्पताल सेवा का लाभ नहीं उठा सकते, एवं उन्हें सहायता प्रदत्त आवास स्कीमों का लाभ भी उपलब्ध नहीं होता।
4. वे अपने वेतन तथा कार्यदशाओं को सुरक्षित करने हेतु संघों में संगठित नहीं होते, अतएव उन्हें श्रम बाजार के उतार-चढ़ाव पर आश्रित रहना पड़ता है जो सामान्यतया उनके विपरीत चलता है।
5. वे श्रम संबंधी अधिनियमों से प्रशासित नहीं होते क्योंकि ऐसे अधिनियम उन प्रतिष्ठानों जहां वे कार्यरत हैं, पर लागू नहीं होते। अतएव, उनके वेतन एवं कार्य दशा सुरक्षित नहीं होती एवं उन्हें चिकित्सा देखभाल, दुर्घटना प्रतिपूर्ति लाभांश, वेतन सहित अवकाश एवं सेवा निव त्ति लाभों का लाभ प्राप्त नहीं होता।

इस प्रकार, असंगठित श्रमिक अनेक गंभीर हानियों से पीड़ित हैं। यद्यपि सरकार उनके लिए कल्याण उपायों की वयवस्था करने हेतु चिंतित है परन्तु इन उपायों को क्रियान्वित करने में मुख्यतः प्रशासकीय कठिनाइयों के कारण ऐसा नहीं कर पा रही है। प्रथमतया, असंगठित श्रमिकों की संख्या इतनी विशाल एवं विभिन्न श्रेणियों की है कि इसका प्रबंध कठिन है, द्वितीय नियोक्ता श्रमिकों को प्रस्तावित लाभों के व्यय को वहन कर सकते की स्थिति में नहीं हैं जिसका परिणाम इन श्रमिकों की सेवा से छुट्टी हो सकती है, त तीय, कुछेक कल्याणकारी उपाय जो अंशदायी हैं यथा अंशदायी बीमा योजना, भविष्य निधि योजना आदि के प्रशासन में कठिनाई होगी क्योंकि कुछ कार्य आकस्मिक जैसे कृषि एवं निर्माण कार्य।

इन कठिनाइयों की वास्तविकता से इंकार नहीं किया जा सकता, तदपि असंगठित श्रमिकों को एक से अधिक ढंग से, कम से कम अनियमति उद्योगों में, सहायता प्रदान की जा सकती है। निर्माण उद्योग अपनी पूंजी पर लाभ अर्जित करता है, अतः यह श्रम कल्याण उपायों का व्यय वहन करने की स्थिति में है। दूसरे, यदि अंशदान पर आधारित बीमा स्कीम तथा अन्य कल्याणकारी स्कीमों को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता क्योंकि नियोक्ता एवं कर्मचारी में अंशदान का सामर्थ्य नहीं होता तदपि कल्याण स्कीमों को सामाजिक सहायता के सिद्धांत पर क्रियान्वित किया जा सकता है जैसा समाज के विभिन्न वर्गों के लिए सामान्यतः किया जा रहा है। श्रमिकों को एक अलग वर्ग समझकर उन्हे सहायता दी जा सकती है। तीसरे, यद्यपि असंगठित श्रमिकों को लाभांश, सेवानिव त्ति लाभों तथा पदच्युति प्रतिपूर्ति के लाभ नहीं दिए जा सकते तदपि इन्हें आवास की सुविधाएं तथा बेरोजगारी भत्तों का लाभ दिया जा सकता है। अंतिमः, अनेक श्रमिक कुछ प्रतिष्ठानों यथा निर्माण, व्यापार, वाणिज्य एवं सेवा प्रतिष्ठानों में एक ही नियोक्ता के अधीन दीर्घकाल तक कार्य करते हैं, उनके लिए अंशदान बीमा नियम पर आधारित कल्याण उपायो को क्रियान्वित किया जा सकता हैं, उनके लिए अंशदान बीमा नियम पर आधारित कल्याण उपायों को क्रियान्वित किया जा सकता है।

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक बीमा/सामाजिक सहायता के आधार पर असंगठित श्रम के कुछेक क्षेत्रों में कल्याणकारी उपायों को एक अलग प्रशासकीय संरचना द्वारा क्रियान्वित किया जा सकता है। भारत सरकार एवं राज्य सरकारें श्रमिकों के इस शोषित भाग को कल्याणकारी सुविधाएं प्रदान करने हेतु वचनबद्ध हैं तथा कुदेक उपाय, जैसा नीचे वर्णित है, आरंभ भी कर दिए गए हैंः

कुछेक राज्यों में असंगठित श्रमिकों के लिए कल्याण लाभ
(Welfare Benefits for Unorganised Labour in Certain States)

कुछेक राज्य असंगठित श्रमिकों को किसी न किसी प्रकार के कल्याण लाभ दे रहे हैं। उदाहरणत, हरियाणा सरकार ने कृषि, दुग्ध एवं काश्त क्रियाओं में रोजगाररत श्रमिकों को दुर्घटना के विरुद्ध बीमा करने का निर्णय लिया है। 10 वर्ष से 65 वर्ष की आयु वर्ग के सभी पात्र इस परियोजना में सम्मिलित हैं तथा हरियाणा विपणन कृषि बोर्ड बीमा कंपनी को 4.8 लाख रुपए वार्षिक प्रीमियम के रूप में भुगतान करेगा।

इस स्कीम में किसी कृषक या कृषि मजदूर की कृषि यंत्रों, मशीनों एवं उपकरणों पर कार्य करते समय म त्यु अथवा विकलांगता को कवर किया गया है। जहां म त्यु अथवा विकलांगत नलकूप खोदने, गन्ना पीड़ने, फसल काटने अथवा बीनने के दौरान हो जाती है ऐसे मामले भी इस स्कीम में आते हैं। विद्युत प्रघात, अग्नि लगने अथवा कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पन्न दुर्घटना भी

इस स्कीम में सम्मिलित हैं। म त्यु की दशा में 15,000 रु. तथा गंभीर चोट अथवा दो अंग खोये जाने की दशा में 10,000 रु. प्रतिपूर्ति राशि दी जाएगी। अन्य प्रतिपूर्ति राशि शारीरिक हानि की गंभीरता पर निर्भर करेगी। अंगुली कट जाने पर कम से कम 1500 रु. दिए जाएंगे।

केरल सरकार ने निर्माण श्रमिकों एवं आबकारी श्रमिकों के लिए दो कल्याण कोष स्थापित करने का निर्णय लिया हौ। इन दो क्षेत्रों में श्रमिकों के लिए व द्धायु पेंशन, चिकित्सा सुविधा, आवास ऋण एवं म त्यु की दशा में सहायता की व्यवस्था की गई है।

अध्याय-14
भारत में औद्योगिक श्रमिकों की भर्ती
(Recruitment of Industrial Labours in India)

किसी भी उद्योग में श्रमिकों की नियुक्ति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या उनकी भर्ती की है। उद्योग व्यवसाय की सफलता बहुत बड़ी सीमा तक उन पद्धतियों पर निर्भर करती है जिन्हें श्रमिकों की भर्ती के लिए प्रयुक्त किया जात है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुभव से ही कार्य पर पाता है। अतः यदि काम पर योग्य, कुशल एवं कार्यक्षम श्रमिक की नियुक्ति की जाती है तो औद्योगिक उत्पादन एवं श्रमिक की कार्य-कुशलता में व द्धि होती है। इसके विपरीत, यदि कार्य के अनुकूल श्रमिकों की नियुक्ति नहीं की जाती तो उसका उत्पादन कार्य-कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विज्ञान, शिल्पकला और उत्पादन की आधुनिक विधियों के साथ ही अब तो इस बात की ओर भी अधिक आवश्यकता हो गयी है कि उद्योगों में योग्य, कुशल एवं निपुण श्रमिकों की ही नियुक्ति की जाये। अतः उद्योगों में जिस श्रमिक की नियुक्ति की जाये वह ऐसा होना चाहिये जो अपने कार्य के लिए पूर्णतः योग्य तथा अनुकूल हो। किसी सिफारिश अथवा दबाव के अंतर्गत उसकी नियुक्ति नहीं की जानी चाहिये। ऐसा करने पर श्रमिक न केवल स्वयं अकुशल सिद्ध होगा अपितु वह उद्योग के अनुशासन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालेगा और अन्य श्रमिकों में निराशा तथा असन्तोष की भावना उत्पन्न कर देगा।

भारत में श्रमिकों की भर्ति करने की प्रणालियाँ
(Different Methods of Recruitment of Labour in India)

(i) **मध्यस्थों की भर्ती** (Recruitment Through Intermediaries)

(ii) **ठेकेदारों द्वारा भर्ती** (Recruitment Through Contractors)

(iii) **प्रत्यक्ष भर्ती पद्धति** (Direct Recruitment Method)

(iv) **श्रम संघों द्वारा भर्ती** (Recruitment Through Trade Unions)

(v) **श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती** (Recruitment Through Labour Officers)

(vi) **बदली प्रथा** (Badli System)

(vii) **श्रम सम्बन्धियों की नियुक्ति** (Recruiting the Labour Relations)

(viii) **रोजगार दफ्तरों द्वारा भर्ती** (Recruitment Through Employment Exchanges)

(i) मध्यस्थों की भर्ती
(Recruitment Through Intermediaries)

जब उद्योगपति प्रत्यक्ष रूप से श्रमिकों को काम पर न लगाकर इस कार्य के लिये किसी मध्यस्थ की सहायता लेता है और श्रमिक की नियुक्ति अथवा छंटनी का कार्य पूर्णतः मध्यस्थ पर छोड़ देता है तो यह विधि मध्यस्थों द्वारा भर्ती की विधि कहलाती है। औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक चरण से ही यह विधि प्रचलित रही है। आज भी संगठित और असंगठित दोनों प्रकार के उद्योगों में श्रमिकों से गाँवों में सम्पर्क बनाना और उनको गाँव से नगरों में लाने का काम अधिकतर मध्यस्थों पर निर्भर है।

मध्यस्थों को भारत के उद्योग धंधों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है; जैसे - जॉबर, कगांनी, सरदार, चौधरी, मुकद्दम, फोरमैन, मिस्त्री, ठेकेदार आदि बड़े-बड़े उद्योगों में मध्यस्थ, प्रधान मध्यस्थ और नारी मध्यस्थ भी, जिन्हे नायकिन या मुकद्दमिन कहते हैं। जो श्रमिक अनुभवी हो जाते है और मालिकों के कृपापात्र बन जाते हैं, उनको इस पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। श्रमिकों की नियुक्ति, प्रशिक्षा, पदोन्नति, बरखास्तगी, दण्ड, छुट्टी, ऋण आदि की व्यवस्था सभी प्रकार के कार्य मध्यस्थ करते हैं।

मध्यस्थों के कार्य

(Functions of the Intermediaries)

श्रमिकों की भर्ती एवं श्रम प्रशासन के संदर्भ में मध्यस्थों के कार्य निम्नांकित हैं -

1. आवश्यकता पड़ने पर योग्य एवं अनुकूल श्रमिकों को खोजना तथा उन्हें कारखाने में कार्य करने के लिए प्रेरित करना।
2. श्रमिकों की आवश्यकताओं तथा शिकायतों को सेवायोजकों तक पहुंचाना।
3. श्रमिकों की नियुक्ति, प्रशिक्षा, अवकाश, दण्ड व आवास आदि की व्यवस्था करना।
4. श्रमिकों के कार्य का पर्यवेक्षण करना।
5. आवश्यकता पड़ने पर श्रमिकों को ऋण उपलब्ध कराना।
6. कारखानों में अकुशल श्रमिकों की सहायता करना।
7. आवश्यकता पड़ने पर सरकार को भी श्रमिक उपलब्ध कराना।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के गुण

(Merits)

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं -

1. सेवायोजकों को सरलता से श्रमिक उपलब्ध हो जाते हैं।
2. ये मध्यस्थ प्रबंधक व श्रमिक के बीच महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं।
3. वे श्रमिकों पर उचित नियंत्रण रखने में समर्थ होते हैं।
4. जॉबर श्रमपूर्ति क्षेत्रों से निकट सम्पर्क बनाये रखते हैं।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोष

(Demerits)

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं-

1. **श्रमिकों का शोषण** - मध्यस्थ श्रमिकों का बहुत अधिक शोषण करते हैं। ये मिल मालिक के अत्यंत विश्वसनीय व्यक्ति होते हैं और उद्योगों ने श्रमिकों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा बर्खास्तगी इत्यादि इन्हीं व्यक्तियों की सिफारिश पर होती है। श्रमिकों की नियुक्ति अथवा पदोन्नति में इनका महत्वपूर्ण हाथ होने के कारण से श्रमिकों से रिश्वत (दस्तूरी) व बेगार लेते हैं। जो श्रमिक इन्हें रिश्वत नहीं देते, उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। स्त्रियों के साथ तो ये बहुत ही अभद्रतापूर्ण व्यवहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे श्रमिकों को दिये गये ऋणों पर ब्याज की ऊ ची दर वसूल करते हैं। शाही श्रम आयोग के अनुसार, "मध्यस्थ प्रणाली द्वारा श्रमिकों का आर्थिक शोषण होता है। उनका भविष्य मध्यस्थों की कृपा पर निर्भर रहता है। फलस्वरूप मध्यस्थ को प्रसन्न रखने के लिए गलत कार्य करने को भी बाध्य रहता है।"
2. **उत्पादन में कमी** - मध्यस्थ प्रणाली में श्रमिक का भविष्य मध्यस्थों की कृपा पर निर्भर रहता है। अतः वे काम की अपेक्षा मध्यस्थों को प्रसन्न रखने का अधिक प्रयास करते हैं। इसके अतिरिक्त मध्यस्थों द्वारा नियुक्त श्रमिक प्रायः उनके मित्र, संबंधी अथवा कुटुम्बी होते हैं अथवा उनकी नियुक्ति रिश्वत के आधार पर होती है। इस प्रकार उद्योगों में अकुशल अथवा अयोग्य व्यक्ति नियुक्त हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक ओर तो कुल राष्ट्रीय उत्पादन में कमी होती है और दूसरी ओर उद्योगपति के लाभ कम हो जाते हैं।

3. **श्रमिक तथा सेवायोजकों में संघर्ष** - मध्यस्थों द्वारा औद्योगिक सम्बन्धों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मध्यस्थ अनेक अवसरों पर गलत ढंग से श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये अकसर झूठी शिकायतों व चुगली के द्वारा श्रमिकों व सेवायोजकों में अनावश्यक मतभेद उत्पन्न कर देते हैं। इसका कारण यह है कि भर्ती के समय श्रमिक व सेवायोजकों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं हो पाता।
4. **अनुपस्थितता एवं श्रम परिवर्तन में व द्धि** - इस प्रणाली के अंतर्गत अनुपस्थिता एवं श्रम परिवर्तन दोनों को ही प्रोत्साहन मिलता है। चूँकि श्रमिकों की नियुक्ति में मध्यस्थों को कमीशन मिलता है, अतः उनका यही प्रयास रहता है कि पुराने श्रमिक हटें और नये श्रमिकों की नियुक्ति हो। इसके अतिरिक्त मध्यस्थ श्रमिकों को ऊँची मजदूरी एवं अच्छे व्यवसाय का प्रलोभन देकर गाँवों से नगर में लाते हैं। परन्तु जब उन्हें न तो अच्छी मजदूरी मिलती है और न ही स्थायी रोजगार, तो वे अपने गाँव चले जाते हैं। अधिकांश श्रमिक मध्यस्थों के शोषण एवं यातनाओं से तंग आकर अपना पद त्यागकर गाँव चले जाते हैं।
5. **भ्रष्टाचार** - कारखानों में श्रमिकों की भर्ती करते समय मध्यस्थों का प्रमुख उद्देश्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति करना होता है। अतः वे कारखाने में अनेक अनैतिक कार्य करते रहते हैं। शाही श्रम आयोग के शब्दों में, "जॉबर की स्थिति के अनेक प्रलोभन होते हैं और यह आश्चर्य की बात होगी कि वह इसका लाभ न उठायें।" अंतर्राष्ट्रीय वस्त्र श्रम संगठन के अनुसार, "सैकड़ों कुशल और योग्य श्रमिक सड़कों पर बेकार घूमते रहते हैं और अनेक अयोग्य श्रमिक कारखानों में उन कामों पर लगे हुए होते हैं जिनके लिए उनमें कोई योग्यता नहीं होती, अतिरिक्त इसके कि वे उस नौकरी के लिए मध्यस्थों को रिश्वत देने के लिए तैयार हैं" इससे सम्पूर्ण उद्योग का अनुशासन और वातावरण दूषित हो जाता है। ये मध्यस्थ अनैतिक कार्यो को प्रोत्साहित करते हैं। जॉबर स्त्रियाँ प्रायः चरित्रहीन होती हैं।
6. **श्रम संघों का कमजोर हो जाना** - मध्यस्थ सेवायोजकों से मिलकर श्रम संघों को कमजोर बनाते हैं वे श्रमिकों के हित मे ंकार्य न करके सेवायोजकों के हित में कार्य करते हैं।
7. **नगरों में बेरोजगारों की संख्या में व द्धि** - मध्यस्थों के प्रभाव में आकर उनके मित्र व निकट संबंधी नौकरी के लालच में गाँव छोड़कर शहर चले जाते हैं किन्तु शहर में उन्हें रोजगार नहीं मिलता। परिणामस्वरूप शहरों में बेरोजगारी बढ़ा जाती है।

मध्यस्थ प्रणाली के उपर्युक्त दोषों के बावजूद मध्यस्थ प्रणाली को अब तक समाप्त नहीं किया जा सका है और आज भी यह भारतीय उद्योगों में भर्ती की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है। श्रम जांच समिति के शब्दों में, "यद्यपि मध्यस्थ-प्रथा अनेक दोषों से युक्त है, परन्तु भारतीय श्रम का इतना विकास नहीं हुआ कि इस प्रणाली को पूरी तरह समाप्त किया जा सके।"

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के पद्धति में सुधार के सुझाव

(Suggestions)

मध्यस्थों द्वारा भर्ती की पद्धति में सुधार के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं -

1. रोजगार कार्यालयों को अच्छे ढंग से संगठित किया जाये।
2. उद्योगों में सामूहिक सौदेबाजी की पद्धति को अपनाया जाये।
3. भर्ती की प्रत्यक्ष पद्धति को प्रोत्साहित किया जाये।
4. कुशल एवं प्रशिक्षित श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की जाये।
5. पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित की जायें।

(ii) ठेकेदारों द्वारा भर्ती

(Recruitment Through Contractors)

भारत के अनेक उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती के लिए ठेके की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा में ठेकेदारों को श्रमिकों की भर्ती के लिए ठेका दे दिया जाता है। श्रमिकों को मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों से भर्ती किया जाता है जो कृषि कार्य के समय गांव लौट

जाते हैं। ऐसे श्रमिकों से ठेकेदार स्वयं काम लेते हैं और श्रमिक ठेकेदार का ही कर्मचारी होता है। इन श्रमिकों के सम्बन्ध में उस उद्योग की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी नहीं होती जो ठेकेदार को काम देता है।

सीमेण्ट, इंजीनियरिंग, कागज तथा अहमदाबाद के सूती कपड़े के उद्योग धंधों में तथा खानों व बन्दरगाहों में और केन्द्रीय और राजकीय लोक कर्म व रेलवे आदि विभागों में अधिकतर ठेके के श्रमिक ही पाये जाते हैं। अहमदाबाद में लगभग 10 प्रतिशत और सीमेण्ट, कागज तथा जूट की चटाइयों के उद्योगों में लगभग 20 से 25 प्रतिशत ठेके के ही श्रमिक हैं। कोलार की सोने की खानों में लगभग 33 प्रतिशत तथा बंगाल में बंदरगाहों में लगभग 43 प्रतिशत श्रमिक ठेकेदारों द्वारा ही रोजगार पाते हैं।

ठेके और श्रम के गुण - निम्न गुणों के कारण ठेकेदारों द्वारा भर्ती की प्रणाली अधिक लोकप्रिय है -

1. अल्प सूचना पर ही उद्योगपतियों को श्रमशक्ति प्राप्त हो जाती है।
2. मालिक श्रमिकों के प्रति समस्त उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाते हैं।
3. श्रमिकों से काम लेने और समय पर काम समाप्त करने का दायित्व उद्योगपतियों पर न होकर ठेकेदारों पर ही होता है।
4. ठेके पर काम करवाना सस्ता और आसान पड़ता है।
5. काम बड़ी शीघ्रता के साथ होता है।
6. मिल मालिकों को ऐसे श्रम पर विशेष निगरानी नहीं रखनी पड़ती।
7. इस व्यवस्था के द्वारा उन्हें कारखाना अधिनियम, भ ति भुगतान अधिनियम तथा मात त्व लाभ अधिनियम आदि श्रम-सन्नियमों के पालन से छुटकारा मिल जाता है।

ठेके के श्रम के दोष - मिल प्रणाली में कुछ ऐसी हानियाँ हैं जिनके कारण शाही श्रम आयोग, बिहार जाँच समिति, बम्बई वस्त्र श्रम जाँच समिति आदि ने इस प्रणाली की कुछ आलोचना की है। इस प्रणाली की कुछ प्रमुख हानियाँ निम्न प्रकार हैं-

1. ठेका श्रमिकों पर श्रम सन्नियम लागू नहीं होते।
2. ठेकेदार बाह्य व्यक्ति होता है। अतः काम की किस्म से उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता।
3. ठेके पर लगाये गये श्रमिकों के कल्याण कार्यो का उद्योगपतियों पर कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। अतः ठेके के श्रमिक सभी सुविधाओं से वंचित रहते हैं।
4. ठेके के श्रमिकों को बहुधा नियमित श्रमिकों की अपेक्षा नीची दर पर मजदूरी दी जाती है।
5. ठेके के श्रमिकों की कीम करने की दशायें अत्यधिक असन्तोषजनक होती हैं। उनके काम के घण्टे अधिक और अनियमित होते हैं। उनकी नौकरी भी असुरक्षित होती है जो काम के साथ-साथ समाप्त हो जाती है। उनके लिए संवैतानिक अवकाश की भी व्यवस्था नहीं होती।
6. अधिकांश ठेकेदार श्रमिकों के प्रति अपना कोई नैतिक दायित्व नहीं समझते और कम से कम मजदूरी देकर अधिक से अधिक काम लेने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार ठेकेदार श्रमिकों का जी भरकर शोषण करते हैं।
7. ठेके के श्रमिक सभी सामाजिक सुरक्षा सेवाओं से वंचित रहते हैं।

श्रम की ठेकेदारी प्रथा के दोषों को दूर करने के प्रयास
(Measures to Remove these Evils)

अतः ठेकेदारी प्रथा के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से सरकार ने अनेक वैधानिक कदम उठाये। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948), कारखाना अधिनियम (1948), बागान श्रमिक अधिनियम (1951) तथा खनन अधिनियम (1952) के अंतर्गत 'श्रमिक' की परिभाषा को विस्त त कर दिया गया और इसके अंतर्गत ठेके के श्रम को शामिल कर लिया गया। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (1948), गोदी कर्मचारी (रोजगार नियमन) अधिनियम (1948) तथा श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम (1923) में आवश्यक संशोधन करके इन्हें ठेके के श्रमिकों पर भी लागू किया गया। रेलवे व कोयला खानों में सन् 1948 से श्रम की ठेकेदारी प्रथा समाप्त कर दी गयी।

उपर्युक्त दोषों के कारण इस प्रणाली की काफी आलोचना हुई। सर्वप्रथम शाही श्रम आयोग ने इस प्रणाली को श्रमिकों के हितों के प्रतिकूल बताया। इसके पश्चात् कोयला खान औद्योगिक समिति ने 1948 में ठेके की प्रथा को समाप्त करने का सुझाव दिया। राजकीय जाँच समिति (1947) तथा कोयला खानों के लिये नियुक्त कार्यकारी दल ने भी ठेकेदारी प्रथा को समान्त करने का समर्थन किया। सन् 1945 में भारतीय श्रम सम्मेलन की सिफारिश के आधार पर एक त्रिदलीय समिति नियुक्त की गई जिसने ठेकेदारी प्रणाली के दोषों को दूर करने का सुझाव दिया। इस मुद्दे पर विचार करने के लिए सन् 1960 में एक जांच समिति की स्थापना की गई जिसने दिसम्बर 1961 में अपने प्रतिवेदन में सन् 1962 से ठेकेदारी प्रथा को समाप्त करने का सुझाव दिया।

इस सम्बन्ध में दो अधिनियम मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं-

1. **चाय क्षेत्र प्रवासी अधिनियम, 1932** - इस अधिनियम के अनुसार बागानों के मालिक बागानों के प्रमाणित ठेकेदारों के अलावा किसी अन्य साधन से श्रमिकों की भर्ती नहीं कर सकते। अधिनियम के अनुसार श्रमिकों की भर्ती के लिए नियन्त्रित प्रवासी क्षेत्रों का निर्माण किया गया है। इस क्षेत्र के अंतर्गत प. बंगाल, उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश, मद्रास तथा उत्तर प्रदेश आते हैं। अधिनियम के अनुरूप कार्य के निरीक्षण के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा 'उत्प्रवासी श्रम नियंत्रक' की नियुक्ति की गई है।
2. **ठेका श्रमिक अधिनियम 1970** - यह अधिनियम उन सभी संस्थाओं पर लागू होता है जिनमें 20 या इससे अधिक श्रमिक कार्य कर रहे हैं। यह अधिनियम उन ठेकेदारों पर भी लागू होता है जो अधिनियम लागू होने के एक वर्ष तक किसी भी दिन 12 या उससे अधिक श्रमिक कार्य पर लगाये हुए थे। इस अधिनियम को लागू करने के दो मुख्य उद्देश्य थे -
   क) जहाँ ठेकेदारी प्रथा का उन्मूलन सम्भव न हो, वहाँ ठेका श्रमिकों की सेवा शर्तो को नियमित करना।
   ख) कुछ ऐसे वर्गो एवं क्षेत्रों में, जिन्हें निर्धारित कसौटियों के संदर्भ में सम्बन्धित सरकारें निश्चित करें, श्रम की ठेकेदारी प्रथा को समाप्त करना।

(iii) प्रत्यक्ष भर्ती पद्धति

(Direct Recruitment Method)

कुछ कारखानों में श्रमिकों की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से की जाती है। इस पद्धति के अंतर्गत श्रमिकों की आवश्यकता की सूचना कारखाने के दरवाजे पर लगा दी जाती है। इसमें यह भी सूचना होती है कि किस तिथि पर, कितने श्रमिकों की नियुक्ति के लिए, किस अधिकारी द्वारा साक्षात्कार किया जायेगा। निर्धारित तिथि पर भर्ती होने वाले श्रमिक कारखाने में उपस्थित होते हैं और सम्बन्द्ध अधिकारी द्वारा इनका चयन कर लिया जाता है। यह प्रणाली पंजाब, बम्बई, प. बांगल व तमिलनाडु में प्रचलित हैं।

गुण

(Merits)

प्रत्यक्ष भर्ती पद्धति के निम्न गुण अथवा दोष हैं -

1. इसमें योग्य एवं कुशल श्रमिकों का चयन सम्भव होता है जिससे श्रम उत्पादकता में व द्धि होती है।
2. इस प्रणाली द्वारा मध्यस्थ प्रणाली के सभी दोष दूर हो जाते हैं।

दोष

(Demerits)

1. श्रमिकों के चयन का दायित्व पूर्णतः अधिकारियों पर होता है। फलतः रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।
2. यह पद्धति कुशल श्रमिकों की भर्ती के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है।

(iv) श्रम संघों द्वारा भर्ती

(Recruitment Through Trade Unions)

इस प्रणाली के अंतर्गत सेवायोजक रिक्त स्थानों की सूचना श्रम संघों को दे देते हैं। श्रम संघों के पास बेरोजगार लोगों की सूची होती है और वे आवश्यकतानुसार बेरोजगार श्रमिकों को कारखाने में कार्य करने के लिए उपलब्ध कर दते हैं। सेवायोजक इनमें से उपयुक्त एवं योग्य श्रमिकों का चयन कर लेते हैं। इस प्रणाली को अपनाने से श्रमिक व सेवायोजक दोनों के ही हितों की रक्षा होती है। यह प्रणाली दक्षिण भारत व विशेष रूप से मद्रास के कारखानों में प्रचलित है।

(v) श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती

(Recruitment Through Labour Officers)

कुछ उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती का कार्य श्रम अधिकारियों द्वारा किया जाता है। यह श्रम अधिकारी रिक्त स्थानों का प्रचार करते हैं, गांवों में जाकर बेरोजगार श्रमिकों से सम्पर्क स्थापित करते हैं और उन्हें कारखानों में काम पर लाते हैं। चूंकि ये अधिकारी ग्रामीणों के लिए अपरिचित होते हैं, अतः ये ग्रामीणों में विश्वास उत्पन्न नहीं कर पाते। इसीलिये यह प्रणाली सफल नहीं रही है।

(vi) बदली प्रथा

(Badli System)

मध्यस्थों के प्रभावों को कम करने के लिए सन् 1935 में बम्बई के मिल मालिक संघ ने अपनी यहाँ भर्ती की बदली प्रथा को आरम्भ किया। इसके अंतर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुए लोगों को बदली कार्ड दे दिये जाते हैं और उसनसे प्रत्येक सुबह कारखाने में उपस्थित होने के लिए कहा जाता है और उन्हीं से रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाती है। स्थायी पद पर नियुक्ति के लिए पुराने कर्मचारियों को ही प्राथमिकता दी जाती है।

(vii) श्रम सम्बन्धियों की नियुक्ति

(Recruiting the Labour Relations)

भर्ती की इस प्रणाली के अंतर्गत स्थायी श्रम शक्ति को बनाए रखने के लिए उद्योगों में कार्यरत कर्मचारियों के पुत्र, सम्बन्धी अथवा मित्रों को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रणाली के पीछे यह मान्यता है कि ऐसे व्यक्ति शीघ्र ही कारखाना अनुशासन के अभ्यस्त हो जाते हैं इससे श्रम-प्रबंध सम्बन्ध मधुर बने रहते हैं। किन्तु इस पद्धति का प्रमुख दोष यह है कि इसमें योग्य एवं कार्यकुशल कर्मचारियों को काम नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त यह पद्धति पक्षपात और जातिवाद को जन्म देती है।

(viii) रोजगार दफ्तरों द्वारा भर्ती

(Recruitment Through Employment Exchanges)

रोजगार दफ्तर वैज्ञानिक आधार पर भर्ती की सर्वोत्तम पद्धति है। इन कार्यालयों के माध्यम से कार्य पाने के इच्छुक श्रमिक तथा सेवायोजक एक-दूसरे के सम्पर्क में आ जाते हैं। काम पाने के लिए इच्छुक व्यक्ति निकटतम रोजगार रफ्तर में अपना नाम पंजीकृत करा लेता है। इस प्रकार इन दफ्तरों में प्रत्येक वर्ग के श्रमिकों के विषय में विस्त त विवरण रहात है। जिन सेवायोजकों को श्रमिकों की आवश्यकता होती है वे अपनी आवश्यकतानुसार पूरा विवरण इन कार्यालयों को भेज देते हैं। ये कार्यालय इन रिक्तियों के अनुरूप उचित श्रमिकों को छांटकर उद्योगपतियों के पास भेज देते हैं और इसकी सूचना सम्बन्धित व्यक्तियों को भेज दी जाती है। साक्षात्कार के बाद प्रबंधक उचित श्रमिकों का चयन कर लेते हैं।

Unit IV

अध्याय-15
श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
(The Worksman's Compensation 1923)

वर्तमान औद्योगिक युग में यंत्रों के बढ़ते हुए उपयोग तथा उत्पादन प्रक्रिया की जटिलता के परिणामस्वरूप कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों को खतरे की सम्भावनाएँ बढ़ गयी हैं। श्रमिकों की आर्थिक स्थिति हमारे देश में पहले से ही दयनीय है। अतः दुर्घटनाओं से उत्पन्न विषम परिस्थिति में उनके संरक्षण की आवश्यकता पहले से आज कहीं अधिक महसूस की जाती है। इस सम्बन्ध में कानून उनका अधिक संरक्षण कर सकता है। कानून न केवल दुर्घटनाओं तथा रोगों को रोकने में सहायक हो सकती है वरन् उपयुक्त चिकित्सा क्षतिपूर्ति, आदि की व्यवस्था के जरिये श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाने में भी सहायक हो सकता है। अलएव श्रमिकों की सुरक्षा के लिए श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम को लागू करना एक अनिवार्यता है। भारत जैसे देश में इसकी भूमिका निर्विवाद है। सामाजिक सुरक्षा की दिशा में एक प्रकार का अधिनियम बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

संक्षिप्त इतिहास
(Brief History)

श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम का इतिहास सन् 1885 से प्रारम्भ होता है जबकि तत्कालीन सरकार द्वारा भारत में 'प्राणघातक दुर्घटना अधिनियम' बनाया गया। इस अधिनियम के तहत नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए उस समय उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जबकि होने वाली श्रमिक दुर्घटना नियोक्ता की स्पष्ट उपेक्षा के कारण होती है। इस अधिनियम के निम्नलिखत दोष थे-

1. समान रोजगार का सिद्धान्त
(Doctrine of Common Employment)

यदि अनेक व्यक्ति मिलकर किसी समान उद्देश्य हेतु काम करें और एक श्रमिक को दूसरे श्रमिक के कार्य या त्रुटि से कोई चोट न लग जाय या उसकी म त्यु हो जाए तो ऐसी दशा में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होता। इस सिद्धान्त की आड़ में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायित्व से बचने का प्रयत्न करते थे। वे बचाव के लिए तर्क देते थे कि श्रमिक की दुर्घटना अथवा म त्यु अन्य श्रमिक के कार्य या त्रुटि से हुई हैं

2. उपेक्षा या असावधानी का सिद्धान्त
(Doctrine of Contributory Negligence)

इस सिद्धान्त के अनुसार यह तर्क दिया जाता है कि श्रमिक को होने वाली दुर्घटना या चोट श्रमिक की असावधानी से ही होती है। यदि श्रमिक सावधानी से प्रत्येक कार्य करता तो सम्भवतः दुर्घटना न होती। इसका सहारा लेकर भी नियोक्ता अपने दायित्व से बच जाते थे। फलस्वरूप श्रमिकों को अनेक दुर्घटनाओं, बीमारियों और आघातों का शिकार होना पड़ता था।

3. अनुमानित या ज्ञात जोखिम का सिद्धान्त
(Doctrine of Assumed Risk)

इस सिद्धान्त का सहारा लेकर भी नियोक्ता क्षतिपूर्ति के दायित्व से बच जाते थे। इस सिद्धान्त में यह बाल मान ली गयी है

कि कारखाने में यदि श्रमिक कोई जोखिमपूर्ण काम कर रहा है तो उसे जोखिम की प्रकृति का ज्ञान रहता है। अतः नियोक्ता श्रमिक को काम के दौरान होने वाली दुर्घटना या चोट की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है क्योंकि श्रमिक को जोखिम का अनुमान था इसलिए इसे क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार नहीं है। इस सिद्धान्त में यह स्वीकार कर लिया गया है कि श्रमिक को कारखाने में काम करने के लिए जो मजदूरी दी जाती है उसमें अनुमानित जोखिम की कीमत भी शामिल है। इसलिए जोखिम से होने वाली दुर्घटना या चोट की क्षतिपूर्ति प थक् रूप से क्यों की जाय? इस प्रकार नियोक्ता हमेशा क्षतिपूर्ति के दायित्व से बच जाता था।

4. अधिक धन तथा समय लगाना

उपर्युक्त दोषों के अलावा दुर्घटना की दशा में क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए जो कानूनी कार्यवाही की जाती है उसमें श्रमिक को काफी धन खर्च करना पड़ता है और न्याय प्राप्त करने में काफी समय लग जाता था। श्रमिकों की दयनीय आर्थिक दशा के कारण वे कानूनी कार्यवाही करने में असमर्थ से रहते थे। इसलिए श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम की प थक् आवश्यकता महसूस की गयी।

सन् 1882 में कारखाना अधिनियम की धारा 43 में संशोधन किया गया जिसके अनुसार फौजदारी न्यायालयों को अधिकार दिये गये कि श्रमिक को शारीरिक चोट या म त्यु संबंधी अपराध के संबंध में किये गये समस्त अर्थ दण्ड या उसका एक भाग क्षतिग्रस्त या म तक श्रमिक के वैधानिक प्रतिनिधि को क्षतिपूर्ति के रूप में भुगतान किया जाय। सरकार ने 5 मार्च, 1923 को श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित किया जिसे 1 जुलाई, 1923 से लागू किया। इस अधिनियम में कई बार संशोधन किये गये। तदनुसार अधिनियम के क्षेत्र, सीमा, लाभ की मात्रा इत्यादि में व द्धि की गयी। सन् 1926 में अनुसूचित 2 (जिसमें व्यावसायिक बीमारियों के नाम हैं) अधिनियम में जोड़ी गयीं। सन् 1923 में रोजगार के प्रकारों (जिन पर यह अधिनियम लागू होगा) तथा क्षतिपूर्ति की राशि सम्बन्धी अनुसूची भी बढ़ायी गयी। सन् 1939 में नियोक्ता दायित्व अधिनियम पास किया गया जिसके द्वारा नियोक्ताओं का दायित्व निर्धारित कर दिया गया तथा उपर्युक्त ;सामान्य रोजगार, अनुमानित जोखिम, असावधानी का सिद्धान्त) आधारों पर क्षतिपूर्ति से बचने पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। सन् 1950, 1951, 1952, 1953 तथा 1959 में इस अधिनियम में महत्वपूर्ण संशोधन किये गये हैं जिनके अनुसार क्षतिपूर्ति की राशि, भुगतान की अवधि, नियोक्ताओं के दायित्व आदि के सम्बन्ध में विशेष परिवर्तन किये गये हैं। इसके बाद सन् 1961 तथा 1962 में कई संशोधन किये गये। 1976 में इस अधिनियम में कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये तथा इसका क्षेत्र व्यापक बना दिया गया है। 1984 में पुनः इस अधिनियम को संशोधित किया गया। तदनुसार "श्रमिक" की परिभाषा बदली गयी है। क्षतिग्रस्त श्रमिक को देय क्षतिपूर्ति की दर एवं राशि में भी परिवर्तन कर दिया गया है जिनका समावेश यथास्थान कर दिया गया है। इस प्रकार बदलती हुई परिस्थितियाँ एवं नये औद्योगिक परिवेश में आवश्यक संशोधन किये गये हैं। नवीन संशोधन के अनुसार श्रमिक की म त्यु की दशा में न्यूनतम क्षतिपूर्ति की राशि 20 हजार रूपये तथा स्थायी अयोग्यता की दशा में न्यूनतम क्षतिपूर्ति की राशि 24 हजार रूपये कर दी गयी हैं।

अधिनियम का उद्देश्य व महत्व
(Objective and importance of Act)

इस अधिनियम के लागू होने से पहले यदि श्रमिक को कारखानों में काम के दौरान चोट लग जाती अथवा कोई दुर्घटना हो जाती तो वह नौकरी की द ष्टि से व्यक्तिगत क्षति मानी जाती थी तथा श्रमिक क्षति के लिए दावा नहीं कर सकता था। इस अधिनियम की स्थापना से भारत में सामाजिक सुरक्षा का श्रीगणेश हुआ। इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक दुर्घटनाओं या चोट तथा व्यावसायिक बीमारियों के कारण होने वाली श्रमिक की म त्यु या क्षति के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करता है। क्षतिपूर्ति के भुगतान का दायित्व कारखाने के स्वामियों या नियोक्ताओं पर है।

औद्योगीकरण के वर्तमान युग में हमारे देश में उद्योगों में मशीनों का अधिक उपयोग होने लगा है। तथा उत्पादन की प्रणाली भी पेचीदा हो गई है जिससे श्रमिकों को दुर्घटना, चोट और व्यावसायिक रोगों का भय बना रहता है। उसकी म त्यु या विकलांग होने की दशा में उन्हें या उनके आश्रितों को जीविकोपार्जन के लिए क्षतिपूर्ति का प्रबन्ध करना अनिवार्य है। इस बात की पूर्ति इस अधिनियम में की गयी है। यदि श्रमिकों को कोई व्यावसायिक रोग हो जाता है तो अधिनियम में उपयुक्त चिकित्सा की

व्यवस्था भी की गयी है। इस प्रकार श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा, उनकी कार्यक्षमता तथा उद्योगों के प्रति उनका आकर्षण बढ़ाने का श्रेय प्रस्तुत अधिनियम को है।

यह भी उल्लेखनीय है कि अधिनियम के अंतर्गत क्षतिपूर्ति सम्बन्धी मामले को न्यायालय में ले जाने से कोई भी क्षतिग्रस्त श्रमिक या उसका आश्रित रोका नहीं जाता। यदि वह चाहे तो न्यायालय में क्षतिपूर्ति हेतु मुकदमा चला सकता है। किन्तु ऐसी परिस्थिति में उसे अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहेगा। वह या तो न्यायालय द्वारा निर्धारित क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त कर सकता है अथवा इस अधिनियम द्वारा निर्धारित राशि। साधारणतया न्यायालय में मुकदमा चलाना खर्चीला व जोखिमपूर्ण होता है। अतः क्षतिग्रस्त श्रमिक के लिए इस अधिनियम के अंतर्गत दावा करना ही अधिक सुरक्षित है। क्षतिपूर्ति अधिनियम को उद्देश्य राजकीय श्रम आयोग के निम्नलिखित शब्दों में और भी स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

श्रमिकों की खतिपूर्ति सम्बन्धी विधान का लाभ केवल क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करना ही नहीं है, इसका महत्वपूर्ण प्रभाव दुर्घटनाओं को रोकने, श्रमिकों की चिन्ता को कम करने तथा औद्योगिक उपक्रमों को अधिक आकर्षक बनाने पर भी पड़ेगा। वर्तमान बढ़ती हुई औद्योगिक पेचीदगियों, मशीनों के अधिक उपयोग और फलतः श्रमिकों के भय तथा श्रमिकों को दयनीय आर्थिक स्थिति आदि इस बात के लिए विवश करते हैं कि श्रमिकों की सुरक्षा की व्यवस्था यथासम्भव सीमा तक की जाय।"

प्रस्तुत अधिनियम से नियोक्ता तथा श्रमिक दोनों वर्ग को लाभ पहुंचा है। कारखाने में श्रमिक रुचि से काम करते हैं, कारखाने के प्रति इनका आकर्षण बढ़ जाता है और क्षतिपूर्ति का आश्वासन प्राप्त होने से वे सन्तुष्ट रहते हैं। दुर्घटनाओं का दायित्व यद्यपि नियोक्ताओं पर रहता है लेकिन इसका आशय यह नहीं कि श्रमिक जान-बूझकर कोई त्रुटि करे और दुर्घटना का शिकार हो जाय तो भी नियोक्ता दायी होगा, अर्थात् रोजगार के अंतर्गत और रोजगार के दौरान होने वाली दुर्घटना के लिए ही नियोक्ता दायी ठहराया जा सकता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा दिया गया यह सुझाव विचारणीय है कि इस अधिनियम को सभी प्रकार के श्रमिकों (निरीक्षण सम्बन्धी कार्य करने वाले कर्मचारी सहित) पर लागू कर दिया जाय, क्षतिपूर्ति के लिए एक केन्द्रीय निधि कायम की जाय, क्षतिपूर्ति की दरों में व द्धि की जाय तथा क्षतिग्रस्त श्रमिकों को नकद चिकित्सा एवं पुनर्वास भत्ता देने की व्यवस्था की जाय।

अधिनियम के मुख्य प्रावधान
(Main Provisions)

अयोग्यता के प्रकार
(Types of Disablement)

कारखानें में दुर्घटना होने के फलस्वरूप श्रमिक को हो सकने वाली अयोग्यता निम्न प्रकार की हो सकती हैः

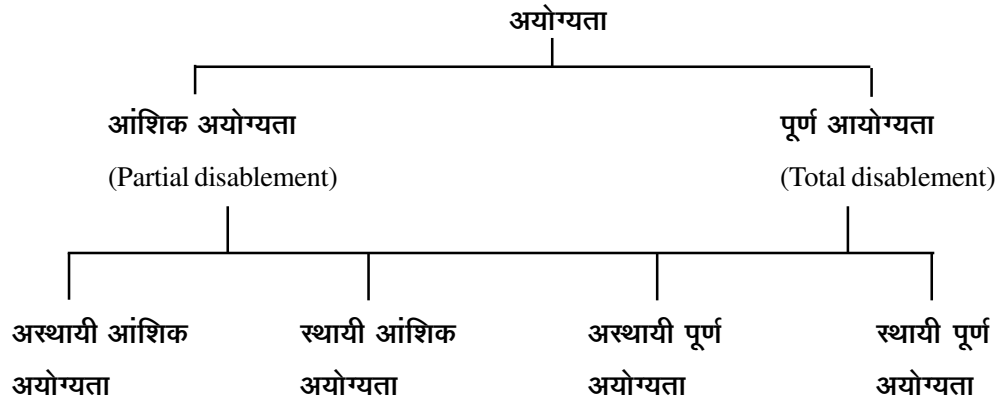

(क) आंशिक अयोग्यता
(Partial Disablement)

आंशिक अयोग्यता दो प्रकार की होती है - (i) **अस्थायी आंशिक अयोग्यता** (Temporary Partial Disablement), **और** (ii) **स्थायी आंशिक योग्यता** (Permanent Partial Disablement).

अस्थायी आंशिक अयोग्यता का अभिप्राय उस अयोग्यता से है जो श्रमिक की अर्जन शक्ति (earning capacity) ऐसे किसी रोजगार में कम कर दें जिसमें वह दुर्घटना के समय कार्य कर रहा था और जिसके फलस्वरूप अयोग्यता हुई। अर्थात् यदि दुर्घटना के परिणामस्वरूप श्रमिक की कमाने की शक्ति पहले की अपेक्षा कम हो जाती है और यह अस्थायी समय तक रहती है तो इसे अस्थायी आंशिक अयोग्यता कहते हैं।

स्थायी आंशिक अयोग्यता से हमारा अभिप्राय उस अयोग्यता से है जो स्थायी समय के लिए रहती है और जिससे श्रमिक की अर्जन शक्ति उस रोजगार में कम हो जाती है जिसमें वह दुर्घटना के समय कार्य करने योग्य था; स्थायी आंशिक अयोग्यता स्थायी प्रकार की होती है और रमिक की कमाने की शक्ति उस रोजगार में हमेशा के लिए कम हो जाती है।

इस अधिनियम की अनुसूची 1 के भाग 21 में उव आघातों की सूची दी गई है जिनके कारण स्थायी आंशिक अयोग्यता होती है। उदाहरणार्थ, एक हाथ की चारों उंगलियों को हानि और अंगूठे की हानी स्थायी आंशिक अयोग्यता मानी जाती है।

(ख) पूर्ण अयोग्यता

(Total disablement)

पूर्ण अयोग्यता में स्थायी या अस्थायी दोनों प्रकार की अयोग्यता शामिल हैं। पूर्ण अयोग्यता में श्रमिक उस रोजगार में काम करने के पूर्ण अयोग्य हो जात है जिसमें वह दुर्घटना के समय कार्य करने योग्य था; अर्थात् पूर्णतः अयोग्यता में श्रमिक की अर्जन शक्ति शत-प्रतिशत चली जाती है। अनुसूची 1 के भाग 1 में जिन आघातों की सूची दी गयी है उनसे श्रमिक की अर्जन शक्ति शत-प्रतिशत चली जाती है। उदाहरणार्थ, दोनों आंखों के प्रकाश की स्थायी पूर्ण हानि, एक हाथ तथा एक पांव की हानि, पूर्ण बहरापन इत्यादि पूर्ण अयोग्यता मानी जाती हैं। यदि पूर्ण अयोग्यता थोड़े समय के लिए रहती है तो उसे **अस्थायी पूर्ण अयोग्यता** कहते हैं और यदि पूर्ण अयोग्यता हमेशा के लिए रहती है तथा श्रमिक की अर्जन शक्ति शत-प्रतिशत चली जाती है तो स्थायी पूर्ण अयोग्यता कहते हैं।

इस प्रकार अयोग्यताएं दो प्रकार की होती हैं - आंशिक अयोग्यता तथा पूर्ण अयोग्यता। आंशिक अयोग्यता स्थायी तथा अस्थायी भी हो सकती हैं। इसी तरह पूर्ण अयोग्यताएं भी स्थायी या अस्थायी दोनों प्रकार की हो सकती हैं। आंशिक अयोग्यता और अयोग्यता दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि आंशिक अयोग्यता में श्रमिक की अर्जन शक्ति शत-प्रतिशत नहीं जाती जबकि पूर्ण अयोग्यता में श्रमिक की अर्जनशक्ति शत-प्रतिशत समाप्त हो जाती है। स्थायी तथा अस्थायी अयोग्यता में यह अन्तर है कि अस्थायी अयोग्यता में अर्जन शक्ति की हानि हमेशा के लिए नहीं होती। स्थायी आंशिक व अस्थायी आंशिक अयोग्यता का अन्तर भी ध्यान देने योग्य है। अस्थायी आंशिक अयोग्यता के फलस्वरूप श्रमिक की अर्जन शक्ति केवल उसी रोजगार में कुछ समय के लिए कम हो जाती है जिसमें श्रमिक दुर्घटना के समय काम कर रहा था; अर्थात् श्रमिक अन्य रोजगार में कार्य करने योग्य रह सकता है। स्थायी आंशिक अयोग्यता में श्रमिक की अर्जन शक्ति हमेशा के लिए उन सब कामों को करने में कम हो जाती है, जिन्हें यह दुर्घटना से पहले कर सकता था।

नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए कब दायी माना जायेगा?

नम्नलिखित दशाओं में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी माना जायेगा :

1. **म त्यु अथवा स्थायी या अस्थायी अयोग्यता होने पर** - यदि दुर्घटना के फलस्वरूप श्रमिक की म त्यु हो जाय या वह किसी स्थायी या अस्थायी अयोग्यता का शिकार हो जाय तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी माना जायेगा।
2. **दुर्घटना या शारीरिक चोट लगने पर** - यदि श्रमिक को कार्य करते समय या कार्य के अंतर्गत कोई शारीरिक चोट लग जाती है या वह किसी दुर्घटना का शिकार बन जाता है तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी माना जायेगा।
3. **नशीले पदार्थ का उपयोग नहीं होने पर** - जब दुर्घटना के फलस्वरूप श्रमिक की म त्यु न हुई हो तो क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए यह बात सिद्ध होनी चाहिए कि दुर्घटनाग्रस्त श्रमिक ने किसी नशीले पदार्थ आदि का उपयोग नहीं किया था। म त्यु होने की दशा में यह बात लागू नहीं होती।
4. **दुर्घटना रोजगार से उत्पन्न या रोजगार के दौरान होने पर** - यदि दुर्घटना रोजगार से उत्पन्न हो या रोजगार के दौरान हो तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी माना जायेगा।

5. **व्यावसायिक रोग होने पर** - यदि रोजगार से उत्पन्न या रोजगार के दौरान श्रमिक किसी व्यावसायिक रोग (occupational disease) का शिकार हो जाय तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी रहेगा।
6. **मासिक वेतन एक हजार रूपये से अधिक होने पर** - नियोक्ता केवल ऐसे श्रमिक के सम्बन्ध में ही क्षतिपूर्ति के लिए दायी रहेगा जिसका मासिक वेतन एक हजार रूपये से अधिक न हो। एक हजार रूपये से अधिक वेतन पाने वाला व्यक्ति इस अधिनियम के अंतर्गत श्रमिक नहीं माना गया है।
7. **अयोग्यता तीन दिन से अधिक रहने पर** - क्षतिपूर्ति चुकाने के लिए नियोक्ता तभी दायी ठहराया जा सकता है जब अयोग्यता तीन दिन से अधिक अवधि के लिए हुई हो।
8. **सुरक्षा के लिए निर्दिष्ट नियमों का पालन** - यदि श्रमिक ने अपना कार्य करते समय दुर्घटना के सम्बन्ध में सुरक्षा के लिए बनाये गये नियमों या उपायों का प्रयोग किया हो और फिर भी दुर्घटनाग्रस्त हो गया हो तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी रहेगा।

नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए कब दायी नहीं होगा?

निम्नलिखित दशाओं में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं माना जायेगा:

1. **तीन दिन या इससे कम अवधि के लिए अयोग्यता रहने पर** - यदि दुर्घटना के फलस्वरूप श्रमिक तीन दिन या इससे कम अवधि के लिए ही अयोग्य रहता है तो ऐसी दशा में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं रहेगा।
2. **जान-बूझकर सुरक्षा के उपायों की उपेक्षा करने पर** - यदि सुरक्षा के उपायों की श्रमिकों ने जान-बूझकर उपेक्षा की हो तथा दुर्घटना का शिकार हो गया हो तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।
3. **नशीली वस्तु का उपयोग करने पर** - यदि श्रमिक ने किसी नशीली वस्तु या शराब का उपयोग किया हो और इस कारण दुर्घटनाग्रस्त हो गया हो तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा।
4. **सुरक्षा के नियमों तथा निर्देशों का पालन नहीं करने पर** - यदि श्रमिक ने सुरक्षा के लिए निर्धारित नियमों तथा निर्देशों का उल्लंघन किया हो तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता।
5. **व्यावसायिक रोग रोजगार से उत्पन्न नहीं होने पर** - यदि श्रमिक को कोई व्यावसायिक रोग (Occupational Disease) हो किन्तु यह रोजगार से उत्पन्न नहीं हुआ हो तो इसके लिए क्षतिपूर्ति नियोक्ता नहीं चुकायेगा। व्यावसायिक रोगों का उल्लेख त तीय अनुसूची के भाग A में है।
6. **दीवानी न्यायालयों में दावा करने पर** - यदि क्षतिग्रस्त श्रमिक ने क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता अथवा अन्य व्यक्ति के विरुद्ध दीवानी न्यायालय में दावा कर दिया हो तो इस अधिनियम के अंतर्गत उसे क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहेगा।
7. **दुर्घटना रोजगार के दौरान तथा रोजगार से उत्पन्न नहीं होने पर** - यदि दुर्घटना रोजगार से उत्पन्न नहीं हुई हो और न ही रोजगार के दौरान हुई हो तो ऐसी दशा में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं रहेगा। इसका विस्त त विवेचन आगे किया गया है।
8. **व्यावसायिक रोग का सम्बन्ध रोजगार से न होने पर** - यदि श्रमिक किसी ऐसे व्यावसायिक रोग से ग्रस्त हो जाए जो रोजगार से सम्बन्धित नहीं है अर्थात् त तीय अनुसूची के भाग A में वर्णित रोग के अलावा कोई अन्य रोग हो जाए तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा।
9. **एक हजार रुपये मासिक से अधिक वेतन मिलने पर** - यदि श्रमिक को एक हजार रुपये से अधिक वेतन मिलता हो तो ऐसी दशा में नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा।
10. **छः माह से कम या केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्दिष्ट अवधि से कम रोजगार अवधि रहने पर** - यदि श्रमिक किसी नियोक्ता के यहां छः माह से कम अवधि के लिए काम कर रहा हो और उसे त तीय अनुसूची के भाग B में वर्णित कोई व्यावसायिक रोग हो जाता है या वह एक या अधिक नियोक्ताओं के पास केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्दिष्ट अवधि से कम अवधि के लिए कार्य कर रहा हो और त तीय अनुसूची के भाग C में वर्णित किसी व्यावसायिक रोग का शिकार हो जाता है तो क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा।

11. **दुर्घटना से आंशिक या पूर्ण अयोग्यता नहीं होने पर** - यदि श्रमिक को किसी दुर्घटना में कोई आंशिक या पूर्ण अयोग्यता नहीं होती है तो क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता दायी नहीं होगा। क्षतिपूर्ति की पात्रता तभी आती है जब दुर्घटना से आंशिक या पूर्ण अयोग्यता, हो जाए।

दुर्घटना क्या है?

श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम में "दुर्घटना" शब्द की परिभाषा नहीं दी गयी है। सामान्यतया दुर्घटना से हमारा अभिप्राय ऐसी घटना या संयोज से है जिसकी हमें पूर्व जानकारी या कल्पना नहीं हो। अर्थात् अकस्मात् घटने वाली दुर्घटना है। लेकिन श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के अंतर्गत दुर्घटना शब्द को विशेष अर्थ में प्रस्तुत किया गया है। यहां दुर्घटना का आशय ऐसी घटना या संयोग से है जो किसी व्यवसाय में काम करते समय हो सकती है। जैसे काम करते समय श्रमिक को चोट लग जाय या अंग क्षति हो जाए आदि। इसी प्रकार किसी विशेष व्यवसाय में निरंतर कार्य करने से श्रमिक को कोई रोग हो जाता है तो उसे भी दुर्घटना में शामिल किया जायेगा। ऐसे सम्भावित रोगों की सूची इस अधिनियम की त तीय अनुसूची में दी गयी है।

क्षतिपूर्ति के भुगतान एवं वितरण संबंधी प्रावधानों का सारांश

1. क्षतिपूर्ति का भुगतान अनुसूची 4 में वर्णित दरों के अनुसार किया जायेगा।
2. क्षतिग्रस्त श्रमिक की दशा में परिवर्तन होने पर क्षतिपूर्ति के भुगतान पर पुनर्विचार किया जा सकता है। तदनुसार उसमें कमी या व द्धि हो सकती है या वह बन्द की जा सकती है अथवा पूर्ववत् रखी जा सकती है।
3. वैधानिक अयोग्यता के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति को देय क्षतिपूर्ति की राशि का विनियोग ऐसे व्यक्ति के लाभार्थ किया जायेगा। अर्द्ध मासिक भुगतान की दशा में यह उस व्यक्ति को दिया जायेगा जो उस अयोग्य व्यक्ति के कल्याण की व्यवस्था के लिए सबसे अधिक योग्य हो।
4. अर्द्ध मासिक भुगतान को एकमुश्त राशि में परिवर्तित कराया जा सकता है।
5. क्षतिपूर्ति का भुगतान श्रमिक की म त्यु हो जाने पर कमिश्नर के पास राशि जमा कर करनी होगी। तद्नन्तर कमिश्नर इसे म तक के आश्रितों में नियमानुसार वितरित करेगा।
6. क्षतिपूर्ति की राशि अभिहस्तांकन, कुर्की या भार से मुक्त रहेगी।
7. क्षतिपूर्ति का दावा कमिश्नर के समक्ष दुर्घटना होने के 2 वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। कमिश्नर नियोक्ता से दुर्घटनाओं आदि के बारे में विवरण प्राप्त कर सकता है (विशेषतः प्राणघातक दुर्घटनाओं की)।
8. श्रमिक नियोक्ता या ठेकेदार दोनों में से किसी एक से ही क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता हैद्ध दोनों से नहीं।
9. दुर्घटना के लिए उत्तरदायी तीसरे व्यक्ति से नियोक्ता क्षतिपूर्ति की रकम वसूल करने का अधिकारी है।
10. नियोक्ता के दिवालिया होने पर क्षतिपूर्ति की वसूली पूर्वाधिकार ऋण की भांति उसकी सम्पत्ति में से की जायेगी। बीमा होने की दशा में बीमा कम्पनी से यह राशि वसूल की जा सकती है।
11. क्षतिग्रस्त श्रमिक को डॉक्टरी जांच आदि निर्देशों का पालन करना होगा अन्यथा भुगतान स्थगित कर दिया जायेगा। यह बात श्रमिक की म त्यु की दशा में लागू नहीं होगी।
12. जहाजों के मास्टर व नाविक के सम्बन्ध में विशेष बातें लागू होती हैं।
13. क्षतिपूर्ति के दायित्व से बचने के लिए किया गया प्रत्येक अनुबन्ध व्यर्थ होगा।
14. राज्य सरकार क्षतिपूर्ति सम्बन्ध विवरण मंगा सकती है।
15. क्षतिपूर्ति का विवरण भेजने, रिकार्ड रखने आदि में त्रुटि की दशा में दण्ड का प्रावधान भी है।

अध्याय-16
मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936
(Payment of Wages Act, 1936)

राष्ट्रीय उत्पादन में श्रम का महत्वपूर्ण योगदान है। श्रमिकों की कुशलता पर ही उत्पादन की किस्म व मात्रा निर्भर करती है। कुशलता बहुत कुछ अंश तक श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी पर निर्भर करती हैं कई शताब्दियों तक श्रमिकों की उपेक्षा की गयी। एक ओर तो उन्हें मजदूरी कम मिलती थी और दूसरी ओर उसका भुगतान भी समय पर नहीं किया जाता था। कारखाने के स्वामी श्रमिक की मजदूरी में से अपनी इच्छानुसार कटौती कर लेते थे और श्रमिकों पर अनावश्यक रूप से जुर्माना आदि करते थे। इसलिए मजदूरी के भुगतान संबंधी अधिनियम की आवश्यकता बीसवीं शताब्दी में तीव्र रूप से अनुीाव की गयी।

मजदूरी के भुगतान के संबंध में कोई विशेष विधान न होने से नियोक्ता द्वारा श्रमिकों को कम मजदूरी का भुगतान करना, विलम्ब से भुगतान करना तथा अनेक प्रकार की कटौतियां व जुर्माने करना, एक साधारण बात थी। इस बात को ध्यान में रखकर न् 1925 में एक साप्ताहिक भुगतान बिल (Weekly Payment Bill - Private Bill) विधान सभा के समक्ष रखा गया जिससे श्रमिकों को मजदूरी के साप्ताहिक भुगतान की अनिवार्य व्यवस्था रखी गयी थी। किन्तु नियोक्ताओं तथा प्रान्तीय सरकारों ने बिल का इस आधार पर विरोध किया कि इससे विद्यमान भुगतान अवधियों में हस्तक्षेप होगा। अतः यह बिल वापस ले लिया गया। बम्बई सरकार द्वारा एक जांच समिति नियुक्त की गयी जिसने केन्द्रीय सरकार द्वारा पुनः एक जांच समिति नियुक्त की गयी जिसने मजदूरी के विलम्बित भुगतान तथा नियोक्ता द्वारा अपनी इच्छा से किये जाने वाले जुर्माने आदि के बारे में जांच की। 1928 में भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में कुछ नियम तैयार किये थे लेकिन उन्हें कार्यान्वित नहीं किया जा सका। राजकीय श्रम आयोग ने भी मजदूरी भुगतान के सम्बन्ध में विधान बनाने की शिफारिश की जिसमें मजदूरी के तुरन्त भुगतान, कटौती के नियमन तथा मजदूरी - अवधि को छोटी करने पर अधिक बल दिया। उक्त सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए 1933 में विधान सभा में मजदूरी भुगतान बिल पेश किया गया। यह बिल 1936 में पास हो गया जिसे मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936 कहा जाता है। प्रस्तुत अधिनियम 28 फरवरी 1937 से प्रभावशील हुआ है।

इसके पश्चात् अधिनियम में अनेक संशोधन हुए। सन् 1937, 1940, 1950, 1951 तथा 1957 में किये गए संशोधन उल्लेखनीय हैं। सन् 1964 में कई संशोधन किये गये हैं। मजदूरी भुगतान (संशोधन) अधिनियम, 1964 में अनेक संशोधन हुए हैं। 1975 में 1976 तथा 1982 में भी कुछ महत्वपूर्ण संशोधन किये गये हैं।

मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936
(Payment of Wages Act, 1936)

1936 के मुख्य उद्देश्य श्रमिकों की मजदूरी के भुगतान का नियमन करना है। श्रमिकों के पर्याप्त संगठन का अभाव, अशिक्षा, अनुबन्ध करने की शक्ति के अभाव तथा नियोक्ताओं की श्रमिकों के प्रति उदासीनता के फलस्वरूप सरकार द्वारा मजदूरी के भुगतान को नियमित करना परमावश्यक हो गया है। श्रमिक की आर्थिक व सामाजिक उन्नति तभी सम्भव है जब उन्हें सामाजिक न्याय प्रदान किया जाय तथा उसके हितों की रक्षा की जाय। मजदूरी की उचित नीति निर्धारित करना तथा श्रमिकों की नियोक्ताओं के शोषण से रक्षा करना आज के युग की मांग है।

आर. बी. शाह बनाम **बी. आर. साबरकर** तथा अन्य के मामलें में यह निर्णय दिया जा चुका है कि प्रस्तुत अधिनियम की रचना का मुख्य उद्देश्य अधिनियम द्वारा निर्धारित दशाओं के अन्तर्गत कर्मचारियों की मजदूरी की सुरक्षा है। इस निर्णय में यह भी कहा गया है कि इस अधिनियम का उद्देश्य श्रमिकों को निर्धारित रीति से, नियमित मध्यान्तरों पर बिना अनाधिकृत कटौती किये मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था करना है।

मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 एक केन्द्रीय अधिनियम है जिसका प्रशासन एवं क्रियान्वयन केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। इस अधिनियम को लागू हुए लगभग 4 दशक हो गये हैं। इसके द्वारा अनेक श्रमिकों को लाभ हुआ है। प्रारम्भ में यह अधिनियम उन व्यक्तियों पर लागू था जिसे 200 रुपये से कम मासिक मजदूरी मिलती थी। 1957 से यह उन व्यक्तियों पर लागू होता है जिनकी मासिक मजदूरी 1,600 रुपये से अधिक नहीं हो।

नवीन संशोधन के अनुसार मजदूरी का भुगतान रोकड़ी या चैक द्वारा या बैंक के खाते में जमा करके किया जा सकता है (लिखित अधिकार प्राप्त होने पर)। प्रधानमन्त्री राहत कोष या केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट ऐसे किसी अन्य कोष में राशि जमा करने के लिए मजदूरी में से कटौती के अधिकार के सम्बन्ध में अनुमति प्रदान कर दी गयी है।

कई राज्यों में यह अधिनियम अन्य उद्योगों (दुकान, संस्थान, किराये पर मोटर-गाड़ी चलाने, सेवा कार्य इत्यादि) पर भी लागू कर दिया है।

अधिनियम के उद्देश्य
(Objectives of the Act)

इस अधिनियम के अस्तित्व में आने से पहले कम्रचारियों व श्रमिकों को नियोक्ता के हाथों कई बुराईयों को सहना पड़ा। इनमें से कुछ प्रमुख बुराइयां निम्नलिखित हैं:

(i) नियोक्ताओं ने अपनी इच्छानुसार मजदूरी भुगतान का तरीका तथा समयावधि को चुना।

(ii) नियोक्ताओं ने मजदूरी का भुगतान नकद रूप में किया और मुद्रा ह्रास (Depreciation of money) की स्थिति में किया जिसके फलस्वरूप श्रमिकों को हानि उठानी पड़ी।

(iii) नियोक्ताओं द्वारा श्रमिकों को किये गये मजदूरी भुगतान में से कई प्रकार की कटौतियां अपनी इच्छा से की गई।

(iv) मजदूरी का भुगतान नियमित तौर पर नहीं किया जाता था और कभी-कभी मजदूरी का भुगतान बिल्कुल भी नहीं किया जाता था।

श्रम पर बैठे शाही अयोग का ध्यान मजदूरी भुगतान से सम्बन्धित इन बुराइयों की ओर गया। इस आयोग ने इन बुराइयों पर नियंत्रण पाने के लिए उचित कानून की सिफारिश की। शाही आयोग ने मजदूरी भुगतान की विधि को नियंत्रित करने और कानून के अनुसार जुर्माने व कटौतियों का निर्धारण करने की सलाह देते हुए मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 की रूपरेखा तैयार की जिससे श्रमिकों को नियोक्ताओं द्वारा उनके शोषण के विरुद्ध संरक्षित किया जा सके। इस अधिनियम के अनुसार मजदूरी का भुगतान अब एक माह में करना आवश्यक हो गया।

अधिनियम का क्षेत्र और प्रयोग
(Scope and Applicability of the Act)

प्रत्येक नियोक्ता उसके द्वारा कार्य पर रखे गये श्रमिकों को मजदूरी भुगतान के लिए उत्तरदायी होगा। यदि व्यक्तियों को काम पर लगा दिया जाता है तब निम्न व्यक्ति मजदूरी के भुगतान के लिए उत्तरदायी होंगे।

(क) वह व्यक्ति जिसे कारखाने में प्रबंधक (Manager) का पद सौंपा गया है।

(ख) औद्योगिक इकाई का वह व्यक्ति जो इस इकाई में देख-रेख व नियंत्रण के लिए नियोक्ता की ओर से उत्तरदायी बनाया गया है।

(ग) रेलवे प्रशासन ने स्थानीय क्षेत्र में जिस व्यक्ति को इस काम के लिए नामांकित (Nominated) किया है।

साधारणतया नियोक्ता मजदूरी के भुगतान के लिए जिम्मेदार होता है किन्तु उपर्युक्त व्यक्तियों को भी इस अधिनियम के अंतर्गत उत्तरदायी माना गया है।

अवैधानिक कटौती
(Illegal Deductions)

अधिनियम की धारा 7 में प्राधिकृत कटौती के अलावा की गई अन्य कटौती को अवैधानिक माना जायेगा। उदाहरण के लिए-

1. जब कोई नियोक्ता किसी मजदूर की मजदूरी में से कटौती इस कारण करता है कि श्रमिक को जो वस्तु सौंपी गई थी वह उससे कार्य करते समय खराब अथवा नष्ट हो जाती है चाहे श्रमिक से कोई लापरवाही या उपेक्षा न हुई हो। इस स्थिति में मजदूरी में से की गई कटौती अवैधानिक मानी जायेगी।
2. श्रमिक को कार्य करने के लिए उपकरण व कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। यह उपकरण व कच्चा माल आबंटित करने पर यदि कोई नियोक्ता किसी श्रमिक की मजदूरी में से कटौती करता है तो इसे अवैधानिक माना जायेगा।
3. किसी रेलवे कर्मचारी के द्वारा धन वापसी अथवा छूट देते समय गलती हो जाती है और यह गलती उसकी कमी अथवा लापरवाही के कारण नहीं होती तब रेलवे प्रशासन द्वारा उस कर्मचारी की मजदूरी में से कई गई कटौती को अवैधानिक माना जायेगा।
4. यदि किसी कर्मचारी की लिखित अनुमति के बिना कोई नियोक्ता जीवन बीमा निगम की किश्त के भुगतान के लिए मजदूरी में से कटौती करता है तब यह कटौती अवैधानिक मानी जायेगी।

ऐसा प्रत्येक नियोक्ता जो अधिनियम के विभिन्न उपबंधों को नहीं मानता तब वह दंड का भागी होगा। दंडस्वरूप इस नियोक्ता पर 500 रुपये तक का जुर्माना किया जा सकता है। निम्न प्रावधानों का उल्लंघन करने पर नियोक्ता दंड का भागी होगा।

(i) जब वह मजदूरी भुगतान की समयावधि निश्चित नहीं करता, अथवा

(ii) जब नियोक्ता कार्य के किसी दिन के लिए मजदूरी का भुगतान नहीं करता, अथवा

(iii) जब नियोक्ता मजदूर को चालू सिक्कों व करेंसी नोट में मजदूरी का भुगतान नहीं करता, अथवा

(iv) सभी लगाये गये दंड और वसूल की गयी राशि को निर्धारित रजिस्टर में दर्ज नहीं करता तब नियोक्ता पर 200 रुपये तक का अर्थदंड लगाया जा सकता है।

यदि कोई नियोक्ता निम्न प्रावधानों का उल्लंघन करता है, तब इस अधिनियम के अनुसार वह दंड का भागी होगा तथा उस पर 500 रुपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

(i) जब वह रजिस्टर या रिकार्ड में पूरी प्रविष्टि नहीं करता,

(ii) जान बूझकर सूचना प्रविष्ट करने से मना करता है, अथवा

(iii) गलत सूचना भरता है, अथवा

(iv) किसी सूचना के बारे में जान बूझकर गलत उत्तर देता है।

नियोक्ताओं के अधिकार
(Rights to the Employers)

इस अधिनियम के अंतर्गत नियोक्ता के निम्नलिखित अधिकार होते हैं:

धारा, 4(2) के अनुसार यदि एक श्रमिक 10 श्रमिकों या उससे अधिक श्रमिक के साथ उचित सूचना देने के पश्चात् कार्य का अवकाश रखता है तब इस स्थिति में नियोक्ता श्रमिक को किये जाने वाले मजदूरी के भुगतान में से कटौती कर सकता है। नियोक्ता द्वारा दी जाने वाली यह कटौती किसी भी स्थिति में श्रमिक द्वारा किये गये अवकाश के दिनों की मजदूरी से अधिक नहीं हो सकती।

कर्मचारियों के अधिकार
(Rights of Employees)

1. मजदूर को निर्धारित समयावधि के दौरान मजदूरी नकद रूप में प्राप्त करने का अधिकार होगा।
2. श्रमिक को अधिनियम में प्राधिकृत कटौती अथवा जुर्माने के अलावा किसी अन्य कटौती व जुर्माने को मना करने का अधिकार होगा।

मजदूरी-अवधि का निर्माण {धारा 4}
(Fixation of Wage Period)

प्रत्येक व्यक्ति जो धारा 3 के अंतर्गत मजदूरी के भुगतान के लिए उत्तरदायी है, इस अधिनियम में सन्दर्भित "मजदूरी की अवधि" का निर्धारण करेगा जिसमें कि मजदूरी का भुगतान किया जाएगा।

'मजदूरी की कोई भी अवधि एक माह से अधिक नहीं होगा।'

मजदूरी के भुगतान का समय {धारा 5}
(Time of payment of Wages)

1. **मजदूरी के भुगतान का समय निम्न प्रकार होगा** - (ए) रेलवे, कारखाने अथवा औद्योगिक संस्थान में, जिसमें 1,000 से कम व्यक्ति नियुक्त हों, काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की मजदूरी का भुगतान, मजदूरी की अवधि (Wage Period) के अन्तिम दिन से सातवें दिन की समाप्ति के पूर्व करना होगा।

   (बी) अन्य किसी रेलवे, कारखाने अथवा औद्योगिक संस्थान में अन्य संस्थान में काम करने वाले व्यक्ति की मजदूरी का भुगतान 'मजदूरी की अवधि के अन्तिम दिन के दसवें दिन की समाप्ति के पूर्व करना होगा।'

2. यदि किसी व्यक्ति की सेवा नियोक्ता द्वारा अथवा उसकी ओर से समाप्त कर दी गई हो तो उसकी मजदूरी का भुगतान सेवा समाप्ति के दूसरे कार्यदिवस (Working) की समाप्ति के पूर्व करना होगा।' किन्तु जब किसी संस्थान में किसी व्यक्ति की सेवा समाप्ति संस्थान के बन्द हो जाने के कारण की गयी हो (साप्ताहिक या अन्य स्वीकृत छुट्टियों के कारणों के अलावा अन्य किसी कारणवश बन्द होने पर) तो उस व्यक्ति को, उसके द्वारा अर्जित मजदूरी का भुगतान इस प्रकार सेवा समाप्त करने के दूसरे दिन की समाप्ति के पूर्व करना होगा।

3. उपधारा (2) में बतायी गयी किसी विपरीत व्यवस्था को छोड़कर मजदूरी के समस्त भुगतान कार्य-दिवस (Working day) पर ही किये जायेंगे।

समस्त मजदूरी का भुगतान चालू सिक्कों, करेंसी नोट अथवा दोनों में किया जायेगा।

किंतु नियोक्ता श्रमिक को मजदूरी का भुगतान चेक द्वारा या श्रमिक के बैंक खाते में जमा करके भी कर सकता है - यदि श्रमिक ने इस सम्बन्ध में लिखित अधिकृत किया हो।

अधिकृत कटौतियाँ
(Authorised Deductions)

मजदूरी में से की जाने वाली कटौतियाँ {धारा 7}
(Deduction which may be made from Wages)

1. **अधिकृत कटौती के अलावा अन्य कोई कटौती नहीं करना** - रेलवे अधिनियम की धारा 47 की उपधारा (2) के प्रावधानों के उपरान्त भी कर्मचारी की मजदूरी का भुगतान इस अधिनियम में अधिकृत कटौती को छोड़कर बिना किसी प्रकार की कटौती के किया जायेगा।

2. **कटौतियों के प्रकार** - मजदूरी में से की जाने वाली 'कटौतियाँ केवल इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही की जायेंगी।' कटौतियाँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं:

अधिकृत कटौतियाँ [धारा 7(22)]

1. जुर्माने की रकम में कटौती।
2. ड्यूटी पर अनुपस्थिति के लिए कटौती।
3. माल या धन की क्षति के लिए कटौती।

4. मकान-सुविधा के लिए कटौती।
5. नियोक्ता द्वारा दी गई सुविधाओं के लिए कटौती।
6. ऋण की वसूली के लिए कटौती।
7. अग्रिम दी गयी राशि की कटौती।
8. मकान निर्माण हेतु दिये गये ऋण की कटौती।
9. आय-कर के सम्बन्ध में कटौती।
10. प्रॉविडेण्ट फण्ड के लिए कटौती।
11. राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए कटौती।
12. सहकारी-समिति तथा बीमा योजना के लिए कटौती।
13. न्यायालय के आदेश पर कटौती।
14. गारण्टी बॉण्ड के लिए प्रीमियम की कटौती।
15. जाली सिक्के स्वीकार करने के सम्बन्ध में कटौती।
16. हिसाब-किताब में त्रुटि के लिए कटौती।
17. त्रुटिवश दी गयी छूट के लिए कटौती।
18. मूल्य वसूल न करने के लिए कटौती।
19. प्रधानमन्त्री राहत कोष के लिए कटौती।
20. बीमा योजना में अंशदान के लिए कटौती।
21. कर्मचारी या उसके परिवार के कल्याण हेतु स्थापित फण्ड में अंशदान के लिए कटौती।
22. पंजीकृत श्रम संघों की सदस्यता शुल्क के लिए कटौती।

कटौतियां निम्नलिखित सीमा से अधिक नहीं होगी:

(i) यदि कटौतियां उपधारा (2) के वाक्य (ज) के अंतर्गत पूर्णतः या अंशतः सहकारी समितियों का भुगतान करने के लिए की गयी हो तो मजदूरी का 75 प्रतिशत तथा

(ii) अन्य दशा मे ंमजदूरी का 50 प्रतिशत

यदि कुल कटौतियां उपर्युक्त 75 प्रतिशत या 50 प्रतिशत से अधिक हों तो आधिक्य (Excess) की वसूली उस रीति से की जायेगी जो इस सम्बन्ध में निर्धारित की जाय।

प्रशासन
(Administration)

अधिनियम की धारा 12 के अनुसार फैक्टरी निरीक्षक को इस अधिनियम के लिए भी निरीक्षक माना जायेगा। इसके अलावा राज्य सरकारों को भी यह अधिकार दिया गया है कि वह विशिष्ट कारखानों और विशिष्ट क्षेत्रों के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि यदि हमें इस अधिनियम के अंर्तनिहित उद्देश्यों को प्राप्त करना है तो हमें इस अधिनियम के क्रियान्वयन और प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना होगा। श्रम प्रशासन और संबंधित मामलों की जांच करने के लिए अलग जांच विभाग की स्थापना करना बहुत उपयोगी होगा। अतः इस नियम का उद्देश्य शोषक वर्ग अथवा नियोक्ताओं से श्रमिकों के हितों की रक्षा करना है।

अध्याय-17
औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
(The Industrial Dispute Act, 1947)

अधिनियम का उद्देश्य
(The object of the Act)

वर्तमान औद्योगिक युग में औद्योगिक अशान्ति देश की एक गम्भीर समस्या है। नियोक्ताओं और श्रमिकों में कई बातों को लेकर मतभेद बने रहते हैं। हड़ताल और तालेबंदी आज के युग में बहुत अधिक गंभीर रूप धारण कर रही हैं। प्रस्तुत अधिनियम औद्योगिक संघर्षो का निबटारा करने के विभिन्न तंत्र की व्यवस्था करता है। अधिनियम का उद्देश्य औद्योगिक शांति बनाए रखना तथा श्रमिकों और नियोक्ताओं के संबंधों में सुधार करना है ताकि हड़ताल और औद्योगिक संघर्षो के फलस्वरूप श्रमिकों तथा नियोक्ताओं को अनेक हानियाँ उठानी पड़ती हैं जिनका प्रभाव देश के औद्योगिक विकास पर भी पड़ता है। स्वतन्त्र न्यायालय, परस्पर वार्तालाप तथा समझौते आदि के द्वारा औद्योगिक विवादों का निबटारा करना तथा औद्योगिक शांति देश में बनाए रखना मुख्य उद्देश्य है।

इस प्रकार हम इन उद्देश्यों को दो मुख्य भागों में बाँट सकते हैं (क) औद्योगिक शांति की स्थापना तथा (ख) आर्थिक न्यायालय। आज उद्योग की सम द्धि के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन कार्य निर्बाध रूप से चलता रहे। यह तभी सम्भव है जब हड़ताल, तालेबन्दी आदि के रूप में कोई बाधा या गतिरोध उत्पन्न न हो। औद्योगिक विवादों के अंत होने पर ही औद्योगिक शांति की स्थापना हो सकती है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की प्रमुख विशेषताएँ

इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार हैं :

1. हड़ताल व तालाबन्दी में भाग लेने वाले व्यक्तियों के संरक्षण की व्यवस्था की गई है।
2. विवाद उत्पन्न न हों इसके लिए कार्यशाला समितियों की व्यवस्था की गई है।
3. नियोक्ता व श्रमिकों के बीच मतभेद समझौता कराने के लिए समझौता अधिकारी, समझौता बोर्ड तथा जांच समितियों के गठन का प्रावधान है।
4. विवाद होने पर उनके निबटारों के लिए वह निर्णय के लिए श्रम न्यायालय, औद्योगिक ट्रिब्यूनल, राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल तथा पंच निर्माण की व्यवस्था की गई है।
5. जनोपयोगी सेवा संस्थानों तथा अन्य संस्थानों में हड़ताल एवं तालेबन्दी पर विशेष प्रतिबंध लगाए गए हैं।
6. श्रमिकों की छंटनी, काम देने से इंकार, कामबन्दी, सेवा की शर्तो में परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में नियोक्ताओं पर विशेष प्रावधान लागू किये गये हैं।
7. अवैध हड़ताल, अवैध तालेबन्दी, हड़ताल या तालाबन्दी को भड़काने, मदद करने के लिए दण्ड व सजा की व्यवस्था की गयी है।
8. व्यक्तिगत विवाद को हल करने के लिए इसे शिकायत निपटान अधिकारी को सन्दर्भित करने की व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक ऐसे संस्थान में जहाँ 100 या अधिक श्रमिक कार्यरत हों, यह व्यवस्था अनिवार्य बना दी गयी है।

9. श्रमिकों, श्रमसंघों तथा नियोक्ताओं के द्वारा किए जाने वाले अनुचित आचरणों की व्याख्या की गयी है तथा इनके लिए दण्ड की व्यवस्था भी।
10. 'उद्योग' शब्द की व्याख्या व्यापक अर्थ में की गयी है।
11. 'श्रमिक' शब्द को भी अधिक व्यापक बना दिया गया है और निरीक्षक सम्बन्धी कार्य करने वाले ऐसे व्यक्ति को भी श्रमिक में शामिल कर दिया गया है जिसका मासिक वेतन, 1,600 रूपये तक हो।
12. औद्योगिक संस्थान को बन्द करने पर प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के प्रकाश में नवीन प्रावधान लागू किए गए हैं।
13. लघु संस्थानों में छंटनी, कामबन्दी तथा संस्थान बन्द करने के सम्बन्ध में नए प्रावधान जोड़े गए हैं ताकि इनमें कार्यरत श्रमिकों के हितों की रक्षा हो सके।
14. उपयुक्त सरकार चाहे तो विशेष नियम बना सकती है तथा जनहित की द ष्टि से वह अनुसूची 1 में किसी भी उद्योग को शामिल कर सकती है।

अब हम औद्योगिक संघर्ष अथवा विवाद अधिनियम 1947 की चर्चा विस्तार से करेंगे।

उद्योग की परिभाषा
(Definition of Industry)

मानवीय आवश्यकताओं या इच्छाओं की सन्तुष्टि के प्रयोजन के लिए किसी माल या सेवाओं के उत्पादन, पूर्ति अथवा वितरण करने के लिए नियोक्ता तथा उसके श्रमिकों के परस्पर सहयोग द्वारा संचालित किसी भी व्यवस्थित क्रिया-कलाप (Systematic activity) को उद्योग कहा जायेगा। केवल आध्यात्मिक या धार्मिक प्रकृति की आवश्यकताओं या इच्छाओं के पूर्ति की जाने वाली क्रिया उद्योग की श्रेणी में नहीं जाएगी। उद्योग के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक नहीं हें-

(i) लाभ कमाने का उद्देश्य; या

(ii) पूंजी का विनियोग।

उद्योग में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

(a) गोदी श्रमिक (रोजगार नियमन) अधिनियम, 1948 की धारा 5ए के अंतर्गत सम्पादित गोदी श्रम-मण्डल की कोई भी क्रिया;

(b) किसी संस्थान द्वारा विक्रय या व्यापार अथवा दोनों के संवर्द्धन हेतु संचालित कोई क्रिया।

उद्योग में निम्नलिखित शामिल नहीं हैं:

1. कृषि सम्बन्धी कोई क्रिया (ऐसी किसी क्रिया को छोड़कर जो प्रमुख रूप से उपयुक्त क्रिया के साथ समन्वित रूप से की जाती हो); अथवा
2. सरकार की कोई भी क्रिया जो सार्वभौमिक कार्यो (Sovereign Function) से सम्बन्ध रखती है। इसमें केन्द्रीय सरकार के उन विभागों द्वारा संचालित क्रियाएँ भी शामिल हैं जो प्रतिरक्षा-अनुसंधान, परमाणु-ऊर्जा तथा अन्तरिक्ष से संबंध रखते हैं; या
3. चिकित्सालया या औषधालय; अथवा
4. शैक्षणिक, व वैज्ञानिक, शोध या प्रशिक्षण संस्थानें; अथवा
5. ऐसी संस्थाएं जो उन संगठनों के स्वामित्व या प्रबंध में हैं जो पूर्णतः या अधिकांशतः किसी पुण्यार्थ, सामाजिक या लोकोपकारी सेवा में संलग्न हों।
6. खादी या ग्रामोद्योग; अथवा
7. कोई भी घरेलू सेवा; या
8. व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की संस्था संचालित कोई पेशा यदि इसमें दस से कम व्यक्ति नियुक्त हों; अथवा

9. सहकारी समिति अथवा क्लब अथवा व्यक्तियों की इसी प्रकार की किसी संस्था द्वारा संचालित क्रिया यदि इसमें दस से कम व्यक्ति नियुक्त हों।

इस अधिनियम में 'उद्योग' शब्द का व्यापक अर्थ लिया गया है। वे समस्त उद्योग जो व्यक्तियों (Individuals) अथवा व्यक्तियों के समूहों (Association of Individuals) के द्वारा चलाए जाते हैं, इस अधिनियम के क्षेत्र में आते हैं। यह निर्णय Western Automobile Association Vs. The Industrial Tribunal, Bombay and Others के मामले में दिया गया।

उद्योग के लिए नियोक्ता तथा श्रमिक का सहकारी प्रयत्न एक आवश्यक तत्व है। स्वामित्व तथा हस्तान्तरणीयता भी उद्योग के लिए जरूरी है। इस अधिनियम में उद्योग की परिभाषा नियोक्ता तथा श्रमिक दोनों के द ष्टिकोणों को ध्यान में रखकर दी गयी है। बंगलौर वाटर सप्लाई एण्ड सीवरेज बोर्ड बनाम राजप्पा के मामले में सन् 1978 में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में "उद्योग" के संबंध में निम्नलिखित महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

1. उद्योग में केवल भौतिक सेवाओं एवं वस्तुओं का समावेश किया गया है। धार्मिक तथा आध्यात्मिक सेवाएं शामिल नहीं की जाती हैं।
2. नियोक्ता तथा श्रमिक के सहयोग से किसी वस्तु के उत्पादन, वितरण तथा सेवा हेतु संचालित सुव्यवस्थित क्रियाकलाप या उपक्रम "उद्योग" कहा जाएगा।
3. लाभ की प्राप्ति का उद्देश्य उद्योग के लिए महत्वपूर्ण तत्व नहीं है चाहे उद्योग निजी क्षेत्र में हो या सार्वजनिक क्षेत्र या मिश्रित क्षेत्र में।

औद्योगिक विवाद
(Industrial Dispute)

औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के अनुसार औद्योगिक विवाद का तात्पर्य नियोक्ताओं के बीच या नियोक्ताओं और रमिकों के बीच किसी झगड़े अथवा मतभेद से है जो किसी भी व्यक्ति की नियुक्ति, सेवा समाप्ति या रोजगार की शर्तो या श्रम की दशाओं से सम्बन्धित हों। इस परिभाषा के अनुसार औद्योगिक संघर्ष एक श्रमिक व उसके नियोक्ता के बीच अथवा अनेक श्रमिकों व नियोक्ताओं के बीच हो सकता है। विभिन्न औद्योगिक संस्थानों के नियोक्ताओं के बीच तथा स्वयं श्रमिकों के बीच होने वाले भी औद्योगिक संघर्ष की श्रेणी में आते हैं।

काम देने में असमर्थता
(Lay off)

कोयले, शक्ति, कच्चे माल की कमी या माल के संग्रह या मशीनरी की खराबी या टूट-फूट अथवा प्राकृतिक विपदा अथवा अन्य सम्बन्धित किसी कारणवश नियोक्ता की असफलता, इन्कार या असमर्थता से संस्थान के उन श्रमिकों को जिनका नाम मस्टर रोल पर है और जिनकी छंटनी नहीं की गयी है, यदि काम नहीं मिल पाता है तो इसे काम देने में असमर्थता या काम देने से इंकारी (lay off) कहा जाएगा।

यदि श्रमिक को किसी दिन किसी पाली के प्रारम्भ में काम देने की अपेक्षा पाली के दूसरे अर्द्ध-भाग में उपस्थित होने को कहा जाय तथा काम दिया जाय तो ऐसा माना जायेगा कि वह आधे दिन के लिए 'काम देने से इंकार किया गया' (laid off) है।

यदि श्रमिक के इस प्रकार के काम के लिए उपस्थित होने पर भी उसे काम नहीं दिया जाता है तो उसे उस दिन उस पाली के अर्द्ध-भाग के लिए "काम देने से इंकार किया गया" (laid off) माना जायेगा तथा उस दिन के उस भाग के लिए यह पूर्ण मूल वेतन तथा महंगाई-भत्ते का अधिकार होगा।

तालाबन्दी
(Lock-out)

तालाबन्दी से आशय नियोक्ता द्वारा नियुक्त कर्मचारियों की किसी भी संख्या को काम पर जारी न रखने के लिए रोजगार के स्थान को अस्थायी रूप से बन्द करने या काम को स्थगित करने या काम देने से इंकार करने से है।

छंटनी
(Retrenchment)

छंटनी से अभिप्राय अनुशासन सम्बन्धी दण्ड के अतिरिक्त किसी भी कारण से नियोजन द्वारा कर्मचारी की सेवा समाप्त करने से है। परन्तु निम्नलिखित छंटनी में सम्मिलित नहीं है:

(a) स्वेच्छा से कर्मचारी की सेवा निव त्त होना।

(b) यदि नियोक्ता एवं कर्मचारी के अनुबंध में उच्चतम अवस्था (Superannuation) की कोई शर्त हो तो कर्मचारी के उस अवस्था तक पहुंचने पर।

(c) अनुबन्ध का नवीनीकरण नहीं होने के कारण कर्मचारी की सेवा समापत हो जाने पर।

(d) लगातार बीमारी के आधार पर कर्मचारी की सेवा का अन्त होने पर।

1. म्युनिसिपल कारपोरेशन ऑफ ग्रेटर बाम्बे बनाम लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल ऑफ इंडिया (Municipal Corporation of Greater Bombay vs. Labour Appellate Tribunal of India) के मामले में यह निर्णय दिया गया कि 'छंटनी' का आशय अतिरिक्त (Surplus) श्रमिकों को या कर्मचारी वर्ग को सेवा से अलग करना है। किसी अन्य कारण से सेवा का अनुबन्ध समाप्त करना 'छंटनी' की श्रेणी में नहीं आयेगा।
2. एक अन्य मामले में यह निर्णय दिया गया कि यदि व्यवसाय किसी यथार्थ (Bonafide) कारणवश बन्द हो जाता है तो श्रमिकों की छंटनी (सेवा-मुक्ति) के लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाएगी।

छंटनी का आशय नियोक्त द्वारा अतिरिक्त श्रमिकों (Surplus number of labours) को अलग करने से है। विभिन्न न्यायालयीन निर्णयों में यह सिद्ध हो चुका है कि निम्नलिखित छंटनी की श्रेणी में आयेंगे।

1. काम सीखने वाले व्यक्ति को काम सीखने का प्रशिक्षण पूरा कर लेने के बाद निकाल देना।
2. ठेके की अवधि बढ़ने पर श्रमिकों को अलग कर देना।
3. नियोक्ता द्वारा किसी भी कारण से (सेवा निव त्ति, निरंतर बीमारी, स्वेच्छा से लाभ को जोड़कर) श्रमिक को हटा देना।

हड़ताल
(Strike)

श्रमिक से अभिप्राय किसी भी व्यक्ति (जिसमें काम सीखने वाला व्यक्ति भी शामिल है) से है जो किसी उद्योग में रोजगार को स्पष्ट अथवा गर्मित शर्तो के अन्तर्गत मजदूरी या पुरस्कार के बदले शारीरिक, अकुशल, कुशल, तकनीकी, संचालन संबंधी, लेख संबंधी या निरीक्षण सम्बन्धी कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया हो। इस अधिनियम के अंतर्गत, औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित किसी कार्यवाही के उद्देश्य से श्रमिक में ऐसा व्यक्ति भी शामिल है जो विवाद के सम्बन्ध में निकाल दिया गया हो या अलग कर दिया गया हो जिसकी छंटनी कर दी गयी हो या जिसके निकालने, अलग करने या छंटनी करने से उक्त विवाद उत्पन्न हुआ हो। किन्तु वायु सेना, थल सेना, नौसेना, पुलिस सेवा प्रशासकीय

भारत में औद्योगिक विवादों को रोकने व सुलझाने के उपाय
(Prevention and Settlement of Industrial Disputes in India)

विवादों की रोकथाम
(Prevention of Disputes)

उपचार की अपेक्षा बचाव सदैव ही अच्छा होता है इसलिए हम सर्वप्रथम उन उपायों का विवेचन करेंगे जो कि देश से होने वाले औद्योगिक विवादों की रोकथाम कर सकें। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है - राष्ट्र की तात्कालिक आवश्यकता यह है कि पूँजी और श्रम की खाई को कम किया जाए तथा मालिकों व श्रमजीवियों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्न किए जाएं। मालिकों के द ष्टिकोण में न केवल परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिससे वे श्रमिकों के कल्याण

में निजी रूप से अध्काक रूचि ले सकें वरन् इस सम्बन्ध्ण में कई अन्य पग उठाये जाने की आवश्यकता है। प्रथम उपाय तो यह है कि ऐसे शक्तिशाली श्रमिक संघों का विकास हो जिनकी प्रबन्धकर्ताओं तक पहुंच हो।

शक्तिशाली श्रमिक संघ और सामूहिक समझौते

(Strong Trade Unions and Collective Agreements):

श्रमिक संघों के अध्याय में हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि मालिकों व म दु संबंध बनाये रखने में शक्तिशाली श्रमिक संघों के क्या लाभ हैं। श्रमिक संघ मालिकों से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत कर सकते हैं और इस प्रकार हड़ताल होने के इस मुख्य कारण को दूर कर सकते हैं क्योंकि अनेक बार हृदय मध्यस्थ मालिकों के समक्ष श्रमिकों का प्रतिनिधित्व उचित रूप से नहीं करते। मालिकों के लिए यह भी सम्भव नहीं होता कि वे व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक कर्मचारी से मिलें और उनके कष्टों का निवारण करने का प्रयत्न करें। मालिक श्रमिक संघों में श्रमिकों का हृदय पायेंगे और यदि एक बार हृदय सन्तुष्ट हो गया तो मालिक इस बात का विश्वास कर सकते हैं कि फिर शिकायत का अवसर न होगा। मालिकों को यह अनुभव कर लेना चाहिए कि पारस्परिक सम्बन्ध मधुर बनाये रखने के लिए श्रमिक संघ एक आवश्यक और उचित साधन है। एकता और सामूहिक रूप से कार्य करने से श्रमिकों को भी लाभ होता है क्योंकि वे मालिकों की द ढ़ सौदाकारी शक्ति कार तब सामना कर सकते है ंऔर इस प्रकार मालिकों से उचित व्यवहार पा सकते हैं। श्रमिकों द्वारा सामूहिक रूप से लिये गये निर्णयों की मालिकों द्वारा सरलता से उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक संघ अपने संगठन में मजबूत और अच्छे हों और श्रमिकों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हों। भारत के श्रमिक संघ आंदोलन में कई प्रकार के गम्भीर दोष हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। इन दोषों को दूर कर देने से एक शक्तिशाली श्रमिक संघवाद का विकास होगा और यह बात औद्योगिक अशान्ति को रोकने के लिए प्रभावशाली साधन सिद्ध होगी।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भारत के अनेक औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों और मालिकों के बीच समझौते हुए हैं। ऐसे समझौते औद्योगिक शान्ति के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। इनका स्वागत करना चाहिये। ये समझौते औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिए सामूहिक सौदाकारी की महत्ता को प्रकट करते हैं और यह आशा की जा सकती है कि सम्पूर्ण भारत में श्रमिक संघों और प्रबन्धकों द्वारा ऐसे समझौते अनुकरणीय होंगे। सामूहिक सौदाकारी (Collectgive Bargaining) से आशय श्रमिकों व प्रबन्धकों की ओर से किये जाने वाले उन संगठित प्रयासों से होता है जो कि वे काम की दशाओं, मजदूरी व नौकरी के विभिन्न पहलुओं पर बातचीत के लिए इसलिए करते हैं ताकि किसी समझौते पर पहुंचा जा सके। इस प्रकार, यह बातचीत की एक प्रक्रिया है, सार्थक संवाद है तथा ठोस प्रयास है, जिसके अंतर्गत कि दोनों ही पक्ष एक-दूसरे को समझाने की कोशिश करते हैं और किसी निर्णय पर पहुंचते हैं। यदि कोई श्रमिक व्यक्तिगत रूप से बातचीत करे तो उस असंगठित रूप में वह सभी लाभ प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता। अतः सामूहिक सौदाकारी ही केवल ऐसा तरीका है जिसके द्वारा वह उद्योग की अनुचित प्रतियोगिता से अपनी रक्षा कर सकता है। इसके बाद, पुनः यदि कोई विवाद खड़ा होता है तो सामूहिक समझौता मालिकों को भी संरक्षण प्रदान करता है।

तथापि, सामूहिक सौदाकरी की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि संघ काफी शक्तिशाली हों,ख मालिकों द्वारा वे मान्यता प्राप्त हों, दोनों पक्षों को एक दूसरे पर विश्वास हो और उद्योग के प्रति अपने कर्तव्यों के बारे में वे पूर्णतया जागरूक हों। भारत में श्रमिक संघों व प्रबन्धकों के बीच विगत वर्षो में यद्यपि अनेक समझौते हुए हैं (उदाहरण के लिए अहमदाबाद, बम्बई, जमशेदपुर, मोदीनगर व मैसूर में और रसायन, पैट्रोल, तेल-परिष्करण, विद्युत सामग्री, ऐलुमिनियम, मोटरों की मरम्मत आदि के उद्योग में) किन्तु सामूहिक सौदाकारी ने अनेक कारणोंवश इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं की है। हमारे देश में श्रमिक संघ आंदोलन अधिक द ढ़ नहीं हो सका है। इसके अनेक कारण रहे हैं जिनका उल्लेख विस्तार से अध्याय 5 में किया जा चुका है। हमारे देश में श्रमिक संघों की बहुलता है, मालिकों के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वे श्रमिक संधों को मान्यता दें विभन्न पक्षों का दर्जा क्या हो एवं आर्थिक शक्ति किसके हाथ में रहे इस विषय में काफी मतभेद हैं, दोनों पक्ष एक-दूसरे पर अधिक विश्वास नहीं करते और मालिक व श्रमिक दोनों ही परस्पर बातचीत द्वारा मामले को सुलझाने की बजाय सरकार की ओर ताकना पसन्द करते हैं। किन्तु इस सब के बावजूद, इस दिशा में पग उठाया जा चुका है और अनेक स्थानों पर सामूहिक समझौते सम्पन्न हुए हैं। जैसा कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सिफारिश की है, व्यापक क्षेत्र में इनका अधिकाधिक विस्तार निश्चित ही वांछनीय है।

औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिए जो अन्य महत्वपूर्ण पग उठाये गये हैं वे निम्नलिखित हें - (क) प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग (Workers participation in Management), (ख) अनुशासन संहिता (Code of Discipline), (ग) आचारण संहिता (Code of Conduct), (घ) शिकायत निवारण क्रियाविधि (Grievance Procedure), (ङ) औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution), 1962, (च) मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन समितियाँ तथा प्रभाव (Evaluation and Implementation Committees and Division) और (छ) परामर्शदात्री व्यवस्था (त्रिदलीय श्रम व्यवस्था)। इनमें से प्रथम पाँच का उल्लेख परिशिष्ट 'ग' में किया गया है।

मालिक मजदूर समितियाँ

(Works Committee)

उनके कार्य और महत्व

(Functions and Importance)

औद्योगिक विवादों को रोकने और सुलझाने में मालिक-मजदूर समितियाँ महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। उद्योग की अलग-अलग प्रत्येक संस्था में औद्योगिक अशानित को रोकने के लिये ये समितियाँ बहुत उपयुक्त हैं। ये मतभेदों को पारस्परिक बातचीत द्वारा दूर करने के लिए परामर्शदात्री व्यवस्था करती हैं। इनमें मालिकों व श्रमिकों दोनों के ही प्रतिनिधि होते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि संस्थान की सीमा में ही पारस्परिक सद्-इच्छा और मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाकर दिन-प्रतिदिन की समस्याओं पर विचार-विमर्श करें। इन समितियों में मालिक व श्रमिक इस प्रकार नहीं मिलते जिस प्रकार किसी संघर्ष को निपटाने के लिये सलाहकार के सम्मुख आते हैं वरन् दो मित्रों की भांति पारस्परिक विचार-विमर्श से अपने विवादों को शीरघ्र एवं शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने और मतभेदों को दूर करने के लिये मिलते हैं। ये समितियां प्रबन्धकों और कर्मचारियों दोनों से ही सम्बन्धित दिन-प्रतिदिन के उन पारस्परिक प्रश्नों पर विचार करती हैं जो उत्पादन तथा कार्य व रोजगार की दशाओं की सभी बातों से सम्बन्धित होते हैं और इनका सम्बन्ध श्रमिकों के दैनिक जीवन से होता है। यदि इन समस्याओं का प्रारम्भिक अवस्था में सफलतापूर्वक उपचार नहीं किया जाता तो ये विषय विवाद उत्पन्न कर सकते हैं। मालिक मजदूर समितियां अलग-अलग संस्थाओं में इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार विमर्श करने में सहायक होती हैं। औद्योगिक शान्ति की नींव प्रत्येक संस्थान में डाली जानी चाहिए और यह नींव इस प्रकार पड़ सकती है कि दिन-प्रतिदिन की समस्याओं पर अलग-अलग संस्थानों में सावधानी से विचार किया जाये। इस प्रकार औद्योगिक विवादों को रोकने में मालिक-मजदूर समितियों का बहुत महत्व है। प्रारम्भिक अवस्था में दोनों पक्षों में समझौता करा देना, जबकि किसी ने भी इसको अपने सम्मान का प्रश्न नहीं बनाया होता, अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि तत्पश्चात् सम्बन्धित पक्ष अपनी बात पर अड़ जाते हैं और विवाद बढ़ जाता है। इस द ष्टिकोण से भी औद्योगिक विवादों को रोकने में मालिक-मजदूर समितियों की अधिक उपयोगिता है। इन समितियों से श्रमिक को इस बात की भी शिक्षा मिल सकती है कि वे अपनी उत्तरदायित्वों को रोकने तथा बातचीत द्वारा उन्हें सुलझाने, दोनों द ष्टियों से महत्वपूर्ण हैं।

मालिक मजदूर समितियों के कार्यों में बाधायें

(Limitations of Works Committees)

रॉयल श्रम आयोग ने इस प्रकार की मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना करने की सिफारिश की थी और कुछ समितियां बनीं भी। परन्तु अहमदाबाद को छोड़कर जहां गांधी जी के प्रभाव के कारण ये समितियां सफल हो सकीं। अन्य स्थानों में ये सन्तोषजनक प्रगति नहीं कर सकीं। उनके निर्माण एवं कार्यविधि में अनेक कठिनाइयों का अनुभव किया गया, जो आज तक भी पाई जाती हैं। मालिक ऐसी समितियों को श्रमिक संघों का प्रतिस्थापन (Substitute) समझते हैं, जबकि श्रमिक संघ के नेता इन्हें अपना प्रतिद्वंद्वी (Rival) समझते हैं और उनके विचार से इन्हें कोई भी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। अतः दोनों ही पक्षों में गलतफहमी है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि पिछली त्रुटियों को दूर किया जाये व मालिक-मजदूर समितियों के कार्यो को उचित रूप से समझा जाए। अन्य देशों में इस प्रकार की समितियां अत्यंत सफल हुई हैं। परन्तु भारत में अब तक इनकी प्रगति बहुत धीमी रही है। भारत में श्रमिकों में शिक्षा की कमी ऐसी समितियों की स्थापना में बड़ी बाधा है। पश्चिमी देशों में ऐसी स्थिति नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जहां श्रमिक संघ हों सबको मिलकर कार्य करना चाहिए।

श्रमिकों के कल्याण कार्य की समस्या इतनी विस्त त व गम्भीर है कि कोई एक पक्ष इसको सरलतापूर्वक नहीं सुलझा सकता। हमें उन बातों को ध्यान में रखना चाहिये, जिनका देश में कल्याण योजनाओं पर प्रभाव पड़ा है या जो प्रभाव डाल सकती हैं। उदाहरणार्थ, श्रमिकों की प्रवासिता, प्रभावशाली श्रमिक संघों का अभाव तथा श्रमिक संघों में धन का अभाव, श्रमिकों में अत्यधिक निरक्षरता, असंगठित श्रमिकों की बड़ी संख्या (जिनके लिए कल्याण योजनाओं का एक प थक् संगठन बनाने की आवश्यकता है) तथा अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्यायें जो इस देश में अन्य देशों से अधिक तीव्र हैं। दूसरे देशों में ऐच्छिक रूप से बनी संस्थायें हैं, जैसे - औद्योगिक क्लांन्ति व स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थायें, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान व मनोवैज्ञानिक संस्थायें तथा कल्याण समितियाँ आदि। ये सब संस्थायें मौलिक अन्वेषण तथा प्रचार द्वारा औद्योगिक कल्याण के क्षेत्र में अग्रणी होकर कार्य कर रही हैं। ऐसे ऐच्छिक संगठनों की हमारे देश में भी भारी आवश्यकता है। उपर्युक्त कठिनाइयों को बहाना बना कर हमें कल्याण कार्यो की ओर कम ध्यान नहीं देना चाहिये। प्रयत्न तो इस बात के होने चाहिए कि इन समस्त बातों को ध्यान में रखते हुए हम ऐसे व्यावहारिक कदम उठायें जिनसे हमारे देश के श्रमिकों का हित हो सके।

समझौता या संराधन-अधिकारी
(Conciliation Officer)

नियुक्ति - समुचित सरकार संराधन अधिकारी की नियुक्ति राजपत्र में विज्ञापन प्रकाशित करके नियुक्त कर सकती है। नियुक्ति स्थायी या अस्थायी, अथवा किसी क्षेत्र-विशेष या उस क्षेत्र में स्थित किन्हीं उद्योगों या प्रतिष्ठान-समुदाय के लिए होती है। समझौता-अधिकारियों की योग्यता एवं संख्या के बारे में सरकार का विवेकाधिकार ही निर्णायक होता है। यदि एक से अधिक समझौता-अधिकारी नियुक्त होते हैं तो उनके क्षेत्राधिकार को भी स्पष्ट रूप से बता दिया जायेगा। न्यूजीलैण्ड में इस कार्य के लिए निरीक्षक नियुक्त किये जाते हैं। वे पक्षकारों के साथ वार्ता करके कोई समाधान निकालने और अधिकारण के पास मामला भेजने के पहले देनों पक्षों में किसी मान्य आधार पर समझौता कराने का प्रयास करते हैं। औद्योगिक विवादों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं से पुर्णतया परिचित व्यक्तियों की ही इस पद पर नियुक्ति की जानी चाहिये।

टाटा केमिकल्स बनाम वर्कमेन-टाटा केमिकल्स के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निपटारे की परिभाषा में अन्तर्निहित दो प्रकार के निपटारे का स्पष्टीकरण दिया है। एक निपटारा वह है जो किसी समझौता कार्यवाही के बीच होता है और दूसरा निपटारा वह है जो नियोजक और कर्मकारों के बीच लिखित करार द्वारा किया जाता है। वह किसी समझौता कार्यवाही का परिणाम नहीं होता।

अधिकार और कर्तव्य - धारा 12 में वर्णित उपबन्धों के अनुसार संराधन अधिकारी का काम नियोजक एवं कर्मकार के मतभेदों को दूर करके उनके पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार लाना, मध्यस्थता और सामंजस्य स्थापित करना तथा उनके सामान्य हितों का स्पष्टीकरण करना होता है। सरकार उनकी नियुक्ति मात्र कर देती है, उन्हें कोई विवाद रिफ्फर (निर्देशित) नहीं करती। उन्हें अपने क्षेत्र में सदैव 'वाच डॉग' (प्रहरी) की तरह सचेत रहकर परिस्थितियों का अध्ययन करके स्वयं उचित कदम उठाना और कोई भी कार्यवाही करने के पूर्व यह देख लेना चाहिये कि क्या - (अ) उस विवाद पर उसका क्षेत्राधिकार है; और (ब) क्या वह औद्योगिक विवाद है?

उन्हें न्यायिक पद्धति से अपना काम करना चाहिये। दोनों पक्षों को अपनी-अपनी बातें प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिये। उनका काम मध्यस्थता और सामंजस्य स्थापित करना होता है। उनके अधिकार निम्नलिखित हैं -

1. पक्षकारों, साक्षियों और अन्य उपयुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करना तथा प च्छा करना।
2. उचित सूचना दे करके प्रतिष्ठान में प्रवेश करना।
3. किसी भी सुसंगत प्रपत्र को जमा करने का आदेश देना तथा निरीक्षण करना।

   बिहार राज्य बनाम कृपाशंकर जायसवाल के मामले में समझौता-अधिकारी द्वारा कराया गया समझौता इसी आधार पर अवैध ठहराया गया कि उसमें बिना नोटिस दिये ही स्थापना के परिसरों में प्रवेश किया था। नोटिस देना इसलिए आवश्यक है, ताकि इस बात की जानकारी हो जाय कि वह अजनबी व्यक्ति नहीं बल्कि समझौता अधिकारी है।
4. लोकसेवा के अधिकार से भी वे युक्त रहते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अनुसार उनकी कार्यवाही में अनुचित ढंग से व्यवधान डालने वाले व्यक्ति को उचित रूप से दंडित किया जा सकता है। इन सब बातों के लिए संराधन अधिकारी को सिविल प्रोसीजर कोड, 1908 में निहित अधिकार प्राप्त होंगे।

समझौता अधिकारी विवाद के विद्यमान हो जाने पर ही नहीं, अपितु उसके उत्पन्न होने की सम्भावना देख कर भी अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर सकता है; जैसे - नियोजकों और कर्मकारों के बीच में तनाव, प्रदर्शन, नारेबाजी और अन्य गतिविधियों से कुछ आभास तो मिल ही जाता है। कार्यवाही शुरू करने के पहले समझौता अधिकारी को निम्न बातों से समाधान हो जाना चाहिए।

1. सम्बन्धित विवाद औद्योगिक विवाद के अंतर्गत आता है।
2. ऐसा विवाद अस्तित्व में होना चाहिए अथवा उसके उत्पन्न होने की आशंका प्रतीत होनी चाहिए। उपयोगिता सेवाओं से संबंधित विवाद के लिए तत्काल कार्यवाही करना आवश्यक है।

सार्वजनिक उपयोगिता वाली सेवाओं से सम्बन्धित विवादों में धारा 23 के अंतर्गत हड़ताल की नोटिस दिये जाने पर उन्हें शीघ्रातिशीघ्र कोई उचित कदम उठाना चाहिये। उनका काम एक कैम्प से दूसरे कैम्प में जाना और यह जानकारी प्राप्त करना है कि दोनों पक्षकारों से सम्बन्धित ऐसे कौन से बिन्दु हैं जिन पर समझौता हो सकता है तथा समझौते का सामान्यतः मान्य उपाय ढूंढ निकालना होता है। कभी-कभी वह दोनों पक्षों की संयुक्त बैठकें बुला सकता है। नियोजक ऐसी बैठक में इसलिए आना पसन्द नहीं करते, क्योंकि प्रकारान्तर में इसका मतलब श्रमिक संघ को मान्यता देना होगा। इसलिए यह अलग-अलग बैठकें करके एक-दूसरे के द ष्टिकोण से दोनों पक्षों को अवगत करायेगा। ऐसी बैठकों के खर्च के सम्बन्ध में क्या नियम व्यवहृत किये जायेंगे, इसके निमित्त उच्चतम न्यायालय ने अपना मत व्यक्त किया है। (देखिए ए.आई.आर 1957, एस0सी0 276)। सन् 1982 ई. में संराधन अधिकारी को भी यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह भी किसी व्यघ्क्ति की प च्छा के लिए उसकी उपस्थिति बाध्य करने के साथ ही किसी भी दस्तावेज को मंगा कर निरीक्षण कर सकता है, जिसे वह औद्योगिक विवाद के लिए सुसंगत या किसी पंचाट के निष्पादन के सत्यापित करने के प्रयोजन से अथवा अधिनियम के अंतर्गत आरोपित किसी कर्तव्य के निर्वाह के लिए आवश्यक मानने का आधार रखता है। इसके लिए उसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत निहित सभी शक्तियां प्राप्त होंगी जिनका उपयोग वह किसी व्यक्ति को उपस्थित होने के लिए या उसकी प च्छा या दस्तावेजों को प्रस्तुत करने हेतु बाध्य कर सकता है। लेकिन समझौता अधिकारी को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह सदस्यों की जांच कर सके या शपथ पर उनका परीक्षण कर सके। अपंजीयित के साथ उत्पन्न हुए समझौते की बन्धनकारिता प्रबन्धक पर होगी। मेसर्स टाटा इंजीनियरिंग एण्ड लोकोमोटिव कम्पनी लि. बनाम उसके कर्मकार के मामले में कहा गया कि यदि भारी बहुमत से कम्पनी और कर्मकारों के बीच कोई समझौता होता है और थोड़े से ही कर्मकार उसका विरोध करते हैं, तो समझौता निष्पक्ष न्यायोचित, न्यायसंगत स्वीकार्य तथा प्रभावी माना जायेगा। यह सिद्ध करने का दायित्व ऐसे लोगों पर होगा जो समझौता कपट अथवा अनुचित दबाव या साधन द्वारा किया गया होने का दावा करते हैं। कर्मकार यूनियन द्वारा यह तथ्य साबित कियये बिना कि समझौते की घोषणा के नीचे कर्मकारों के हस्ताक्षर जाली और बनावटी हैं, तथा प्रपीड़न और मिथ्यावचन के आधार पर कराये गये हैं, समझौते को चुनौती नहीं दी जा सकती। औद्योगिक विवाद में समझौते सम्बन्धी घोषणा पत्र पर के प्रत्येक हस्ताक्षरकर्ता द्वारा इस प्राख्यान को कि वह संगठन का सदस्य है, उसी रूप में मानना होगा और उसके सम्बन्ध में उपधारणा करनी होगी कि वह मिथ्या है। समझौते को समेकित व्यवहार मानना होगा और उसके सम्बन्ध में उपधारणा करनी होगी कि वह मिथ्या है। समझौते को समेकित व्यवहार मानना होगा और उसके सम्बन्ध में उपधारणा करनी होगी कि वह मिथ्या है। समझौते को समेकित व्यवहार मानना होगा। उसे या तो पूर्णरूप स` स्वीकार करना होता है अथवा नामंजूर। समझौते की खंडशः जांच करना और कुछ भागों को अच्छा और स्वीकार्य तथा अन्य भागों को बुरा अभिनिर्धारित करना सम्भव नहीं है। उसे अऋजु और अन्यायोचित मानने में संभल कर कार्यवाही करनी होगी। उसकी कार्यवाही के समय हड़ताल और तालेबन्दी पर प्रतिबन्ध होगा। वह तथ्यों की जांच करके विवादग्रस्त पक्षों को एक मान्य समझौते पर लाने का प्रयास तथा परिसिंति विशेष में वह एकपक्षीय सुनवाई भी कर सकता है। उल्लेखनीय है कि उसके समक्ष वकील या अधिवक्ता किसी पक्ष के समर्थन के लिए उपसंजात नहीं हो सकते।

भारत पेट्रोलियम निगम का कर्मचारी संघ बनाम उसके कर्मकारगण में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि यदि समझौता की शत्रें स्पष्ट नहीं हैं अथवा उसमें कोई विसंगति है तो कथित पक्षकार समझौते की शर्तो के सम्बन्ध्ण में कोई स्पष्टीहकरण मांग सकता है।

अधिनियम की धारा 11(4) के उपलबन्ध के अनुसार यदि समझौता अध्किारी को प्रतीत होता है कि किसी अभिलेश को प्रस्तुत

करने का उचित आधार है और आवश्यक है और पंचाट का सत्यापन भी आवश्यक है तो समझौता अधिकारी अपने कर्तव्य पालन क`लिए उस अभिलेखउ को अपने पास मंगवा सकता है। और उसका निरीक्षण कर सकता है। फिर भी उसकी कार्यवाही न्यायिक प्रकृति की नहीं कही जा सकती।

कार्यवाही का प्रारम्भ और समाप्ति - कार्यवाही का प्रारम्भ उसी दिन से होता है जिस दिन से उसे हड़ताल या तालाबन्दी की नोटिस मिल जाय, या जब कोई विवाद उत्पन्न हो जाय या उत्पन्न होने की प्रबल आशंका हो। जब उपयोगिता सेवाओं से सम्बन्धित किसी विवाद के लिए समझौता अधिकारी को तत्काल तत्सम्बन्धी कार्यवाही करना आवश्यक है। इससे भिन्न सामान्य औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में समझौता अधिकारियों को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किए गए हैं जिनका उपयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए। धारा 20 (1) (2) के अनुसा इसे तब समाप्त माना जायेगा -

(अ) जब दोनों पक्ष में कोई समझौता हो जाय, या समझौता पत्र पर दोनों पक्षों या उनके प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हो जाएँ।

(ब) समझौता न होने की स्थिति में जब उसका प्रतिवेदन उपयुक्त सरकार को प्राप्त हो जाय।

(स) जब समझौता-अधिकारी के समक्ष कार्यवाही लम्बित रहते हुए विवाद किसी श्रम-न्यायालय, न्यायाधिकरण या राष्ट्रीय न्यायाधिककरण के समक्ष निर्णयार्थ प्रस्तुत कर दिया जाताा है।

समझौता होने पर वह अपने तथा विवादग्रस्त पक्षों के हस्ताक्षर से युक्त समझौता-पत्र को उचित सरकार के पास भेज देगा और यदि वह समझौता कराने में पूर्णतया विफल रहता है तो राज्य सरकार के समक्ष प्रतिवेदन में असफलता के कारणों के साथ समझौता कराने के ढंग का भी उल्लेख करेगा। फिर सरकार जैसा उचित समझेगी, उस दिशा में उचित कदम उठायेगी। यदि सरकार मामले को किसी अधिकारी के पास निर्दिष्ट करना उपयुक्त समझती है तो उसे न्याय-निर्णयन के लिए सौंप देगी, और यदि उसके विचारानुसार ऐसा करने का कोई कारण नहीं है तो सम्बन्धित पक्ष को सूचना भेज देगी। यदि सरकार कारणों को सूचित नहीं करती तो उसे उच्च न्यायालय से आदेश द्वारा कारण बताने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

समझौते की बाध्यता - समझोते के सभी पक्षकारों पर यह बाध्यकारी होगा। **वर्कमेन आफ मोटर ट्रान्सपोर्ट कं. लि. बनाम उसके प्रबन्धक** में उच्चतम न्यायालय ने अपने महत्वपूर्ण विनिश्चय में स्पष्ट किया है कि यदि समझौता अधिकारी के समक्ष प्रबन्धक एवं व्यवसाय संघ के बीच तय हुआ है तो वह कर्मकारों पर पूर्णतया प्रभावी होगा और यह माना जाएगा कि वह समझौता कर्मकारों की ओर से ही किया गया है। ब्रुक बान्ड इंडिया लि. बनाम उनके कर्मकारगण में इसी न्यायालय ने स्पष्ट कहा है कि जब तक उन पक्षकारों को जिन्होंने समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं व्यवसाय संघ की कार्यकारिणी के द्वारा अधिकृत नहीं कर दिया जाता तब तक संघ के पदाधिकारियों तथा प्रबंधकों के बीच हुए समझौते को धारा 2(1) में कोई विधिक मान्यता नहीं प्रदान की जा सकती।

प्रतिवेदन की अवधि - नियमतः समझौता अध्किारी को 14 दिन के अन्दर अपना प्रतिवेदन सरकार के पास प्रेषित करना होगा। लेकिन किन्हीं कारणों से ऐसा करना उसके लिए सम्भव न होने का यह मतलब नहीं होगा कि उसकी कार्यवाही स्वतन्त्र, शून्य और निष्प्रभावी हो जाएगी। दोनों विवादग्रस्त-पक्ष लिखित समझौता करके अवधि के बढ़ाये जाने की सरकार से प्रार्थना कर सकते हैं। स्टेट ऑफ बाम्बे बनाम ए.एम.के. बस सर्विस के वाद में बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय से यह स्पष्ट है कि 14 दिनों की अवधि के बाद भी समझौता अधिकारी कार्यविहीन (Defunct) नहीं माना जायेगा।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने समझौता-यंत्र को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए अपने प्रतिवेदन में यह संस्तुति की है कि इसे इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स कमीशन का अंग माना जाना चाहिये ताकि वह बाह्य प्रभावों से बच सके। इसके अतिरिक्त इस संबंध में और भी सिफारिशें की हैं - (अ) अधिकारियों का समुचित चयन, (ब) काम के पूर्व उचित प्रशिक्षण, (स) कार्यावधि में समयानुसार प्रशिक्षण।

समझौता बोर्ड

(Board of Conciliation)

(अ) गठन (Constitution) - समझौता बोर्ड के गठन का पूर्ण अधिकार समुचित सरकार को ही प्रापत है, जो इसकी घोषणा शासकीय राजपत्र में करेगी। बोर्ड के सदस्यों की संख्या या तो 3 या 5 अर्थात् सदैव विषम ही होगी। नियोजक तथा कर्मकार अपने प्रतिनिधियों के चयन करने में पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। इच्छानुसार वे किसी भी एक या दो सदस्य को बोर्ड की सदस्यता

के लिए भेज सकते हैं। स्मरण रहे कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर-बराबर होगी। लेकिन बोर्ड का अध्यक्ष किसी भी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाला पूर्ण रूप से एक स्वतन्त्र व्यक्ति होगा। उसकी नियुक्ति समुचति सरकार अपने विवेक से करेगी। दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को समझौता बोर्ड में रखने का उद्देश्य यह है कि वे एक स्थान पर बैठकर उपयुक्त ढंग से अपने पक्ष का स्पष्टीकरण मतभेदों को प्रकट तथा समर्थन कर और समाधान का तरीका ढूंढ निकालें। वार्ता के दौरान वे ही पक्षकारों के हित और अहित का ध्यान रखेंगे और उन्हीं कि हित संरक्षण का पूरा विश्वास होता है। यदि किन्हीं कारणों से सूचना प्राप्ति पर कोई पक्ष अपने प्रतिनिधि को नहीं भेजता, तो सरकार यह मान लेगी कि वह पक्ष अपने प्रतिनिधि को नहीं भेजना चाहता। ऐसी स्थिति में सरकार ही उस क्षण के लिए प्रतिनिधि का चयन और एतदर्थ नियुक्ति करेगी। सरकार द्वारा नियुक्ति के पश्चात् यदि वह पक्ष पुनः उन्हें नामिक करना चाहे, तो समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिसका समाधान इस धारा के प्रावधानों में नहीं मिलता।

बैठकें (Meetings) - आवश्यकतानुसार समय-समय पर बोर्ड की बैठकें हुआ करेंगी। लेकिन कोरम का पूरा होना अनिवार्य होगा। यदि बोर्ड 5 सदस्यी है, तो तीन और यदि मात्र तीन सदस्यीय हो, तो दो सदस्यों की उपस्थिति की कार्यवाही ही आगे बढ़ाने के लिए कोरम मानी जायेगी। अध्यक्ष के अनुपस्थित होने पर भी बोर्ड की बैठक हो सकती है, किन्तु समुचित सरकार द्वारा बोर्ड को यह सूचना दे देने पर कि उसके अध्यक्ष या किसी सदस्य की सेवाएं प्राप्त न हो सकेंगी, बोर्ड तब तक कार्य नहीं करेगा तब तक यथास्थिति नया अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त नहीं कर लिया जाता।

बोर्ड के कार्य - धारा 13 बोर्ड के कार्यो का उललेख करती है। बोर्ड के कार्य की प्रकृति न्यायिक नहीं होती। कोई समुचित सरकार द्वारा किसी विवाद के निर्दिष्ट करने पर ही अपना कार्य आरम्भ करेगा, विवाद के सारे तथ्यों की अविलम्ब जांच और उसके समाधान का यथाशीघ्र प्रयास करेगा, तथा दोनों पक्षों के हितों को ध्यान में रखकर उन सभी उपायों द्वारा प्रबन्ध करेगा, जिससे विवाद का कोई मान्य समझौता निकल जाये। किसी पक्ष पर समझौता करने के लिए अनुचित दबाव डालना ठीक नहीं। बोर्ड को सिविल प्रोसीजर कोड, 1908 के अंतर्गत अदालत दीवानी के कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनका उल्लेख अगले अध्याय में किया गया। यदि पक्षकारों के बीच कोई मान्य सद्भावपूर्ण समझौता हो सका है, तो समझौता बोर्ड का यह कर्तव्य है कि वह तत्सम्बन्धी प्रतिवेदन समुचित सरकार को यथाशीघ्र प्रेषित करे और प्रतिवेदन के साथ ही विवाद से सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित समझौता का ज्ञापन भी संलग्न किया जाना आवश्यक है। प्रतिवेदन सरकार के पास भेज दे। यदि किसी कारण से समझौता नहीं हो सका, तो प्रतिवेदन में बोर्ड अपने द्वारा किए गये प्रयासों और कारणों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए विवरण प्रस्तुत करेगा। सरकार के पास प्रतिवेदन या समझौता-पत्र प्रेषित करने का समय अधिनियम द्वारा निर्धारित 60 दिनों का ही है, लेकिन 60 दिन से अधिक समय की आवश्यकता महसूस करने पर उसे बढ़ाने के लिए दोनों पक्षों की लिखित एवं हस्ताक्षरित सहमति आवश्यक होगी।

समझौता प्रक्रिया न्याय-निर्णयन की पद्धति नहीं है क्योंकि जब समझौता की विफलता का प्रतिवेदन समुचित सरकार को प्रस्तुत किया जाता है तो उस आधार पर वह विवाद को श्रम न्यायालय या औद्योगिक अधिकरण को सन्दर्भित कर सकती है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि समझौता अधिकारी के कर्तव्यों को न्याय कर्तव्यों की संज्ञा दी जाए तो यह अनुपयुक्त होगा क्योंकि इस धारणा के परिणामस्वयप पक्षकारों में समझौता कराना सम्भव न हो सकेगा।

प्रतिवेदन का प्रारूप, प्राप्ति के बाद कार्यवाही प्रारम्भ एवं समाप्त होने का नियम, सरकार के पास प्रेषण पंचाट का प्रकाशन, उसका रूपभेदन निरस्तीकरण या परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में न्यायाधिकरण वाले अध्याय मे इन्हीं प्रकरणों से सम्बन्धित विवेचन देखें। यदि कोई पक्ष या संघ का मंत्री एतदर्थ लिखित प्रार्थना करता है तो बोर्ड अपनी कार्यवाहियों को गोपनीय रखेगा और तब उसका उल्लंघन दण्डनीय होगा।

निजी समझौते पर विवाद का समाप्त होना - यह प्रश्न बड़े विवाद का रहा है कि क्या निजी सझाम्ते से औद्योगिक विवाद समाप्त हो जाते हैं? जस्टिस एम.सी. छागला ने पूना मजदूर सभा बनाम जी.के. धुतियां और अन्य में निम्न सिद्धान्त प्रतिपादित किया है -

"औद्योगिक विवाद की प्रक्रिया के दौरान निजी समझौतों को औद्योगिक विधि में कोई मान्यता नहीं है। ऐसे निजी समझौते कोई महत्व नहीं रखते। हाँ, उनके द्वारा संविदात्मक अधिकार एवं कर्तव्य उत्पन्न हो सकते हैं। औद्योगिक विवाद तब तक समाप्त नहीं होते जब तक कि धारा 19(2) के अधीन ऐसे समझौते को प्रभावपूर्ण नहीं बनाया जाता। ऐसे समझौते सुलह कार्यवाही के दौरान उत्पन्न हो सकते हैं जो धारा 12 की भावनाओं के अनुकूल होंगे।"

"फिर भी जब पक्षकार किसी समझौते पर पहुंचते हैं तो विधि उस स्थिति में उसका अधिक महत्व प्रदान करती है। औद्योगिक विवाद समझौते किसी प्रकार के हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करते। फिर भी निजी समझौते अपनी नियत अवधि तक चलेंगे, कोई पक्षकार ऐसे समझौतों को न्यायालयों में चुनौती नहीं दे सकता।

समझौता अधिकारी बनाम समझौता बोर्ड

एक ही यंत्र के अभिन्न अंग होने पर भी उनके कार्यो में बहुत कुछ समानताएं तथा असमानताएं भी हैं, जिनका अलग-अलग विवेचन किया गया है -

समानताएं

1. दोनों की नियुक्ति समुचित सरकार के आदेश या संकेत पर होती है।
2. दोनों का मूल एवं पवित्र उद्देश्य औद्योगिक विवाद को हल करने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करना और मान्य समझौता कराने का प्रयास करना होता है।
3. दोनों के कार्य समाप्त कर लेने के सम्बन्ध में समय निर्धारित कर दिया गया है।
4. दोनों को अपना-अपना प्रतिवेदन एवं हस्ताक्षरयुक्त समझौता-पत्र समुचित सरकार के पास भेजना पड़ता है; जिनका प्रकाशन, रूपभेदन या क्रियान्वयन सरकार करती हैं।
5. दोनों को दीवानी अदालत के कुछ अधिकार प्राप्त हैं, जिससे वे सरलता से अपना कार्य सम्पादित कर सकें।
6. दोनों के लिए प्रार्थना पत्र दिये जाने पर कार्यवाही को गोपनीय रखना आवश्यक होता है (देखिए धारा 21)
7. यदि कोई विवाद उनके समक्ष प्रस्तुत और लम्बित है, तो उस अवधि में नियोजक कार्य-दशाओं में परिवर्तन नहीं कर सकता और यदि करता भी है, तो पूर्वाज्ञा लेकर। निष्कासन और निलम्बन के लिए भी पूर्वादेश प्राप्त करना आवश्यक होता है।
8. दोनों के स्थान समान रूप से रिक्त हो सकते हैं; जैसे - पद-त्याग, म त्यु, पागल या दिवालिया होने पर।
9. उनके समक्ष किसी भी पक्ष का समर्थन अधिवक्ता नहीं कर सकते।

समझौता अधिकारी समझौते के लिए किये गये प्रयासों की सफलता या असफलता का प्रतिवेदन ही समुचित सरकारी के पास प्रेषित करता है जबकि समझौता बोर्ड अपनी सिफारिशें भी भेज सकता है।

समझौता अधिकारी का समझौता सम्बन्धी कर्तव्य स्वतः उत्पन्न होता है जबकि बोर्ड को समुचित सरकार द्वारा मामला निर्देशित किया जाता है।

अन्तर

1. समझौता अधिकारी अपना काम विवाद के निर्दिष्ट न किये जाने पर भी प्रारम्भ कर सकता है। समुचित सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद निर्दिष्ट करने पर ही बोर्ड अपना कार्य प्रारम्भ करेगा।
2. बोर्ड की सदस्य संख्या सदैव विषम होती है; जैसे - 3 या 5; जिसमें एक स्वतन्त्र अध्यक्ष होता है और शेष पक्षकारों के समान प्रतिनिधि। समझौता अधिकारियों की संख्या कितनी होगी, यह सरकार के ऊपर निर्भर करता है।
3. समझौता अधिकारी के प्रतिवेदन या समझौता पत्र भेजने का समय 14 दिनों का निर्धारित किया गया है, जब कि बोर्ड के लिए दो महीने का।
4. बोर्ड की स्थापना किसी उद्देश्य-विशेष के लिए होती है, जबकि समझौता अधिकारी की नियुक्ति किसी निर्दिष्ट क्षेत्र के लिए की जाती है।
5. बोर्ड की कार्यवाही न्यायिक होती है और उसे कुछ विशेष अधिकार मिले होते हैं जिससे समझौता अधिकारी वंचित रहता है।
6. बोर्ड के अधिकार समझौता अधिकारी के अधिकार से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होते हैं

(ब) जांच-न्यायालय (Court of Inquiry) (धारा 6)

जांच-न्यायालय की स्थापना की बात ब्रिटिश औद्योगिक न्यायालय अधिनियम, 1918 से ली गई है, जिसमें किसी मन्त्री को पक्षकारों की सहमति लिये बिना ही इसे गठित करने के आदेश देने का अधिकार प्राप्त है। उसके गठन का उद्देश्य उन कारणों का पता लगाना तथा तथ्यों की जांच करना है जिनसे औद्योगिक विवाद उत्पन्न हुआ है और ऐसी परिस्थितियों का अध्ययन करना भी है, जिनमें उभय-पक्षों में कोई मान्य समझौता सम्भव हो सके। अतः यह सामान्य न्यायालय नहीं है जिसका कार्य किसी विवाद में निर्णय देना होता है। समस्या के समाधान के लिए यह न्यायालय अपनी संस्तुतियाँ दे सकता है। समुचित सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा जब कभी आवश्यकता प्रतीत हो, जाँच न्यायालय गठित कर सकती है। इसके अधिकारियों की नियुक्ति के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती।

न्यायालय के सदस्यों की संख्या निर्धारित करना सरकार के ऊपर होता है। उनकी संख्या एक या अधिक हो सकती है। एक से अधिक संख्या होने पर उनमें से एक अध्यक्ष नियुक्त किया जायेगा। नियुक्त होने वालों के लिए यह अपरिहार्य है कि वे पूर्णतया स्वतन्त्र हों, अर्थात् उनका किसी भी पक्ष से कोई लगाव न हो। उनसे आशा की जाती है कि वे निष्पक्ष भाव से कार्य करेंगे और किसी भी पक्ष में अनावश्यक रूचि नहीं दिखायेंगे। उनकी योग्यता का संकेत नहीं मिलता। इसकी कार्यवाही गणपर्ति पूरी रहने पर आगे बढ़ायी जा सकती है, भले ही अध्यक्ष अनुपस्थित हो। किन्तु सरकार से इस बात की सूचना मिल जाने पर कि अध्यक्ष या किसी सदस्य की सेवाएं प्राप्त नहीं हो सकेगी, यह न्यायालय तब तक कार्य नहीं करेगा तब तक कि यथास्थिति नया अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त नहीं कर दिया जाता। कार्य के सफल संचालन के लिए उन्हें भी दीवानी अदालत के कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं; जैसे - पक्षकारों की उपस्थिति आवश्यक बनाना, मामलों की जांच, प च्छा, विवादग्रस्त स्थान का अवलोकन तथा शपथ-ग्रहण कराना, इत्यादि।

जांच-न्यायालय के कर्तव्य-धारा 11 उनकी शक्तियों तथा कार्य निष्पादन सम्बन्धी प्रक्रियाओं का उल्लेख करती है। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं।

1. निर्देशित मामले के तथ्यों की जांच करना।
2. जांच के पश्चात् अपना प्रतिवेदन समुचित सरकार के पास प्रेषित करना, वह भी छः महीने में। यह इसका विधिक दायित्व है।

जांच-न्यायालय पूर्ण रूप से जांच करके अपना प्रतिवेदन समुचित सरकार के पास जांच प्रारम्भ करने के 6 महीने में भेज देगा। छः मास के भीतर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने सम्बन्धी प्रावधान आदेशात्मक नहीं है बल्कि वह निदेशात्मक प्रकृति का प्रतीत होता है। इस अवधि को उचित कारणों से बढ़ाया भी जा सकता है। यदि जांच कार्यवाही 6 महीने बाद भी चलती है तो वह जांच-न्यायालय डिफंक्ट नहीं हो जाएगा। उसकी कार्यवाही अवैध नहीं कही जा सकेगी। वह अपने कार्यो में सुविधा के लिए विचाराधीन मामले में संबंधित विशेष ज्ञान रखने वाले एक या दो सहायकों की नियुक्ति कर सकता है। उनके अधिकारी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 के अंतर्गत लोक-सेवक समझा जायेगा। उसे परिव्यय के सम्बन्ध में भी आदेश देने का अधि ाकार होगा कि कौन, कितना और किस रूप में परिव्यय देगा। उसका प्रतिवेदन प्राप्त करने पर सरकार उस प्रतिवेदन के अनुरूप जो भी उचित समझेगी, करेगी। मामले को वह अधिकरण को निर्दिष्ट कर भी सकती है और नहीं भी। वाद को निर्दिष्ट करने की सरकार की बाध्यता नहीं होती।

यदि किसी औद्योगिक विवाद को अधिकरण को सन्दर्भित और उसकी प्रारम्भ की गई कार्यवाही के दौरान जांच न्यायालय का गठन किया गया है तो जांच न्यायालय का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाता। उसकी कार्यवाही स्वतन्त्र कार्यवाही होती है जिसका अधिकरण के समक्ष चलने वाली कार्यवाही से कोई सम्बन्ध नहीं है।

ग्रीवान्स सेटलमेंट एथारिटीज (Grievance Settlement Authorities and reference of certain individual Disputes thereto) - सन् 1982 के संशोधन अधिनियम द्वारा एक नया अध्याय II-B और साथ ही धारा 9-C को जोड़कर क्षोभ समझौता प्राधिकारी का प्रावधान किया गया हैं इस धारा के अनुसार प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान के सन्दर्भ में, जिनमें पूर्व 12 महीने में किसी एक दिन 50 या अधिक कर्मकार नियोजित हैं या नियोजित रहे हैं, इस अधिनियम के अंतर्गत बनाये गये नियमों के अनुकूल प्रतिष्ठान में नियोजित व्यक्तिगत कर्मकार (Individual workman) से सम्बन्धित औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए कठिनाइयों को ठीक करने वाले प्राधिकारी (Grievance Settlement Authority) का उपबन्ध करेगा।

जहां व्यक्तिगत कर्मकार (individual workman) से सम्बन्धित औद्योगिक विवाद प्रतिष्ठान में उत्पन्न होता है, कर्मकार या कर्मकार की कोई यूनियन, जिसका वह सदस्य है, ऐसे विवाद उक्त अधिकारी (Grievance Settlement Authority) को रिफर करेगा, जो ऐसी प्रक्रिया अपनायेगा और ऐसी अवधि में अपनी प्रक्रियाएं पूरी करेगा, जैसे विहित की जायें। धारा 9-C (4) स्पष्ट कहती है कि विवाद के सम्बन्ध में अध्याय 3 के अधीन किसी बोर्ड आफ इन्क्वायरी, श्रम-न्यायालय, अधिकरण को रिफरेन्स तब तक नहीं किया जायेगा, जब तक कि सम्बन्धित 'Grievance Settlement Authority' को ऐसा विवाद रिफर नहीं किया गया है और विवाद के पक्षकारों में से एक पक्षकार को उसका निर्णय स्वीकार नहीं है।

श्रम-न्यायालय, अधिकरण एवं राष्ट्रीय अधिकरण के लिए निर्धारित योग्यतायें

श्रम न्यायालय के लिए योग्यता - कोई भी व्यक्ति श्रम न्यायालय में पीठासीन प्राधिकारी होने के लिए तभी अर्ह माना जायेगा, जबकि -

अ) उसने भारत में 7 वर्ष से अन्यून अवधि तक कोई न्यायिक (Jucial Office) धारण किया है। इसके लिए प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, जज आदि अर्ह (Qualified) हैं। स्टेट ऑफ हरियाणा बनाम हरियाणा कोआपरेटिव ट्रान्सपोर्ट लि. में उच्चतम न्यायालय ने जुडीशियन ऑफिस के अर्थ की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि 'Judicial experience' वाला व्यक्ति ही नियुक्ति के लिए योग्य माना जायेगा। मात्र जुडिशियल या क्वासाई जुडिशियल फैक्शन को पूरा करने वाला किसी 'बॉडी' से, 'एडमिनिस्ट्रेटिव कैपेसिटी' में सम्बन्ध रहना पर्याप्त नहीं होगा। इस वाद में नियुक्ति के पहले उक्त प्रकार की बॉडी में क्लरिकल ड्यूटीज पूरा करने वाले किन्तु श्रम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति को प्रिसाइडिंग ऑफिसर नियुक्त कर दिया गया था। उसके द्वारा दिये गये पंचाट को उसके क्वालीफाइड न होने के आधार पर चुनौती दी गई, क्योंकि वह जुडीशियल ऑफिस होल्ड नहीं करता था; इसलिए उसकी नियुक्ति तथा पंचाट अवैध तथा निष्प्रभावी थ। पंजाब तथा हरियाणा उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने रिट पिटीशन स्वीकार कर लिया। उच्चतम न्यायालय ने उसके निर्णय को यथावत् स्वीकार कर विनिश्चित किया कि अर्ह न होने के कारण श्रम-न्यायालय का गठन अवैध था और उसका निर्माण क्षेत्राधिकार के अधीन था। इस दोष को अनुच्छेद 226 या 227 में चुनौती दी जा सकती है।

ब) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो।

स) कम से कम तीन वर्ष तक वह डिस्ट्रिक जज या एडीशनल जज या डिस्ट्रिक्ट जज रह चुका हो; अथवा

द) किसी ऐसे श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में पीठासीन अधिकारी 5 वर्ष से अन्यून अवधि तक रहा हो जिसका गठन किसी प्रान्तीय अधिनियम के अधीन किया गया हो।

यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति बहुत लम्बे अरसे तक जिला या उच्चतम न्यायालय का जज रहा है। यदि वह थोड़े समय के लिए भी उस पद पर वैधानिक ढंग से पदासीन है या रह चुका है, तो वह उस पद के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण के लिए योग्यताएँ - दोनों पदों के लिए कुछ योग्यता निर्धारित है। अधिकरण का अध्यक्ष होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं अपेक्षित हैं -

अ) वह व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है

ब) वह व्यक्ति, जो कम से कम 3 वर्ष तक जिला जज या अतिरिक्त जिला जज रह चुका है।

स्टेट ऑफ राजस्थान बनाम मेवाड़ टैक्सटाइल मिल्स लिमिटेड भीलवाड़ा - में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में दो बातों का स्पष्टीकरण किया - प्रथम, उच्च न्यायालय का अवकाश प्राप्त न्यायाधीश अधिकरण के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। दूसरे, यह कि पूर्व देशी रियासतों के न्यायाधीश भी इस पद के सर्वथा योग्य समझे जाते हैं। यह कोई नितान्त आवश्यक नहीं है कि अधिकरण के लिए न्यायाधीश उसी राज्य विशेष के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो। किसी अन्य राज्य अ या ब के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश भी राज्य सरकार द्वारा इस पद के लिए चुना जा सकता है। अधिनियम में कहीं भी उस अवस्था का उल्लेख नहीं है, जिसके बाद नियुक्ति अवैध मानी जायेगी। तात्पर्य यह है कि कार्यक्षमता वाला 60 या 70 वर्ष की आयु का अवकाश प्राप्त न्यायाधीश भी उस पद पर नियुक्त किया जा सकता ह। अवथा की अधिकता को लेकर एक वाद एटलस साइकिल इंडस्ट्रीज लिमिटेड, सोनीपत बनाम उसके कर्मकार ने उठाया था, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय को स्पष्ट

कर दिया कि 60 वर्ष से अधिक उम्र वाले व्यक्ति को भी न्याय निर्णयन के काम सौंपे जा सकते हैं, बशर्ते कि योग्यतायें विद्यमान हों। इस ऐक्ट के लागू होने के पूर्व राज्य सरकार उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं को भी न्याय निर्णयन का काप सौप सकती थी, चाहे भले ही उनकी आयु 60 वर्ष से अधिक हो। लेकिन अब वैसा प्रावधान वर्तमान अधिनियम में नहीं हैं डालमिया ददरी सीमेंट कम्पनी लिमिटेड बनाम अवतार नारायन गुजराल में हाईकोर्ट के अधिवक्ता की नियुक्ति के प्रश्न को लेकर उत्पन्न विवाद के निर्णय में नियुक्ति अवैध मानी गयी। हरियाणा राज्य बनाम हरियाणा कोऑपरेटिव ट्रांसपोर्ट में दिये गये उच्चतम न्यायालय के निर्णयानुसार उच्च न्यायालय किसी अधिकारी, बोर्ड, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण तथा अन्य की नियुक्ति के सम्बन्ध में उठाये गये प्रश्न पर विचार कर सकता है। सदस्यों की योग्यता अपने रिट के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके कर सकता है।

ऐसा व्यक्ति ही राष्ट्रीय अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जा सकेगा जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है।

पीठासीन अधिकारियों की अनर्हताएँ-

अधिनियम की धारा 7-ग के अंतर्गत श्रम न्यायालय अधिकरण तथा अधिकरण के पीठासीन अधिकारियों की नियुक्ति निम्न परिस्थितियों में नहीं की जा सकती है।

(i) यदि वह एक स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं है।

(ii) यदि उसने 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है।

यदि कोई व्यक्ति अपने आचरणों से निष्पक्ष नहीं है तो उक्त पदों पर बने रहने योग्य नहीं रह जाता। किसी भी भांति नियोजक या कर्मकारों का पक्ष लेने से वह स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति की आयु 65 वर्ष की हो गई है तो वह पीठासीन अधिकारी का पद धारण नहीं कर सकता।

अ. **बोर्ड, श्रम-न्यायालय, अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण के गठित करने वाले ओदश की अन्तिमता (Finality of Orders Constituting Boards etc.)** - किसी भी राज्य या केन्द्रीय सरकार (जो समुचित सरकार है) का बोर्ड या न्यायालय के सभापति या किसी अन्य सदस्य के रूप में या श्रम-न्यायालय, अधिकरण, राष्ट्रीय अधिकरण के पीठासीन अधिकारी के पद पर नियुक्ति के आदेश को तथा इस बात को भी कि बोर्ड या न्यायालय में कोई स्थान रिक्त था, और स्थान रिक्त होने पर भी कार्य या कार्यवाही सम्पन्न की गई है या उसके गठन में कोई त्रुटि रही है व्यवहार न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। नियुक्ति के आदेश को चुनौती देने पर धारा 9 रोक लगाती है। यदि न्यायालय या अधिकरण का गठन गलत हुआ है या वह वांछित योग्यता नहीं रखता अथवा कोई अधिकरण बिना क्षेत्राधिकार के कार्य कर रहा है तो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा अधिकरण के आदेश को अधिकार प च्छा-लेख, प्रतिषेध लेख, उत्प्रेषण लेख द्वारा निरस्त किया जा सकता है। धारा 9 (3) के अनुसार बोर्ड आदि के किसी सदस्य की कुछ समय अनुपस्थिति के कारण कोई निपटारा (समझौता) अवैध नहीं होगा यदि निपटारे से सम्बन्धित प्रतिवेदन पर सभापति और अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर हो चुके हैं।

ब. श्रम-न्यायालय, ट्रिब्यूनल और नेशनल ट्रिब्यूनल के अधिकारियों के स्थानों का रिक्त होने का कारण {धारा 7-(बी)} - ऐसे कारण निम्न हो सकते हैं; अर्थात्

1. **म त्यु द्वारा** (By death) - कभी कभी अधिकरण या श्रम - न्यायालय नामधारी (By name) होते हैं, और कभी कभी कार्यालय (Office) द्वारा निर्दिष्ट। यदि व्यक्तिगत नाम से नियुक्ति हुई है, तो उसके म तक हो जाने पर उत्तराधिकारी समुचित सरकार द्वारा नियुक्त किया जायेगा। किसी अधिकारी की म त्यु पर स्थानापन्न प्राधिकारी पहले के काम को देख सकेगा।

2. **त्याग पत्र द्वारा (By Resignation)** - त्याग-पत्र स्वेच्छया दिया जाना चाहिये। धोखा, अनुचित प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन आदि से उत्पन्न त्याग-पत्र शून्यकरणीय होगा। निरन्तर स्वास्थ्य के खराब रहने, किसी स्थान की जलवायु अनूकूल न होने पर या अन्य किसी घरेलू कार्याधिक्य के कारण त्याग-पत्र सम्भव हो सकता है।

3. **दिवालियापन द्वारा (By Insolvency)** - यह एक प्रास्थिति (stratus) होती है। ऐसा कोई भी प्राधिकारी अपने

पद पर बना नहीं रहेगा, जब तक कि वह किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पुनः पूर्वस्थिति वाला घोषित नहीं कर दिया जाता।

4. **पागलपन द्वारा (By madness or Insanity)** - किसी प्राधिकारी के पागल हो जाने के लिए मेडिकल प्रमाण की भी सत्यता को स्वीकार किया जायेगा। पागल व्यक्ति को अपने ऑफिस में रहने देना कई हितों की द ष्टि से न्यायोचित नहीं होगा।

5. **पैंसठ वर्ष की आयु पूर्ण करने पर** - यह व्यवस्था जन्म-तिथि के प्रमाण पत्र के आधार पर समझी जायेगी। उसके अभाव में बाह्य साक्ष्य भी ग्राह्य होंगे।

6. **कार्य की समाप्ति द्वारा** - जिस काम के लिए उसकी नियुक्ति की गई थी उसके समाप्त होने पर समुचित सरकार के एतदर्थ आदेश के अभाव में यह स्थान स्वतः रिक्त समझा जायेगा। कभी-कभी कार्यवाही के हस्तांतरण से भी ऐसी स्थिति सामने आ सकती है।

7. **कब अधिकारी स्वतन्त्र नहीं रह जाता (When officer is not an independent person)** - न्याय-निर्णयन के अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे बिना भय तथा पक्षपात के कार्य करेंगे, किन्तु यदि कोई प्राधिकारी किसी पक्ष विशेष में रुचि लेने से निष्पक्ष नहीं रह जाता, तो उस स्थान पर रहने का उसे नैतिक अधिकार नहीं रहता। इस प्रकार की अनर्हता नियुक्ति के बाद भी अस्तित्व में आ सकती है, और उसके पूर्व भी।

   धारी 7 (सी) में प्राधिकारियों के अनर्ह होने की स्थिति स्पष्ट है, जिनमें दो और कारणों की ओर संकेत किया गया है जिससे समझौता अधिकारी, बोर्ड के सरकार की ओर से नियुक्त सदस्य, श्रम-न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण के अध्यक्ष अयोग्य हो जायेंगे।

स. **श्रम-न्यायालय, अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण के क्षेत्राधिकार (Jurisdiction)** - अधिनियम में ही तीनों अलग-अलग क्षेत्राधिकारों का उल्लेख किया गया है। राष्ट्रीय अधिकरण को उन सभी विवादों के निर्णय करने का क्षेत्राधिकार है, जो राष्ट्रीय महत्व के या ऐसे विवाद हैं, जिनका व्यापक प्रभाव अन्य राज्यों में स्थित स्थापनों पर भी पड़ सकता है।

श्रम-न्यायालय का क्षेत्राधिकार - द्वितीय अनुसूची तक ही सामान्यतया सीमित है। हाँ, यदि किसी संस्थान में काम करने वालों की संख्या 100 या 100 से अधिक है, तो त तीय अनुसूची में आने वाले मामलों को भी उसे देखने और निर्णीत करने का अधिकार होगा।

द्वितीय अनुसूची (Schedule II) - में निम्नलिखत बातें आती हैं -

(i) स्थायी आदेशों के अंतर्गत नियोजक द्वारा पारित आदेशों की वैधता एवं औचित्य।

(ii) स्थायी आदेशों की व्यापकता एवं विश्लेषण।

(iii) अनुचित ढंग से श्रमिकों का निष्कासन, उनकी सेवा-विमुकित तथा पुनर्नियोजन (Reinstatement)।

(iv) किसी परम्परागत विशेषाधिकार या रियासत (Concession) का वापस लिया जाना।

(v) हड़ताल या तालाबन्दी की वैधता या अवैधता।

(vi) अन्य सभी मामले तो त तीय अनुसूची में अन्तर्विष्ट नहीं है।

समुचित सरकार त तीय अनुसूची से सम्बन्धित मामलों को भी श्रम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है, यदि मामला ऐसे स्थापन से सम्प क्त है जहां काम करने वालों की संख्या सौ या सौ से अधिक है। स्थायी श्रम समिति श्रम-न्यायालयों को हड़तालों की वैधता के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार देने के बारे में विचार कर रही है।

अधिकरण का क्षेत्राधिकार - इसे द्वितीय या त तीय अनुसूची के सभी मामलों को देखने का अधिकार प्राप्त है।

त तीय अनुसूची

(Schedule III)

(i) भ त्ति (Wages), उसकी देयता का समय तथा ढंग।

(ii) पाली के अनुसार कार्य।

(iii) प्रतिकर विषयक (Compensatory) और दूसरे भत्ते।

(iv) ग्रेड का निर्धारण।

(v) कार्यालय एवं विश्राम का समय।

(vi) अनुशासन सम्बन्धी नियमावली।

(vii) सवेतन छुट्टियाँ एवं अवकाश।

(viii) बोनस, भविष्य अंशनिधि तथा ग्रैच्युटी।

(ix) श्रमिकों की छँटनी तथा स्थापन की पूर्णतः बन्दी (Closure)

(x) दूसरे और मामले जिन्हें विहित करार दिया जाय।

स्मरण रहे कि राष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष लम्बित काग्रवाहियों को श्रम-न्यायालय या अधिकरण के समक्ष हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, किन्तु उनके समक्ष लम्बिल मामलों को यथोचित ढंग से राष्ट्रीय न्यायालय को सौंपा जा सकता है। उलटे हस्तांतरण की कार्यवाहियां समाप्त समझी जायेंगी, यदि सरकार ने एतदर्थ कोई आदेश दिया है। पाटरी मजदूर पंचायत बनाम पर्फेक्ट पाटरी कं. के निर्णयानुसार अधिकरण सन्दर्भ की सीमाओं के बाहर निर्णय नहीं दे सकता, क्योंकि विशेष रूप से संदर्भित बातों या उनसे आनुषांगिक चीजों तक ही उसका क्षेत्राधिकार सीमित होता है। इस अधिनियम के अंतर्गत सौंपे जाने वाले अन्य कार्यों को भी अधिकरण सम्पादित करेगा।

श्रम-न्यायालय, अधिकरण एवं राष्ट्रीय अधिकरण का गठन (Constitution of Labour Courts, Tribunals and National Tribunals) - धारा 7, 7 (क) तथा 7 (ख) से पूर्णतः स्पष्ट है कि उक्त प्राधिकारियों की नियुक्ति या न्यायाधिकरण-यन्त्र की स्थापना समुचित सरकार द्वारा की जाती है। श्रम-न्यायालय और अधिकरण के गठन का अधिकार राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार को समान रूप से प्राप्त है, गठन का राजपत्र में प्रकाशन किया जाता है। किन्तु राष्ट्रीय अधिकरण के गठन का अध्णिकार केवल केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है, जो धारा 7 (ब) के अनुसार राजपत्र में प्रकाशन करके विवादों के न्याय निर्णयन के लिए एक या एक से अधिक राष्ट्रीय अधिकरणों का गठन कर सकती है। राष्ट्रीय महत्व के या एक से अधिक राज्यों में स्थापित प्रतिष्ठानों को प्रभावित कर सकने वाले विवादों को राष्ट्रीय अधिकरण को रिफर (निर्दिरूट) किया जात है। यहां एक बात उल्लेखनीय है कि तीनों के लिए केवल एक एक पीठासीन अध्यक्ष होंगे।

न्यायालय और अधिकरण में समानता और विषमता

समानता - दोनों में बहुत कुछ समानताएँ हैं -

दोनों की नियुक्ति समुचित सरकार द्वारा होती है। नियुक्तियों के लिए कुछ योग्यताएं निर्धारित हैं। इनका क्षेत्राधिकार निर्दिष्ट तथा मुख्य उद्देश्य विवादों का निर्णय देना होता है। वे एकपक्षीय निर्णय भी दे सकते हैं। उन्हें गवाहों को बुलाने, सम्मन तामील करने, वकीलों से उत्तर-प्रत्युत्तर करने एवं मानहानि करने पर दण्डित करने और हर्जे-खर्चे के लिए आदेश देने का अधिकार है। अधिकरण भी न्यायिक कार्य सम्पन्न करता है, यद्यपि कि वह न्यायालय नहीं है। दोनों में केवल एक ही पीठासीन अधिकारी होता है। किन्तु उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय इसके अपवाद हैं। दोनों लोक सेवक तथा प्राकृतिक न्याय करने वाले माने जाते हैं।

विषमता - दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं -

1. न्यायालय में एक क्रमबद्धता रहती है, लेकिन अधिकरण में नहीं। वे एक-दूसरे के पूरक होते हैं और उनका क्षेत्राधिकार विभाजित रहता है। अधिकरण की अपील उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में हो सकती है, लेकिन इसके विपरीत न्यायालयों की अपील अधिकरण में नहीं हो सकती। मेसर्स गाजियाबाद इंजीनियरिंग कम्पनी (प्रा.) लि बनाम सर्टीफाइंग आफिसर कानुपर और अन्य में स्पष्ट किया गया कि उच्चतम न्यायालय तथ्यों के आकलन सम्बन्धी प्रश्न पर दखल नहीं देगा, यदि कोई गम्भीर अनौचित्य नहीं दिखाया गया है।
2. अधिकरण मुख्यतः औद्योगिक विवाद तक ही सीमित रहते हैं, लेकिन न्यायालय के समक्ष अन्य दूसरे ढंग के दीवानी और न्यायिक मामले भी आते हैं।

3. कोई भी प्रभावित व्यक्ति न्यायालय में दावा कर सकता है। लेकिन अधिकरण के समक्ष केवल सरकार ही मामला निर्दिष्ट (रिफर) कर सकती है।

4. अधिकरण के निर्णय को मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। वह पूर्णतः या अंशतः उसे स्वीकार या उसमें संशोधन कर सकती है। न्यायालय के निर्णय सरकार के लिए भी बन्धनकारी होते हैं। उसकी अवमानना के लिए उसे दण्डित किया जा सकता है।

5. अधिकरण को अपने निर्णय को निष्पादित करने के लिए न्यायालय जैसा साधन प्राप्त नहीं है, उसे प्रकाशित और क्रियान्वित करना सरकार का ही काम है, लेकिन न्यायालय अपने निर्णय का प्रवर्तन करने में स्वयमेव सक्षम होता है।

6. एक बार अधिकरण के सामने कोई विवाद प्रस्तुत कर दिये जाने पर सामान्यतया वापस नहीं लिया जा सकता है।

7. अधिकरण की अपेक्षा न्यायालयों को अधिक अधिकार प्राप्त है। न्यायालय सही अर्थ में लेकिन अधिकरण कुछ ही अर्थो में न्यायिक होते हैं। जैसे अधिकरण द्वारा की जाने वाली जांच के लिए साक्ष्य अधिनियम लागू नहीं होता।

8. औद्योगिक न्याय-निर्णयन में औद्योगिक सामंजस्य की स्थापना हेतु, अधिकरण को समुचित सरकार ने अधिकार दिया है कि वह कर्मकारों को अवसरानुकूल नवीन अधिकार तथा विशेषाधिकार प्रदान करे। साथ ही उनके हितों को द ष्टिगत रखते हुए उत्तरदायित्वों को वहन करने का भी आदेश दे। स्टेट ऑफ मद्रास बनाम सी.पी. सारथी के मामले में भी स्पष्ट किया गया है कि अधिकरण का क्षेत्राधिकार दीवानी न्यायालय या पंचों से अधिक विस्त त होता है और उसके पीठासीन प्राधिकारी को उद्योगों में प्रचलित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी न्यायपूर्ण आधार पर दोनों पक्षों के हिताहित की द ष्टि से पंचाट प्रदान करने का अधिकार होता है।

श्रम-न्यायालयों, अधिकरणों तथा राष्ट्रीय अधिकरणों के कार्य - धारा 15 के अनुसार जब कभी भी औद्योगिक विवाद न्याय-निर्णयन के लिए निर्दिष्ट किये जाते हैं, तब उनका यह प्रथम कर्तव्य होता है कि यथाशीघ्र वे अपनी कार्यवाहियां प्रारम्भ कर दें और विवाद के निर्दिष्ट करने वाले आदेश में निर्धारित अवधि या धारा 10 (2-क) के अंतर्गत विस्तारित अवधि के भीतर अपना पंचाट समुचित सरकार के पास भेज दें। पंचाट देने की अवधि जब निर्दिष्ट करने वाले ओदश में ही निर्धारित कर दी जायेगी। उनके सफल संचालन के लिए उन्हें दीवानी अदालत के कुछ प्रमुख अधिकार प्रापत हैं। श्रम न्यायालय साधारणतया द्वितीय तथा कुछ दशाओं में त तीय अनुसूची के विषयों से सम्बन्धित विवादों का तथा अधिकरण साधारणतया द्वितीय तथा कुछ दशाओं में त तीय अनुसूची के विषयों पर निर्णय और पंचाट देता है। राष्ट्रीय अधिकरण राष्ट्रीय महत्व वाले औद्योगिक विवादों या ऐसे विवादों का, जिसमें एक से अधिक राज्यों में स्थापित उद्योगों का हित निहित है या वे उसके पंचाट से प्रभावित हो सके हैं, का न्याय निर्णयन करता है। उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर बल दिया है कि साधारणतया उन्हें विवादों का शीघ्र निपटारा करने का प्रयत्न करना चाहिये। स्मरणीय है कि ट्रिब्यूनल अपनी कार्यवाही में नेचुरल जस्टिस का मार्ग अपनायेगा। यह प्रबन्धक को गवाहों से केवल इस आधार पर प च्छा करने के अवसर देने से इंकार नहीं करेगा कि उसने पहले लिखित कारण नहीं जमा किया था।

स्टेट्समैन प्रा. लि. बनाम **एच.आर. देव** - में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न कि क्या श्रम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी न्यायिक पद धारण करता है अथवा नहीं, के बारे में विनिश्चय प्रदान किया है कि "एक न्यायिक पद धारण करने वाला" पदावली से धारा 7 (3) (घ) में "न्यायिक कर्तव्य करने से कुछ अधिक का बोध होता है।" इससे सपष्ट है कि यह पद मुख्यतया न्यायिक प्रकृति का है।

जगन्नाथ विनायक काले बनाम **एम.आई. अहमदी और अन्य** - के विनिश्चयानुसार जहां अधिकरण का इस अधिनियम के अधीन समुचित रूप से गठन नहीं किया गया है और वह बिना क्षेत्राधिकार के कार्य कर रहा है तो क्षेत्राधिकार की कमी का कोई उपचार धारा 9 के अधीन नहीं किया जा सकता।

समझौता-अधिकारी, समझौता बोर्ड तथा जांच न्यायालयों के लिए समझौता का प्रतिवेदन देने की अवधि निश्चित कर दी गई है। उनके द्वारा क्रमशः 14 दिनों, 2 तथा 6 महीने में ही अपना प्रतिवेदन, जिसके साथ ज्ञापन भी संलग्न रहेगा, समुचित सरकार के पास प्रेषित कर दिया जाना चाहिये। श्रम-न्यायालय, अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण के लिए पंचाट देने की अवधि का उल्लेख रिफरेंस करने वाले आदेश में ही कर दिया जायेगा। जिस प्रकार से न्यायालयों में मुकदमों का दायर किये जाने, सम्मन भेजने, पक्षकारों से प च्छा एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने तथा उसकी सत्यता की जांच, अधिवक्ताओं की बहस आदि में समय लगता

है, ठीक उसी प्रकार की कार्यवाहियां उनके भी पीठासीन अध्यक्षों को करनी पड़ती है। निश्चित दअवधि में ही न्याय निर्णयन करने की बात सुसंगत परिस्थितियों को पूर्णरूप से देखने और सुनवाई का अवसर प्रदान करने से वंचित करने का कारण बन सकती है। विवादास्पद स्थान की जांच करने या उनके लिए कमीशन भेजने और उसकी रिपोर्ट पाने में विलम्ब हो सकता है। वैसे अधिकरण मशीनरी का न्यायिक अधिकारियों के समान ही कार्य-पद्धति का अनुगमन तथा न्याय करना ही लक्ष्य होगा। यह यंत्र के आदेश तथा विवादों के निर्दिष्ट किये जाने के ऊपर निर्भर करता है। उनका कार्य निर्दिष्ट विवादों का न्याय निर्णयन करना और अपना पंचाट देना है। उनके प्रकाशन संशोध्णन, प्रवर्तन आदि का कार्य समुचित सरकार करती है। न्यायिक प्राधिकारियों के समान अपने पंचाटों को क्रियान्वित करने का अधिकार अधिकरण के पीठासीन अध्यक्षों को नहीं होता। उनका कार्य पंचाट देना होता है, पंचाट का लागू करना या न करना समुचित सरकार का काम है। दिनांक 20 जुलाई, 1981 को दिल्ली में सम्पन्न हुए श्रम-मन्त्रियों के 31वें सम्मेलन ने केन्द्र से श्रम और राष्ट्रीय अधिकरणों को अपने पंचाट और निर्णय लागू करने के अधिकार दिये जाने की सिफारिश की। श्रम-न्यायालय तथा ट्रिब्यूनलों की कार्यवाही में सुधार करने ीक द ष्टि से राष्ट्रीय श्रम आयोग ने अनेक सिफारिशें पेश की हैं। आयोग ने पस्ताव किया है कि वर्तमान अल्पावधि के एक व्यक्तीय ट्रिब्यूनलों की नियुक्तियां करने की अपेक्षा त्रिपक्षीय स्थायी औद्योगिक सम्पर्क आयोग की स्थापना की जानी चाहिये। औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए इन आयोगों में स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा कामगारों और मालिकों का प्रतिनिध्णित्व करने वाले दो सदस्य होने चाहिये। ऐसे ट्रिब्यूनल विवादियों को अधिक सन्तोष प्रदान कर सकेंगे। इसके अलावा वे दबाव से भी मुक्त हरेंगे। इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री वाई.वी. चन्द्रचूड़ का यह थिन उचित है कि श्रम-न्यायालयों तथा अधिकरणों के निर्णयों की समीक्षा करने और उनमें किसी हद तक समता लाने के उद्देश्य से कामगार अपीलेट ट्रिब्यूनल की स्थापना की जानी चाहिये। इस प्रकार के कदम से एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में जाने के कारण से होने वाले विलम्ब में काफी कमी हो सकेगी और परिणामस्वरूप मामलों का निपटारा भी जल्द हो सकेगा। विचारार्थ लाए जाने वाले श्रम सम्बन्धी मामलों का दबाव भी उच्चतम न्यायालय पर कम हो जायेगा।

अधिनियम की धारा 10(क) के अनुसार औद्योगिक विवाद के विषय में श्रम-न्यायालय की अधिकारिता या राष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष लम्बिल कार्यवाहियां केवल इस आधार पर समाप्त नहीं हो जाएंगी कि विवाद के पक्षकारों में से एक की म त्यु हो गई है। वे लम्बित कार्यवाहियों को पूरा करके अपना विनिश्चय समुचित सरकार को प्रस्तुत करेंगे।

अभी हाल ही में 10 अक्तूबर 1991 को मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र, न्यायमूर्ति वी.वी. सामन्त और उस. मोहन की अध्यक्षता में गठित खण्डपीठ ने तेल और प्राकृतिक गैस आयोग को एक अर्जी पर निर्णय करते समय विभिन्न मंत्रालयों, सरकारी विभागों और सार्वजनिक उपक्रमों के बीच उत्पन्न विवादों को अनावश्यक रूप से अदालतों में जाने से रोकने के लिए मंत्रिमंडलीय सचिव की अध्यक्षता में उच्च स्तरीय समिति गठित करो या केन्द्र को निर्देश दिया है ताकि आपस में ही विवादों का निपटारा किया जा सके। उच्चतम न्यायालय ने अपने आदेश में कहा है कि जब तक उक्त समिति जांच के बाद मुकदमा दाखिल करने की अनुमति नहीं देती, तब तक कोई भी मामला उदालत या न्यायाधिकरण के सामने पेश नहीं किया जाना चाहिऐ। न्यायालय ने सरकार को दिए गए निर्देश में यह भी सुझाव दिया कि प्रस्तावित समिति में उद्योग, विधि मंत्रालयों तथा सार्वजनिक उपक्रम ब्यूरो का एक-एक प्रतिनिधि अवश्य होना चाहिए। समिति में उस मंत्रालय के प्रतिनिध को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जिसका हित उसमें सन्निहित है। उच्च स्तरीय समिति की अनुमति न रहने की स्थिति में मुकदमा ग्राह्य नहीं होगा।

अध्याय-18
कारखाना अधिनियम, 1948
(The Factories Act, 1948)

कारखाना अधिनियम, 1948
(The Factories Act, 1948)

श्रमिक अपने सारे जीवन का एक चौथाई भाग कारखाने में व्यतीत करता है। अतः उसे अपने जीवन तथा स्वास्थ्य की यथोचति रखा के लिए उचित दशाओं की मांग करने का प्रत्येक अधिकार है। दुर्भाग्य से औद्योगीकरण की प्रारम्भिक अवस्था में श्रमिकों को केवल मशीनों का सहायक मात्र ही समझा जाता था। प्रत्येक नियोक्ता अपने दायित्व (श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि की रक्षा व काम की दशाओं में सुधार के प्रति उदासीन था। अतएव सरकार को हस्तक्षेप करने के लिए विवश होना पड़ा।

बालकों के संरक्षण और स्वास्थ्य व सुरक्षा उपाय अपनाने के लिए सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम 1881 में लागू किया गया। 1891 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया है और प्रथम बार कारखानों में कार्य के घंटे नियमित करने के लिए 1911 में नया कारखाना अधिनियम लागू किया। यह कारखाना अधिनियम 1923, 1926 व 1931 में किये गये संशोधनों के साथ 1934 तक क्रियाशील रहा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने कारखानों के अधिनियम की कार्यप्रणाली की पुर्नसमीक्षा की और सुरक्षा व कल्याण उपायों को अधिक व्यापक व प्रभावी बनाने का निश्चय किया। सन् 1947 में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होने के फलस्वरूप देश में प्रचलित सभी कानूनों में आवश्यक संशोधन किए गए। नवम्बर, 1947 में कारखाना अधिनियम (संशोधन) बिल प्रस्तुत किया गया जो 28 अगस्त, 1948 को पारित किया गया तथा 1 अप्रैल, 1949 से लागू किया गया है।

भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948 के प्रमुख प्रावधान तथा विशेषताएं

भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948 स्वतन्त्रता के बाद पारित एक प्रमुख श्रम-विधान है। धारा 1 से 120 तक विभिन्न प्रावधानों की विस्त त व्याख्या की गयी है जो श्रमिकों, उद्योगों और उद्योगपतियों के हितों की रक्षा के लिए बनाये गये हैं इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान संक्षेप में इस प्रकार हैं।

1. **क्षेत्र** - जहां निर्माण प्रक्रिया शक्ति की सहयाता से होती हो वहां 10 या अधिक श्रमिक और जहां बिना शक्ति की सहायता के निर्माण प्रक्रिया होती हो वहां 20 या अधिक श्रमिक नियुक्त होने पर यह अधिनियम लागू हो जाता है, किन्तु धारा 85 के अंतर्गत राज्य सरकार उस स्थान को कारखाना मान सकती है जहां उपरोक्त संख्या से कम श्रमिक नियुक्त हों। यह अधिनियम सारे भारत पर लागू होता है। 1970 के संशोधन के अनुसार यह जम्मू एवं कश्मीर पर भी लागू कर दिया गया है। यह अधिनियम मौसमी तथा गैर-मौसमी दोनों प्रकार के कारखानों पर लागू होता है। धारा 118 के अनुसार यह अधिनियम केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के कारखानों पर भी लागू होता है।
2. **श्रमिकों के स्वास्थ्य की रक्षा** - कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 11 से 20 तक श्रमिकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए पर्याप्त प्रावधान बनाये गये हैं। स्वच्छता, प्रकाश, वायु संचालन, गन्दगी निवारण, तापमान, नमी, पेयजल, शौचालय एवं मूत्रालय, पीकदान आदि की उपयुक्त व्यवस्था की गयी है।
3. **पंजीयन, लाइसेंसिंग एवं स्वीकृति** - प्रस्तुत अधिनियम के अंतर्गत कारखाने के लिए पंजीयन कराना, स्वीकृति प्राप्त करना तथा लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया है। कारखाने की स्थापना के पूर्व उसके 'प्लान' तथा 'ले आउट' प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

4. **निरीक्षण सम्बन्धी प्रावधान** - अधिनियम के प्रावधानों का परिपालन ठीक ढंग से हो रहा है या नहीं इस बात की जांच करने के लिए निरीक्षण अधिकारी एवं प्रमाणित करने वाले चिकित्सकों की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गयी है जिन्हें निरीक्षण एवं प्रमाणीकरण सम्बन्धी अधिकार सौंपे गये हैं।

5. **सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान** - कारखाने में कार्यरत श्रमिकों को किसी प्रकार की दुर्घटना, चोट रोग आदि का सामना न करना पड़े इसके लिए धारा 21 से 41 तक सुरक्षा सम्बन्धी पर्याप्त व्यवस्था लागू की गई हैं। यंत्रों की घेराबन्दी, चालू यन्त्र की दउशा में सावधानी, खतरनाक यंत्रों पर नवयुवकों की नियुक्ति, शकित से सम्बन्ध जोड़ने या विच्छेद करने के उपायों, बालक एवं स्त्री श्रमिकों के लिए अतिरिक्त सावधानी, माल चढ़ाने-उतारने तथा मनुष्यों को लाने-ले-जाने वाले यंत्रों के संचालन, वजन उठाने वाली मशीनों, पहुंचने के साधनों, आंखों की रक्षा, आग लगने की दशा में सावधानी, खतरनाक धुएं के निवारण, दोषपूर्ण यन्त्रों के परीक्षण भवनों की देखभाल, सुरक्षा अधिकारी की व्यवस्था आदि पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार सुरक्षा सम्बन्धी व्यापक व्यवस्था इस अधिनियम में की गई है।

6. **श्रमिकों के काम के घंटों का नियमन** - अधिनियम में यह व्यवस्था की गयी है कि किसी भी श्रमिक से सामान्यतया प्रति सप्ताह 48 घंटे और प्रतिदिन 9 घंटे से अधिक काम नहीं लिया जाय। साप्ताहिक अवकाश अथवा क्षतिपूरक अवकाश की व्यवस्था भी की गई है। लगातार काम के 5 घंटों के बाद 2 घंटे का विश्राम मध्यान्तर देना आवश्यक हैं काम के विस्तार की अवधि किसी भी दिन 10½ घंटे से अधिक नहीं होनी चाहिए। एक के बाद दूसरी पाली में निरंतर कार्य करने पर भी प्रतिबंध है। अधिक समय काम के लिए अतिरिक्त मजदूरी देने का भी प्रावधान बनाया गया है।

7. **श्रम कल्याण सम्बन्धी प्रावधान** - श्रमिकों के कल्याणार्थ अनेक बातों की व्यवस्था कारखाना अधिनियम, 1948 में की गयी है जिसकी व्याख्या धारा 42 से 50 तक में की गयी है श्रमिकों के उपयोग के लिए नहाने-धोने की सुविधा, वस्तु रखने व सुखाने की सुविधा, बैठने की सुविधा, प्राथमिक उपचार के उपकरण, जलपान ग ह, भोजन कक्ष, विश्राम कक्ष, शिशु सदन तथा श्रम-कल्याण अधिकारी की नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधानों का समावेश इस अधिनियम में किया गया है।

8. **स्त्री तथा बालक श्रमिकों के रोजगार पर प्रतिबन्ध** - स्त्री तथा बालक श्रमिकों के रोजगार के सम्बन्ध में विशेष प्रतिबन्ध लागू किए गए हैं तदनुसार, किसी भी स्त्री श्रमिक को रात्रि के 10 बजे से सुबह 5 बजे तक की अवधि में काम पर नहीं लिया जायेगा। चलते हुए यंत्र एवं कॉटन ओपनर के निकट कार्य करने के लिए नियुक्त नहीं किया जायेगा। स्त्री श्रमिक को 12 सप्ताह का प्रसूति अवकाश भी दिया जायेगा। खतरनाक काम पर स्त्रियों को नियुक्त नहीं किया जायेगा। इसी प्रकार 14 वर्ष से कम आयु के बालक को कारखाने में नियुक्त नहीं किया जायेगा। 14 वर्ष सेअधिक, किन्तु 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को तभी नियुक्त किया जायेगा जब उसके पास सामर्थ्य का प्रमाण-पत्र हो। बालक श्रमिक से किसी भी दिन साढ़े चार घंटे से अधिक काम न हीं लिया जायेगा। बालक से रात्रि के समय किसी भी दशा में काम नहीं लिया जायेगा। साप्ताहिक अवकाश आदि की सुविधा बालक श्रमिक को यथावत् दी जाएगी।

9. **दण्ड सम्बन्धी व्यवस्था** - यदि इस अधिनियम के प्रावधानों का परिपालन नहीं किया जाता है तो उल्लंघन के लिए दण्ड की पर्याप्त व्यवस्था की गयी है। जुर्माना अथवा सजा या दोनों की एक साथ व्यवस्था है। उल्लंघन के लिए कारखाने परिभोगी या कारखाने के स्वामी को उत्तरदायी माना जाता है। कुछ परिस्थितियों में भूग्रहादि के स्वामी को भी दायी ठहराया जाता है श्रमिकों द्वारा किए गए उल्लंघन या अन्य व्यक्ति द्वारा किये अपराधों की दशा में भी दण्ड की व्यवस्था है।

10. **मजदूरी सहित अवकाश** - कारखाना अधिनियम, 1948 में श्रमिकों को मजदूरी सहित वार्षिक अवकाश प्रदान करने की भी व्यवस्था की गई है। प्रौढ़ श्रमिक के लिए कार्य के प्रति 20 दिन पर एक दिन तथा बालक श्रमिक के लिए कार्य के प्रति 15 दिन पर एक दिन के हिसाब से मजदूरी सहित अवकाश प्रदान किया जाएगा। इस अवकाश के लिए मजदूरी के अग्रिम भुगतान की भी व्यवस्था की गयी है।

11. **खतरनाक काम, दुर्घटना आदि की दशा में विशेष व्यवस्था** - कारखाना अधिनियम, 1948 में यह प्रावधान बनाया गया है कि खतरनाम काम (Dangerous operations) में स्त्री व बालक श्रमिकों की नियुक्ति निषिद्ध रहेगी। खतरनाक काम करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य का परीक्षण किया जायेगा तथा उनकी सुरक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था की जाएगी विशेष दशाओं में खतरनाक क्रिया को बन्द करने का आदेश भी दिया जा सकता है। दुर्घटना या रोग होने की दिशा

में कारखाने का परिभोगी इस बात की सूचना निर्धारित अधिकारी को देगा। इनकी जांच करने की भी व्यवस्था है।

12. **अन्य** - उपर्युक्त बातों के अलावा कारखाना अधिनियम में अन्य ऐसी बातों की भी व्यवस्था की गयी है जो अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों या विशेष दशाओं में आवश्यक हों। उदाहरण के लिए, सूचनाएं लगाना, न्यायालय द्वारा आदेश जारी करना, अपराधों की सुनवाई, अपीलें, विवरण पत्र भेजना, श्रमिकों के दायित्व का निर्धारण, कुछ बातों को गोपनीय रखना इत्यादि।

विशेषताएं
(Characteristics)

उक्त परिभाषा में 'श्रमिक की निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट होती हैं:

1. श्रमिक की नियुक्ति अवश्य होनी चाहिए, अर्थात् उसे कोई काम करने को कहा गया हो और उसने कार्य करना स्वीकार कर लिया हो।
2. श्रमिक प्रत्यक्ष रूप से या किसी एजेन्सी के द्वारा या ठेकेदार द्वारा नियुक्त किया गया हो। प्रत्यक्ष रूप से नियुक्ति से हमारा आशय नियोक्ता (employer) द्वारा नियुक्त किया जाना है, न कि किसी मध्यस्थ द्वारा।
3. श्रमिक मजदूरी पर अथवा बिना मजदूरी के भी नियुक्त किया जा सकता है, अर्थात् ऐसे व्यक्ति जो उम्मीदवारों (apprentice) के रूप में कार्य करते हों तथा जिन्हें मजदूरी न दी जाती हो, श्रमिक की श्रेणी में आते हैं।
4. श्रमिक का नाम कारखाने के मस्टर रोल (Muster Roll) अथवा रजिस्टर पर दर्ज होना आवश्यक है।
5. श्रमिक की नियुक्ति निर्माण प्रक्रिया करने अथवा उससे सम्बन्धित काई अन्य कार्य करने हेतु की जानी चाहिए। निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित मानसिक कार्य करने वाला क्लर्क श्रमिक हो सकता है।
6. निर्माण प्रक्रिया हेतु प्रयुक्त भवन, यन्त्र या उसके किसी भाग की सफाई के लिए नियुक्त व्यक्ति को भी श्रमिक माना जाएगा।
7. प्रधान नियोक्ता की जानकारी के बिना भी कोई व्यक्ति नियुक्त किया गया हो तो उसे भी श्रमिक माना जायेगा। यह संशोधन 1976 में किया गया है।
8. भारतीय संघ की सशस्त्र सेना का कोई भी सदस्य श्रमिक नहीं होता है।

कारखाना
(Factory)

नवीन संशोधन 1976 के अनुसार, कारखाने का आश्यक किसी भी भूग ह (premises) से है जिसमें उसकी परिसीमा (precincts) भी शामिल हैं।

(i) जहां दस या दस से अधि श्रमिक काम कर रहे हों अथवा गत 12 माह में किसी भी दनि काम कर रहे थे तथा उक्त भूग ह में, या उसके किसी भी भग में शक्ति ही सहायता से निर्माण प्रक्रिया की जा रही हो या साधारणतया की जाती हो, अथवा

(ii) जहां बीस या बीस से अधिक श्रमिक कार्य कर रहे हों अथवा गत 12 माह में किसी भी दिन काम कर रहे थे तथा उक्त भू-ग ह या उसके किसी भाग में निर्माण प्रक्रिया बिना शक्ति की सहायता से की जा रही हो अथवा साधारणतया की जाती हो।

'कारखाने' की परिभाषा में खदानें सम्मिलित नहीं हैं, क्योंकि खदानों के सम्बन्ध में भारतीय खदान अधिनियम 1952 प थक रूप से लागू होता है इसी प्रकार रेलवे रनिंग शेड भी कारखाना नहीं है, क्योंकि इस पर भी प थक् अधिनियम लागू होता है।

भारतीय संघ की सशस्त्र सेना की चलित इकाई (mobile unit) को भी कारखाना नहीं माना गया है। इसी प्रकार होटल, उपहारग ह तथा भोजनालय को कारखाना नहीं माना जाएगा।

कोई भी भवन कारखाना है अथवा नहीं यह निश्चय करने के लिए कारखाने के समस्त आवश्यक लक्षणों पर एक साथ विचार करना पड़ेगा। केवल एक लक्षण की पूर्ति होने मात्र से ही वह भवन कारखाना नहीं हो पाता।

स्वास्थ्य प्रावधान
(Health provisions)

सफाई सम्बन्धी प्रावधान (धारा 11)
(Provisions Regarding Cleanliness)

प्रत्येक कारखाना साफ रखा जायेगा और उसे किसी भी नाली, शौचालय अथवा अन्य हानिकारक पदार्थ्स से पैदा होने वाली दुर्गन्ध से मुक्त रखा जायेगा।

सफाई सम्बन्धी प्रावधानों में निम्न बातों पर बल दिया गया है:

(i) प्रतिदिन कूड़ा-करकट झाड़ना।

(ii) सप्ताह में एक बार कार्यकक्ष के फर्श को धोना।

(iii) जल निसरण की पयाप्त व्यवस्था करना।

(iv) 14 माह की अवधि में एक बार पुताई (सफेद या रंगीन) करना।

(v) 3 वर्ष की अवधि में एक बार वाटर पेण्ट करना।

(vi) 5 वर्ष की अवधि में एक बार पुनः वॉर्निश या पेण्ट करना।

कूड़ा-करकट तथा गन्दे पदार्थ हटाने की व्यवस्था (धारा 21)
(Disposal of Wastes and Effluents)

प्रत्येक कारखाने में निर्माण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होने वाले कूड़ा-करकट तथा बहने वाले गन्दे पदार्थो (wastes and effluents) को हटाने के प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे ताकि वे हानिकारक सिद्ध न हों।

राज्य सरकार उपर्युक्त व्यवस्था निर्धारित करने तथा किसी निर्दिष्ट अधिकारी द्वारा ऐसी व्यवस्था स्वीकृत करने सम्बन्धी नियम बना सकती हैं।

जब कूड़ा-करकट व गन्दे पदार्थ हटाने के लिए अपनायी जाने वाली व्यवस्था की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु कोई प्राथना-पत्र दिया जाता है और ऐसा प्रार्थना-पत्र न तो स्वीकृत किया जाता है और न ही अस्वीकृत तो कारखाने को यह अधिकार है कि वह अपने द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था जारी रख सकता है।

वायु संचालन तथा तापमान (धारा 13)
(Ventilation and Temperature)

1. प्रत्येक कारखाने के प्रत्येक कार्यकक्ष में निम्नलिखित बातों की उपयुक्त एवं प्रभावकारी व्यवस्था की जाएगी।
   (a) पर्याप्त मात्रा में वायु-संचार द्वारा ताजी हवा संचालित होने की व्यवस्था।
   (b) ऐसे तापमान की व्यवस्था जिससे श्रमिकों को काम करने में सामान्य सुविधा रहे और उनके स्वास्थ्य को हानि न पहुंचे। इसके लिए निम्न बातों का होना अनिवार्य है:
      (i) यदि किसी कारखाने में किए जाने वाले कार्य विशेष की प्रकृति के कारण तापमान अत्यधिक बढ़ जाता है या बढ़ने की सम्भावना हो तो ऐसी स्थिति में श्रमिकों की सुरक्षा के लिए वे प्रभावकारी उपाय किये जायेंगे जिससे अत्यधिक तापमान उत्पादन करने वाली क्रिया कार्यकक्ष से अलग की जा सके या गर्म भागों का प थक्करण (Insulation) किया जा सके।
      (ii) कारखाने की दीवारें तथा छतें ऐसे पदार्थ से और ऐसे नमूने से बनायी जायें जिससे तापमान अधिक न बढ़े और यथासम्भव कम से कम रहे।

2. राज्य सरकार किसी भी कारखाने या किसी वर्ग अथवा श्रेणी के कारखानों या उनके किसी भाग के लिए पर्याप्त वायु - संचालन तथा यथोचित तापमान के स्तर (Standard) का निर्धारण कर सकती है और यह निर्देश दे सकती है कि निर्दिष्ट स्थान पर व निर्दिष्ट स्थिति में एक तापमानी (Thermometer) रखा जाय।

3. यदि मुख्य निरीक्षक को यह प्रतीत हो कि किसी कारखानों में अत्यधिक ऊंचा तापमान उपयुक्त उपायों को अपनाने से कम किया जा सकता है और ऐसे उपायों से उपधारा (2) के नियमों का उल्लंघन नहीं होता है तो वह परिभोगी पर लिखित आदेश जारी करके उन उपायों का पालन करने के निर्देश दे सकता है जो उसकी सम्पत्ति में आवश्यक हों। ऐसे उपाय निर्दिष्ट तिथि के पूर्व पालन किए जाने चाहिए।

धूल तथा धुंआ (धारा 14)
(Dust and Fume)

ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहां निर्माण प्रक्रिया के कारण धूल और धुंआ अथवा अन्य गन्दगी या अशुद्धि (impurity) इस प्रकार की व इतनी मात्रा में निकलती है कि वहां काम करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि पहुंचने की संभावना हो या धूल अधि मात्रा में इकट्ठी हो जाती हो तो इस बात के प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे कि धूल व धुंआ आदि श्रमिकों की सांस के साथ न जायें और किसी भी कार्य कक्ष में धूल इकट्ठी न हो। यदि इसके लिए किसी खाली करने वाले उपकरण (Exhaust appliance) की आवश्यकता हो तो वह उपकरण धूल, धुएं या अन्य अशुद्धि के उद्‌गम स्थान ये यथासम्भव निकट लगाया जायेगा और उसे चारों ओर से बन्द किया जायेगा।

किसी भी कारखाने में कोई भी स्थायी आन्तरिक दाहक इंजन तब तक प्रयुक्त नहीं किया जायेगा जब कि कि उसके धुएं आदि को खाली करने वाला भाग खुली हवा में न लगा हो। उक्त इंजन कारखने के किसी भी कार्यकक्ष में उस सतय तक नहीं चलाया जाएगा जब कि कि धुएं आदि को इकट्ठा होने से रोकने की पर्याप्त व्यवस्था न कर दी गयी हो।

कृत्रिम नमी या आर्द्रता (धारा 15)
(Artificial Humidification)

राज्य सरकार उन समस्त कारखानों के सम्बन्ध में जहां हवा की आर्द्रता या नमी कृत्रिम रूप से बढ़ायी जाती है, निम्न नियम बना सकती है:

(i) इस बात की निर्धारित रूप से जांच करने के लिए कि हवा की नमी का सही-सही पालन किया गया और उसका रिकार्ड रखा गया हो।

(ii) नमी का स्तर (standard) निर्धारित करने के लिए;

(iii) हवा की नमी कृत्रिम रूप से बढ़ाने की रीतियों को नियमित करने के लिए;

कोई भी कारखाना यदि कृत्रिम रूप से हवा की नमी बढ़ाने के लिए पानी का उपयोग करता है तो यह पानी सार्वजनिक पूर्ति (Public supply) अथवा पेय-जल के अन्य साधन से प्राप्त किया जायेगा या उपभोग करने के पूर्व उस पानी की प्रभावकारी ढंग से शुद्ध किया जायेगा।

अत्यधिक भीड़-भाड़ (धारा 16)
(Over Crowding)

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान बनाये गये हैं;

1. **अधिक भीड़ पर रोक** - किसी भी कारखाने के किसी भी कक्ष में इतनी अधिक भीड़ नहीं होने दी जाएगी कि वहां कार्यरत श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानी पहुंचे।

2. **मुख्य निरीक्षक द्वारा आदेश** - मुख्य निरीक्षक यदि आवश्यक समझे तो इस बात के लिए एक लिखित आदेश जारी कर सकता है कि प्रत्येक कार्यकक्ष में लगा दी जाये।

3. **न्यूनतम स्थान की व्यवस्था** - इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के बाद लगाये गये कारखानों के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में कार्यरत प्रत्येक श्रमिक के लिए 14.2 घनमीटर (cubic metres) स्थान की व्यवस्था की जाएगी। इस उद्देश्य के लिए फर्श से 4.2 मीटर ऊंचाई के ऊपर का स्थान ध्यान में नहीं रखा जाएगा, अर्थात् घनफुट गणना फर्श 14 फुट ऊंचाई तक ही की जायगी। इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व जो कारखाने लगाए गए हैं वह प्रतिव्यक्ति 9.9 घनमीटर स्थान का प्रावधान है।

4. **छूट देना** - मुख्य निरीक्षक एक लिखित आदेश देकर और ऐसी शर्ते लगाकर, जो वह उचित समझे, किसी भी कार्यकक्ष को इस धारा के प्रावधानों से छूट दे सकती है। लेकिन दूट देने से पूर्व उसे इस बात से सन्तुष्ट होना होगा कि उपर्युक्त नियमों का पालन करना छूट प्रदान किए जाने वाले कार्यकक्ष में काम करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य के हित में है।

प्रकाश का प्रबन्ध (धारा 17)
(Lighting)

प्रकाश की व्यवस्था के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान बनाए गये हैं:

1. **पर्याप्त एवं उपयुक्त प्रकाश की व्यवस्था** - कारखाने के प्रत्येक भाग में जहां श्रमिक काम करते हैं अथवा आते-जाते हैं वहां पर्याप्त एवं उपयुक्त प्रकाश का प्रबन्ध अवश्य किया जायेगा। ऐसा प्रकाश प्राकृतिक या कृत्रिम अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है।

2. **कार्यकक्षों में प्रकाश व्यवस्था** - प्रत्येक कारखाने में कार्यकक्षों में प्रकाश की व्यवस्था करने के लिए यदि कंचित (glazzed) खिड़कियों और छत के पास के रोशनदान (sky lights) का उपयोग किया जा सकता है तो ऐसे खिड़कियां व रोशनदान अन्दर-बाहर दोनों तरफ से रखे जायेंगे तथा धारा 13 की उपधारा (3) के प्रावधान का पालन (अत्यधिक तापमान में कमी करने का उपाय) करते हुए यथासम्भव इन्हें बाधामुक्त रखा जायेगा।

3. **प्रकाश का स्तर** - राज्य सरकार कारखानों अथवा किसी वर्ग या श्रेणी के कारखानों अथवा किसी भी निर्माण प्रक्रिया के लिए पर्याप्त या उपयुक्त प्रकाश के स्तर (standard) निर्धारित कर सकती है।

4. **चकाचौंध तथा परछाई रोकना** - प्रत्येक कारखाने में निम्न बातों को रोकने हेतु यथासम्भव प्रभावकारी व्यवस्था की जाएगी।

   अ) **ऐसा तीव्र** (चकाचौंध करने वाला) प्रकाश जो या तो प्रकाश के उद्‌गम स्थान से सीधा आता है अथवा किसी चिकनी या चमकदार सतह के प्रतिबिम्ब के रूप में।

   ब) **इतनी अधिक परछाई** (shadows) बनना जिससे श्रमिकों की आंखों पर जोर पड़े अथवा किसी श्रमिक की दुर्घटना का खतरा हो।

इस धारा में पर्यापत एवं उपयुक्त प्रकार की व्यवस्था कारखाने के प्रत्येक भाग में की जानी चाहिए जहां श्रमिक काम करते हैं या जहां से वे गुजरते हैं। प्रकाश कृत्रिम या प्राकृतिक दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रकाश की व्यवस्था नियोक्ता का वैधानिक दायित्व है इसका उल्लंघन नियोक्ता की ओर से की गयी अवहेलना मानी जायेगी।

पेयजल की व्यवस्था (धारा 18)
(Drinking Water)

इस धारा में पेयजल के लिए निम्न व्यवस्था की गयी है:

1. **पर्याप्त मात्रा में पेयजल उपलब्ध करना** - प्रत्येक कारखाने में, काम करने वाले समस्त श्रमिकों के लिए स्वास्थ्यप्रद पेदजल उपलब्ध करने की पर्याप्त व्यवस्था की जायेगी। यह व्यवस्था कारखाने में सुविधाजनक तथा उपयुक्त स्थानों पर की जाएगी।

2. **पेयजल को ठण्डा करना** - ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहां साधारणतः 250 से अधिक श्रमिक काम करते हों, गर्मी के मौसम में पेयजल को ठण्डा करने तथा उसके वितरण की उचित व्यवस्था की जायेगी।

3. **पेयजल के सम्बन्ध में सूचना** - जिन स्थानों में पेयजल की व्यवस्था की जायेगी वहां स्पष्ट रूप से पेयजल शब्द (कारखानों में काम करने वाले बहुसंख्यक श्रमिकों द्वारा समझी जाने वाली भाषा में) लिखा रहेगा।

4. **पेयजल का स्थान** - पेयजल के स्थान, स्नान ग ह, मूत्रालय, शौचालय आदि से 6 मीटर के अन्दर नहीं होंगे। यदि मुख्य निरीक्षण अनुमति दे तो यह दूसरी 6 मीटर से कम भी हो सकती है।

5. **विवरण के सम्बन्ध में नियम तथा जांच** - प्रत्येक कारखाने अथवा वर्ग या श्रेणी के कारखाने में पेय जल की उपयुक्त पूर्ति व वितरण के लिए राज्य सरकार नियम बना सकती है तथा निर्धारित अधिकारियों द्वारा उसकी जांच करा सकती है।

इस धारा के अंतर्गत कारखानों में पेयजल की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में नियम बनाए गए हैं। नहाने धोने आदि की व्यवस्था के लिए धारा 42 के प्रावधान लागू होंगे जिनका वर्णन सातवें अध्याय में किया गया है। धारा 18 का आदेश है कि कारखाने में पर्याप्त पेय-जल की पूर्ति का प्रबन्ध किया जायेगा तथा इसकी देखरेख भी निर्धारित रीति से की जाएगी। किंतु पेय जल की पूर्ति किस साधन से की जायेगी, इसके सम्बन्ध में यह धारा मौन है।

शौचालय एवं मूत्रालय का प्रबन्ध (धारा 19)
(Latrines and Urinals)

1. प्रत्येक कारखाने में शौचालय एवं मूत्रालय के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गयी है:

   (i) **स्त्री एवं पुरुष के लिए प थक-प थक व्यवस्था** - पुरुष व स्त्री श्रमिकों के लिए प थक-प थक चारों ओर से घिरे शौचालय व मूत्रालय का प्रबन्ध किया जायेगा।

   (ii) **शौचालय व मूत्रालय की पर्याप्त व्यवस्था** - निर्धारित प्रकार के शौचालय व मूत्रालय की सुविधा का पर्याप्त प्रबन्ध किया जायेगा। ये शौचालय व मूत्रालय ऐसे सुविधाजनक स्थानों पर होंगे जब तक श्रमिक कारखाने में रहे, वे प्रत्येक समय वहां जा सकें।

   (iii) **हवादार तथा प्रकाशयुक्त होना** - उक्त स्थानों में पर्याप्त प्रकाश तथा वायु - संचालन की व्यवस्था की जायेगी और जब तक मुख्य निरीक्षक विशेष रूप से लिखित छूट नहीं देता, ऐसे शौचालय व मूत्रालय के बीच एक खुला हुआ स्थान या वायु - संचालित मार्ग होना आवश्यक है।

   (iv) **मेहतर का प्रबन्ध** - शौचालय, मूत्रालय तथा नहाने-धाने के स्थानों की सफाई के लिए मेहतर नियुक्त किए जायेंगे जिनका मुख्य कार्य इनकी सफाई रखना होगा।

   (v) **साफ एवं स्वास्थ्यप्रद रखना** - शौचालय एवं मूत्रालय प्रत्येक समय साफ तथा स्वास्थ्यप्रद दशा में रखे जायेंगे।

2. राज्य सरकार किसी भी कारखाने में साधारणतया नियुक्त पुरुष व स्त्री श्रमिकों की संख्या के अनुपात में उन शौचालयों व मूत्रालयों की संख्या निर्धारित कर सकती है जिनका प्रबन्ध कारखाने में किया गया हो इसमें अतिरिक्त राज्य सरकार श्रमिकों के स्वास्थ्य हेतु ऐसी अन्य बातों की व्यवस्था भी कर सकती है जिन्हें वह उचित समझे। इन बातों में श्रमिकों के दायित्व भी सम्मिलित हैं।

3. ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहां साधारणतया 250 से अधिक श्रमिक नियुक्त हों, शौचालय, मूत्रालय इत्यादि स्थानों के सम्बन्ध में निम्न बातों का पालन करना होगा:

   अ) समस्त शौचालय व मूत्रालय निर्धारित स्वास्थ्यप्रद प्रकार के होंगे।

   ब) शौचालय, मूत्रालय व सैनेटरी ब्लॉक (Sanitary block) के फर्श तथा 90 सेंटीमीटर ऊंचाई तक उनके अन्दर की दीवारें कंचित टाइल (glazzed tiles) से अथवा अन्य प्रकार से इस तरह बनायी जायेंगी कि उनकी सतह चिकनी, चमकदार व दुभेंद्य रहे।

   स) उपाधार (1) के वाक्य (द) तथा (इ) में वर्णित नियम पर बिना कोई विपरीत प्रभाव डाले उक्त शौचालय व मूत्रालयों के फर्श, दीवारों के भाग व ब्लॉक तथा सैनिटरी पैन्स (Sanitary pans) सात दिन में कम से कम एक बार शुद्ध करने वाले (ditergents) अथवा कीटाणुनाशक (disinfectants) पदार्थ अथवा दोनों से धोये जायेंगे।

यहां श्रमिकों के दायित्व से हमारा अभिप्राय यह है कि श्रमिकों के लिए जिन-जिन बातों की व्यवस्था की गयी है वे उनका उचित उपयोग करेंगे तथा उनकी सुविधाओं के लिए बनाए गये नियमों की सीमा में ही वे कार्य करेंगे। इन नियमों का उल्लंघन करने पर श्रमिकों को दण्डित किया जा सकता है।

पीकदान (धारा 20)
(Spitoons)

इस धारा के अंतर्गत निम्न व्यवस्था की गयी है:

1. प्रत्येक कारखाने में पीकदानों का पर्याप्त संख्या में प्रबन्ध किया जाएगा और इन्हें सुविधाजनक स्थानों पर रखा जाएगा। ये साफ व स्वास्थ्यप्रद दशा में रखे जायेंगे।
2. पीकदानों के अतिरिक्त अन्य स्थान पर थूकने वाले व्यक्ति पर 3 रूपये तक जुर्माना किया जाएगा।
3. राज्य सरकार इन पीकदानों के प्रकार, संख्या व उनके रखे जाने के स्थान आदि के निर्माण हेतु नियम बना सकती है। साथ ही वह इन्हें साफ व स्वास्थ्यप्रद दशा में रखने आदि के बारे मे ंभी नियम बना सकती है।
4. कोई भी व्यक्ति कारखाने के भवन के अन्दर, पीकदानों के अतिरिक्त अन्य स्थान पर नहीं थूकेगा। भवन के उपयुक्त स्थानों पर एक नोटिस या सूचना लगा दी जाएगी जिसमें थूकने सम्बन्धी प्रावधान व उनके उल्लंघन पर दिए जाने वाले दण्ड का उल्लेख होगा।

इस अधिनियम के पूर्व कारखानों में श्रमिकों की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था नहीं थी। खतरनाक काम के दौरान और मशीनों के साथ कार्य करते हुए श्रमिकों को बहुधा दुर्घटना का शिकार होना पड़ता था। मन्त्रों की घेराबन्द करने, जोखिमपूर्ण यंत्रों पर नवयुवकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने तथा निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत खतरे से रक्षा करने इत्यादि के सम्बन्ध में पूर्ण व्यवस्था नहीं थी। प्रस्तुत अधिनियम में इन सब बातों पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। अधिनियम की धारा 21 से 41 तक सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों का उल्लेख किया गया है।

सुरक्षा प्रावधान
(Safety Provisions)

यन्त्रों की घेराबन्दी (धारा 21)
(Fencing of Machinery)

"यन्त्रों की घेराबंदी" का अर्थ - यंत्रों की घेराबंदी से तात्पर्य यंत्रों को इस प्रकार सुरक्षित करना है कि कारखाने में काम करने वाले श्रमिकों को यन्त्रों से किसी प्रकार कोई चोट न पहुंचे तथा दुर्घटना का शिकार न होना पड़े। घेराबन्दी यंत्रों को ढंककर, उनके आस-पास रक्षक लगाकर अथवा अन्य प्रकार से की जा सकती है बहुत से यंत्र ऐसे होते हैं जिनकी घेराबंदी यदि नहीं की जाए तो स्वयं यंत्रों को व उन पर काम करने वाले व्यक्ति को खतरे की आशंका बनी रहती है। घेराबंदी के सम्बन्ध में प्रस्तुत धारा के अंतर्गत निम्नलिखित व्यवस्था की गयी है यंत्रों की घेराबन्दी सुरक्षित रूप से की जायेगी। घेराबन्दी ठोस बनावट के रक्षकों द्वारा की जायेगी जो निरन्तर उसी दशा में बने रहेंगे तथा इस प्रकार लगाये जायेंगे। कि जब यंत्रों के भग चलते हों या प्रयोग में हो तो उनकी घेराबंदी हो जाये।

घेराबन्दी के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:

1. घेराबन्दी का उद्देश्य श्रमिकों की सुरक्षा करना है तथा दुर्घटनाओं को रोकना है।
2. घेराबन्दी ऐसी हो कि यंत्रों के चालू रहने पर वे पूर्णतः सुरक्षित अर्थात् घेराबन्दी किए हुए हों।
3. घेराबंदी न करने से श्रमिक को कोई चोट लग जाती है तो परिभोगी श्रमिक को हर्जाना देगा।
4. जो यंत्र स्वः ही सुरक्षित हों और उनमें कोई खतरा उत्पन्न नहीं हो उनकी घेराबंदी नहीं की जाएगी।
5. घेराबंदी वाले यंत्र की जांच - पड़ताल या समायोजन क्रिया विशेष रूप से प्रशिक्षित प्रौढ़ पुरुष श्रमिक द्वारा ही की जायेगी जैसा कि धारा 22(7) में बताया गया है।

6. घेराबंदी का आशय पूर्ण घेराबंदी से है न कि आंशिक घेराबंदी से।
7. प्रत्येक खतरनाक यंत्र की घेराबंदी की जायेगी भले ही उस यंत्र तक श्रमिक को आने-जाने का काम नहीं पड़ता हो।
8. बन्द पड़े यंत्र की घेराबंदी जरूरी नहीं है।

चलते हुए यंत्र के निकट कार्य करना (धारा 22)
(Work on or Near Machinery in Motion)

चलते हुए यंत्र पर या उनके निकट कार्य करने से दुर्घटना की सम्भावना बनी रहती है। भारतीय कारखाना अधिनियम 1948 में इस बात की व्यवस्था की गयी है कि चलते हुए यंत्र पर या उसके निकट कार्य करने के सम्बन्ध में क्या-क्या सावधानियां बरती जायें। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं:

1. **विशिष्ट प्रशिक्षित प्रौढ़ पुरुष श्रमिक द्वारा जांच पड़ताल** - जब किसी कारखाने में धारा 21 में सन्दर्भित यन्त्र की किसी भाग की जांच करना यंत्र की चालू दशा में आवश्यक हो जाय अथवा जांच या परीक्षण के फलस्वरूप पट्टे चढ़ाना, उतारना, तेन देना या अन्य समायोजन क्रिया करनी पड़े तो ऐसी जांच या क्रियाएं विशेष रूप से प्रशिक्षित प्रौढ़ पुरुष श्रमिक (Specially trained male adult worker) द्वारा ही की जाएगी जो चुस्त वस्त्र पहने होगा। इस व्यक्ति का नाम सम्बन्धित रजिस्टर (इस उद्देश्य के लिए रखे गये) में लिखा जाएगा। जांच या क्रिया करते समय वह व्यक्ति:
   (i) किसी चलती हुई चरखी के पट्टे को तब तक हाथ नहीं लगाएगा जब कि कि पट्टे की चौड़ाई 6 इंच के कम न हो और पट्टे का जोड़ फीते से बंधा हुआ या समतल न कर दिया हो।
   (ii) यंत्रों की घेराबंदी सम्बन्धी इस अधिनियम के अन्य किसी भी प्रावधान पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, प्रत्येक सेट स्क्रू किसी भी घूमते हुए धूरे में लगी हुई कील या चाभी, तकली, चक्र या दांतेदार पहिया, समस्त दांतेदार, पेंचदार या फ्रिक्शन गियर की, जब तक वे चालू रहें और जिनमें उस व्यक्ति के (घेराबंदी न करने की दशा में) सम्पर्क में आने की आशंका हो, सुरक्षित रूप से घेराबंदी कर दी जाएगी ताकि ऐसे सम्पर्क को रोका जा सके।
2. **स्त्री तथा नवयुवक को अनुमति नहीं देना** - प्रथम चालक या किसी भी प्रेषण यंत्र के किसी भी भाग को जब तक कि प्रथम चालक या प्रेषण यंत्र चालू अवस्था में हो, साफ करने, तेल देने अथवा ठीक करने के लिए किसी भी स्त्री या नवयुवक को अनुमति नहीं दी जाएगी यदि ऐसा कार्य करने (तेल देने, साफ करने अथवा ठीक करने) में उन्हें उस यंत्र के या किसी समीपवर्ती यंत्र से चोट लगने का खतरा हो।

खतरनाक यंत्रों पर नवयुवकों की नियुक्ति (धारा 23)
(Employment of Young Persons on Dangerous Machines)

इस धारा में प्रावधान की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:

अ) नवयुवक की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है।

ब) यदि नवयुवक से काम लिया जाता है तो उसे तमाम सम्भावित खतरों की जानकारी देना अनिवार्य है।

स) उसे इस सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

द) वह ऐसे व्यक्ति की देख-रेख में कार्य करेगा जिसे मशीन का पूरा-पूरा ज्ञान एवं अनुभव हो।

य) कौन-सा यंत्र खतरनाक है जहां कि नवयुवक साधारणत: कार्य नहीं करेगा इसका निर्धारण राज्य सरकार करेगी।

शक्ति से सम्बन्ध विच्छेद करने वाले पुर्जे एवं साधन (धारा 24)
(Striking Gear and Devices for Cutitng off Power)

1. **प्रत्येक कारखाने में** -
   (अ) शक्ति से सम्बन्ध जोड़ने वाली तथा बन्द करने वाली चरखियों (जो प्रेषण यंत्र का एक भाग होती हैं) पर चलने वाले पट्टे को एक चरखी से दूसरी चरखी पर सरकाने के लिए उपयुक्त स्ट्राइकिंग गियर (Striking Gear) या अन्य कुशल उपकरण की व्यवस्था रखी जाएगी तथा उसका उपयोग किया जाएगा। ये उपकरण इस प्रकार बनाए

जायेंगे, रखे जायेंगे, तथा प्रयुक्त किए जायेंगे कि पट्टे शक्ति से सम्बन्ध जोड़ने वाली चरखी पर वापस न सरक सकें।

(ब) चालक पट्टे (Dividing belts) जब उपयोग में न आ रहे हों तो उन्हें गतिमान धुरों (shafting in motion) पर पड़ा नहीं रहने दिया जाएगा।

2. जब किसी कारखाने में शक्ति को चालू करने या बन्द करने की व्यवस्था हो और भूल से "बंद" के बजाय "चालू" हो जाने की सम्भावना हो तो ऐसी दशा में दुर्घटना को रोकने की द ष्टि से ताला लगाकर उसे सुरक्षित रखा जाएगा ताकि प्रेषण यंत्र (जहां से शक्ति प्रेषित होती है) या अन्य यंत्र अचानक चालू न हो सकें।

3. आकस्मिक घटना की स्थिति में कारखाने के प्रत्येक कार्यकक्ष में चलते हुए यंत्र से शक्ति का सम्बन्ध काटने के लिए उपयुक्त साधनों का प्रबन्ध किया जायेगा। यदि कोई कारखाना इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व से ही चल रहा है तो यह उपधारा केवल उन्हीं कार्यकक्षों पर लागू होगी जहां शक्ति के रूप में बिजली का उपयोग किया जाता हो।

स्वयं कार्य करने वाली मशीनें (धारा 25)
(Self-Acting Machines)

किसी कारखाने में, जिस स्थान पर स्वयं कार्य करने वाली मशीनें चलती हैं और किसी व्यक्ति को अपने कार्य के दौरान या अन्यथा आना-जाना पड़ता हो तो वहां उन मशीनों के आगे-पीछे तथा दायें-बायें चलने वाले भाग और उन पर ले जायी जाने वाली सामग्री को मशीनों के भीतर या बाहरी रास्ते में किसी भी स्थायी बनावट के (जो मशीन का भाग नहीं है) 45 सेंटीमीटर के अन्दर नहीं चलने या जाने दिया जायेगा।

जो मशीन इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व स्थापित की गयी हो और जहां इस प्रावधान का पालन न किया जाता हो तो मुख निरीक्षक ऐसी मशीन के उपयोग की अनुमति दे सकता है और साथ ही सुरक्षा सम्बन्धी ऐसी शर्त लागू कर सकता है जिसे वह उचित समझे।

नये यंत्रों को ढंककर रखना (धारा 26)
(Casing of New Machinery)

यह धारा उन यंत्रों पर लागू होती है जो इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद स्थापित किए गए हों तथा जो शक्ति की सहायता से चलाये जाते हों। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:

(i) **खतरे से बचाव के लिए यंत्रों को ढकना** - प्रत्येक सेट स्क्रू, घूमते हुए धुरे, तकली, दांतेदार पहिया, पहिए पर लगे बोल्ट या चाभी को इस प्रकार ढककर अथवा अन्य किसी प्रकार प्रभावकारी ढंग से सुरक्षित रखा जायेगा ताकि खतरे से बचाव हो सके।

(ii) **दण्ड की व्यवस्था** - जो भी व्यक्ति कारखाने में उपयोग हेतु शक्ति के चलने वाली कोई ऐसी मशीन बेचता है या किराए पर देता है अथवा बेचने या किराए पर देने के लिए प्राप्त करता है, अथवा ऐसे विक्रेता या किराये से विक्रय करने वाले व्यक्ति के एजेण्ट के रूप में कार्य करता है जिसके सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रावधानों का पालन न किया गया हो तो 3 माह की अवधि तक की कैद अथवा 500 रूपये दण्ड या दोनों से दण्डित किया जा सकता है।

(iii) **सुरक्षित यंत्रों की दशा में ढकने की आवश्यकता नहीं** - समस्त दांतेदार पहिए (Spur), पेंचदार नली (worm) तथा अन्य दांतेदार या घर्षण उपकरण (friction gearing) को, जिन्हें चालू अवस्था में बार बार ठीक करने की आवश्यकता में हो पूर्णतः ढंककर रखा जायेगा। किन्तु यदि वे अपनी स्थिति के कारण इस प्रकार सुरक्षित हों जितने पूर्णतः ढककर रखने में रहते हों तो ऐसी स्थिति में उन्हें ढंककर रखने की आवश्यकता नहीं है।

कॉटन ओपनर के निकट स्त्री तथा बालकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध (धारा 27)
(Prohibition of Employment of Women and Children Near Cotton Opener)

कॉटन प्रेसिंग के कारखाने के किसी भी भाग में जहां कॉटन-ओपनर चल रहा हो किसी भी स्त्री अथवा बालक श्रमिक की नियुक्ति नहीं की जाएगी।

किंतु यदि कॉटन ओपनर का रुई भरा जाने वाला सिरा (feed end) ऐसे कमरे में हैं जो रुई की पूर्ति करने वाले सिरे (delivery end) को विभाजित करता है तथा यह विभाजन (partition) छत तक बढ़ा हुआ अथवा किसी विशेष परिस्थिति में इतना ऊंचा है जो कारखाना निरीक्षक द्वारा लिखित रूप में निर्दिष्ट किया गया हो तो ऐसी दशा में स्त्री तथा बालक श्रमिक उक्त विभाजन के उस ओर काम पर लगाए जा सकते हैं जहां रुई भरा जाने वाला सिरा (feed end) स्थित है।

माल चढ़ाने तथा माल और मनुष्यों को ऊपर ले जाने व नीचे वोल यंत्र (धारा 28)
(Hoists and Lifts)

जो मशीनें कारखाने में माल तथा मनुष्यों को ऊपर ले जाने व नीचे लाने के लिए प्रयुक्त होती हैं उन्हें न्नहॉइस्ट तथा लिफ्ट" की संज्ञा दी जाती है। ऐसे यंत्रों के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेष बातें लागू होती हैं।

(i) **अच्छी यांत्रिक बनावट का होना तथा भली-भांति रखना** - प्रत्येक हॉइस्ट व लिफ्ट अच्छी यांत्रिक, बनावट, ठोस पदार्थ और पर्याप्त शक्ति के होंगे। प्रति छह माह की अवधि में कम से कम एक बार किसी योग्य व्यक्ति द्वारा उनकी पूर्ण रूप से जांच की जाएगी तथा उन्हें भली-भांति रखा जाएगा।

(ii) **सुरक्षित मार्ग** - प्रत्येक हॉइस्ट व लिफ्ट का रास्ता ऐसे घेरे के द्वारा सुरक्षित रखा जायेगा जिसमें फाटक लगे होंगे।

(iii) **इण्टर लॉकिंग की व्यवस्था** - वाक्य (ब) तथा (द) में संदर्भित प्रत्येक फाटक में इण्टर लॉकिंग (inter locking) अथवा अन्य साधनों की इस प्रकार व्यवस्था रहेगी कि पिंजरा जब तक उतरने के स्थान पर न पहुंच जाय, फाटक नहीं खुल सकेगा और जब फाटक बन्द हो जाय, पिंजरा चल नहीं सकेगा।

(iv) **अधिकतम बोघ का उल्लेख** - प्रत्येक हॉइस्ट या लिफ्ट पर उनके द्वारा उठाए जाने वाले अधिकतम सुरक्षित वजन की सीमा साफ-साफ अंकित कर दी जाएगी और इस सीमा से अधिक वजन उन पर नहीं ले जाया जायेगा।

(v) **फाटक की व्यवस्था** - प्रत्येक हॉइस्ट या लिफ्ट का पिंजरा मनुष्यों को लाने-ले जाने के लिए प्रयुक्त होता है, उसमें प्रत्येक और जिधर से उतरने की व्यवस्था हो, एक फाटक लगाया जायेगा।

नए प्रावधान - इस अधिनियम के लागू होने के बाद लगाए गए या पुनर्निर्मित हॉइस्ट तथा लिफ्ट के लिए निम्नांकित शर्ते भी लागू होंगी:

(i) **रस्सी व जंजीर की व्यवस्था** - जहां पिजरा किसी रस्सी या जंजीर पर आश्रित हो वहां कम से कम दो रस्सी अथवा पिंजरे व संतुलन भार (balance weight) से अलग-अलग सम्बद्ध होंगी तथा प्रत्येक रस्सी व जंजीर (उसके साथ लगी हुई वस्तु सहित) पिंजरे को समस्त वजन तथा उस पर ले जाए जाने वाले अधिकतम बोझ को उठाने की क्षमता रखेगी।

(ii) **स्वचालित साधनों का प्रबन्ध** - ऐसे स्वचालित कुशल साधन का प्रबन्ध किया जाएगा जिससे पिंजरा अपनी नियत सीमा से आगे नहीं बढ़ पाये।

(iii) **रस्सी या जंजीर टूटने पर व्यवस्था** - रस्सियों, जंजीरों या उनसे लगी हुई वस्तुओं के टूट जाने की दशा में ऐसे कुशल साधनों की व्यवस्था की जाएगी जो पिंजरे तथा उस पर ले जाने वाले अधिकतम बोझ को संभाल सकें।

वजन उठाने वाली मशीनें, जंजीरें, रस्सियां तथा भारी वजन उठाने वाले यंत्र (धारा 29)
(Lifting Machines, Chains, Ropes and Lifting Tacles)

किसी भी कारखाने में प्रत्येक वजन उठाने वाली मशीन (हॉइस्ट और लिफ्ट को छोड़कर) जंजीर, रस्सी तथा भारी वजन उठाने वाले यंत्र जो मनुष्यों, माल या अन्य सामग्री को ऊपर ले जाने व नीचे लाने के उपयोग में आते हैं, कि सम्बन्ध में निम्नलिखित साधनों का पालन होगा।

(i) **क्रेन से दूरी** - जब कोई व्यक्ति क्रेन (Crane) के रास्ते में या उसके समीप ऐसे स्थान पर काम कर रहा हो जहां इसके टकराने की आशंका हो तो इस बात के प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे कि क्रन उस स्थान के 6 मीटर के अन्दर न पहुंचने पाये।

(ii) **सरकार द्वारा नियम बनाना** - राज्य सरकार ऐसे नियम बना सकती है कि उपरोक्त शर्तो के अलावा अन्य शर्ते भी लागू

होंगे। यदि किसी शर्त का पालन करना असम्भव हो जाए तो राज्य सरकार छूट देने के सम्बन्ध में भी नियम बना सकती है।

घूमने वाली मशीन (धारा 30)
(Revolving Machines)

इन मशीनों के सम्बन्ध में, इस धारा के अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधान हैं:

1. प्रत्येक कारखाने में, जहां पीसने की क्रिया की जाती है, प्रयुक्त की जाने वाली प्रत्येक मशीन पर या उसके समीप स्थायी रूप से एक सूचना लगा दी जाएगी जिसमें निम्नलिखित का उल्लेख होगा।
   (i) पिसाई करने वाले प्रत्येक पत्थर या पिसने वाले पहिए (abrasive wheel) की अधिकतम सुरक्षित कार्यशील पारिधिग गति;
   (ii) धुरे या तकली की गति जिस पर पहिया चढ़ा हुआ है; तथा
   (iii) धुरे या तकली पर लगे चक्र का व्यास जो उक्त सुरक्षित कार्यशील पारिधिक गति प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।
2. प्रत्येक कारखाने में इस बात के प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे कि प्रत्येक घूमने वाले पात्र (revolving vessel), पिंजरे, टोकरी, गतिपालक पहिये (flywheel) चरखी, थाली (disc) अथवा इसी प्रकार शक्ति के द्वारा चलाए जाने वाले अन्य यंत्रों की गति, उक्त सुरक्षित कार्यशील पारिधिक गति से अधिक न बढ़ने पाये।

दबाव यंत्र (धारा 31)
(Pressure Plants)

जिन कारखानों में दबाव यंत्रों का प्रयोग होता है वहां निम्नलिखित प्रावधान लागू होंगे:

1. **अधिक दबाव को रोकने के उपाय करना** - यदि किसी कारखाने में निर्माण प्रक्रिया में प्रयुक्त किसी यंत्र या मशीन का कोई भाग वायुमण्डल के दबाव से अधिक दबाव पर चलता है तो वहां इस बात के प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे कि सुरक्षित कार्यशील दबाव (safe working pressure) से अधिक दबाव न बढ़ने पाये।
2. **जांच के लिए बनाना** - राज्य सरकार इन दबाव यंत्रों की जांच तथा परीक्षण के लिए नियम बना सकती है और सुरक्षा संबंधी ऐसे अन्य उपाय निर्धारित कर सकता है जो वह किसी कारखाने अथवा वर्ग या श्रेणी के कारखाने के लिए आवश्यक समझे।

फर्श, सीढ़ियां तथा पहुंचने के साधन (धारा 32)
(Floor, Stairs and Means of Access)

फर्श, सीढ़ियों तथा पहुंचने के साधनों से सम्बन्ध में इस धारा के निम्न आदेश हैं।

1. **मजबूत बनावट तथा उचित देखरेख** - प्रत्येक कारखाने में समस्त फर्श प्रेढ़ियां, सीढ़ियां, रास्ते तथा गलियारे (gangways) मजबूत बनावट के होंगे और वे ठीक प्रकार से रखे जायेंगे। सुरक्षा की द ष्टि से जहां भी आवश्यक हों, पेढ़ियों, सीढ़ियों, रास्तों तथा गलियारों में सहारे के लिए ठोस सरियों (handrails) का प्रबन्ध किया जाएगा। प्रत्येक ऐसे स्थान तक पहुंचने के लिए जहां किसी भी श्रमिक को किसी भी समय काम करना पड़ता है, यथासम्भव सुरक्षित साधनों की व्यवस्था की जाएगी तथा उन्हें ठीक प्रकार से रखा जायेगा।
2. जब किसी व्यक्ति को इतनी ऊंचाई पर कार्य करना पड़ता है जहां से उसके गिर पड़ने की आशंका हो तो ऐसी दशा में उसकी सुरक्षा के लिए यथोचित रूप से व्यावहारिक उपाय किए जाएंगे। ऐसे उपाय घेराबंदी या अन्य रूप में हो सकते हैं।

3. **सुरक्षा तथा सुविधा** - कारखानों में व्यक्तियों को चलने, चढ़ने व उत्तर में सुरक्षा तथा सुविधा रहे, इस बात को ध्यान में रखकर उपयुक्त व्यवस्था की गयी है यहां भी नियोक्ता पर ही पूर्ण दायित्व है कि वह उपर्युक्त बातों की व्यवस्था करे तथा व्यावहारिक द ष्टि से आवश्यक सभी साधनों को प्रबंध करे जो सुरक्षा के लिए होने चाहिए।

गड्ढे हौज, फर्श के सुराख आदि (धारा 33)
(Pits, Sumps, Openings in Floors Etc.)

यदि कारखाने में स्थिति प्रत्येक पात्र (Vessel), हौज (sump), टंकी (tank) गड्ढा अथवा भूमि या फर्श का सुराख अपनी गहराई, स्थिति, बनावट अथवा उसमें रखी वस्तुओं के कारण इस प्रकार के हैं कि उनसे कोई खतरा उत्पन्न हो सकता है तो ऐसी दशा में उन्हें या तो सुरक्षित रूप से ढक दिया जायेगा या उनकी घेराबंदी कर दी जायेगी।

अत्यधिक बोघ (धारा 34)
(Excesive Weights)

(i) **अत्यधिक बोझ उठाने पर प्रतिबंध** - किसी भी कारखाने में किसी व्यक्ति को इतना भारी बोझ उठाने, ले जाने अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखने के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकेगा जिससे उसे क्षति पहुंचने की आशंका हो।

(ii) **अधिकमत बोझ का निर्धारण** - राज्य सरकार नियम बनाकर कारखानों में अथवा वर्ग या श्रेणी के कारखानों में या किसी निर्दिष्ट निर्माण प्रक्रिया में नियुक्त प्रौढ़ पुरुष, प्रौढ़ स्त्री, किशोर और बालक श्रमिकों के द्वारा उठाये जाने, ले जाये जाने या हटाये जाने वाले अधिकतम बोझ का निर्धारण कर सकती है।

आंखों की रक्षा (धारा 35)
(Protection of Eyes)

कारखाने में की जाने वाली किसी भी ऐसी निर्माण प्रक्रिया में जिसके संबंध में यह निर्धारित कर दिया जाय कि उसके दौरान उत्पन्न होने वाले कणों या छोटे छोटे टुकड़ों से अथवा अत्यधिक प्रकाश के कारण आंखों को हानि पहुंचने का सन्देह है, तो ऐसी दशा में राज्य सरकार नियम बनाकर यह आदेश दे सकती है कि उस प्रक्रिया में अथवा उसके समीपस्थ काम करने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा हेतु प्रभावकारी परदों या उपयुक्त चश्मों का प्रबंध किया जाये।

इस धारा में 3 बातों पर बल दिया गया है:

1. आंखों की सुरक्षा हेतु प्रभावकारी पर्दो की या उपयुक्त चश्मों की व्यवस्था करना।
2. व्यवस्था की उपयुक्तता के लिए नियोक्ता को उत्तरदायी मानना।
3. चश्मों की जानकारी श्रमिकों को देना।

खतरनाक धुंए के निवारण के उपाय (धारा 36)
(Precautions Against Dangerous Fumes)

खतरनाक धुएं के निवारण के सम्बन्ध में इस धारा के प्रमुख आदेश निम्न प्रकार हैं:

1. **प्रवेश पर प्रतिबन्ध** - किसी भी कारखाने में कोई भी व्यक्ति किसी भी कक्ष (chamber), टंकी (tank) पीपे (vat) गड्ढे (pit) नल (pipe) चिमनी (flue) अथवा चारों ओर से घिरे हुए किसी ऐसे स्थान में प्रवेश नहीं कर सकेगा, और न ही उसे प्रवेश करने की अनुमति दी जायेगी, यदि वहां खतरनाक धुआं इतना मात्रा में होता है कि उससे व्यक्तियों के दम घुटने की आशंका हो। केवल उसी दशा में उन्हें प्रवेश करने दिया जायेगा जबकि खतरनाक धुएं के निवारण हेतु वहां पर्याप्त आकार के मेन होल (main hole) अथवा प्रभावकारी निर्गमन साधनों (means of egress) का प्रबन्ध कर दिया गया हो।
2. **सांस लेने के उपयुक्त यंत्र आदि की व्यवस्था तथा प्रशिक्षण** - प्रत्येक कारखाने में उक्त घिरे हुए स्थान के पास (जहां किसी भी श्रमिक ने प्रवेश किया हो) सांस लेने के उपयुक्त यंत्र, होश में लाने वाले यंत्र तथा पट्टा और रस्सियां तैयार

रखी जायेंगी। ऐसे यंत्रों की समय-समय पर सक्षम व्यक्ति द्वारा जांच की जायेगी जो यह प्रमाणित करेगा कि वे उपयोग करने लायक हैं। प्रत्येक कारखाने में काम करने वाले व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या को सांस लेने वाले यंत्रों का उपयोग करने तथा सांस वापस लाने की विधियों के बारे में प्रशिक्षित व अभ्यस्त किया जायेगा।

3. **प्रवेश की अनुमति कब दी जायेगी** - उपर्युक्त धुएं से घिरे हुए स्थानों में कोई भी व्यक्ति तब तक प्रवेश नहीं कर सकेगा, और न ही प्रवेश करने की उसे अनुमति दी जायेगी, जब तक कि निम्नलिखित व्यवस्था न की गयी हो।
   (i) वहां होने वाले धुएं को निकालने तथा धुएं के प्रवेश को रोकने के व्यावहारिक उपाय।
   (ii) अपने द्वारा की गयी जांच के आधार पर सक्षम व्यक्ति द्वारा लिखित रूप में इस बात का प्रमाण पत्र देना कि वह स्थान खतरनाक धुएं से मुक्त है और व्यक्तियों के प्रवेश करने योग्य है।
   (iii) श्रमिक (प्रवेश के समय) सांस लेने का उपयुक्त यंत्र व पट्टा अपने साथ लिए हुए हो। यह पट्टा एक ऐसी रस्सी से बंधा होगा जिसका खुला हुआ सिरा घिरे हुए स्थान के बाहर की ओर खड़े व्यक्ति के हाथ में होगा।
4. **वायु संचालन द्वारा या अन्य प्रकार से उस स्थान को ठंडा करने की व्यवस्था** - कोई भी व्यक्ति किसी भी कारखाने की वॉयलर भट्टी (boiler furnance) बॉयलर चिमनी, टंकी, पीपे, नल अथवा अन्य घिरे हुए स्थान में काम करने अथवा जांच करने के लिए तब तक प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा जब तक कि उसे वायु संचालन द्वारा या अन्य उपाय द्वारा ठण्डा न किया गया हो ताकि वह व्यक्ति सुरक्षित रूप से प्रवेश कर सके।

चलित विद्युत प्रकाश के उपयोग के सम्बन्ध में सावधानियां (धारा ३६-ए)

यदि किसी कारखाने में चलित विद्युत प्रकाश का उपयोग होता है तो निम्नलिखित बातों का पालन करना होगाः

(i) **24 वॉल्ट्स से अधिक से विद्युत उपकरण की अनुमति नहीं देना** - किसी कक्ष, टंकी, पीपे, गड्ढे, नल, चिमनी या घिरे अन्य स्थान में 24 वॉल्ट्स से अधिक का विद्युत उपकरण प्रयुक्त या चलित विद्युत प्रकाश के उपयोग की अनुमति तब तक नहीं दी जाएगी तब तक कि सुरक्षा का प्रबंध नहीं कर दिया जाता।

(ii) **केवल ज्वालासिद्ध प्रकाश का उपयोग करना** - यदि उपरोक्त स्थान पर कोई प्रज्जवलनशील गैस, धुआं या धूल उठली हो तो ऐसी दशा में ज्वालारुद्ध (flame proof) लैम्प या प्रकाश के अलावा अन्य बनावट के लैम्प या प्रकाश का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

विस्फोटक या प्रज्वलनशील धूल, गैस आदि (धारा 37)
(Explosive or Inflammable Dust, Gas etc.)

इनके सम्बन्ध में अधोलिखित प्रावधान उल्लेखनीय हैंः

1. **विस्फोट रोकने के उपाय** - यदि कारखाने में किसी भी निर्माण प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाली धूल, गैस, धुआं या भाप इस प्रकार की है तो इतनी मात्रा में होती है कि उसमें आग लगने से विस्फोट होने की सम्भावना हो तो वहां विस्फोट रोकने के समस्त प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे।
2. **प्रभावकारी साधनों की व्यवस्था** - किसी भी कारखाने में निर्माण क्रिया में प्रयुक्त की जाने वाली मशीनरी या यंत्र की बनावट ऐसी नहीं है कि उक्त विस्फोट से होने वाली धमाके (pressure) को सहन कर सके तो विस्फोट के फैलाव तथा प्रभावों को रोकने हेतु यंत्र में गैस आदि की गति को रोकने के उपकरण (chokes), बाधक गंत्र (baffles), धुआं निर्गमन चिमनी के छेद (vent) आदि प्रभावकारी साधनों की व्यवस्था की जायेगी।
3. **विशेष दशाओं में ही यंत्र या मशीनरी का भाग खोलना** - यदि कारखाने में किसी यंत्र मशीनरी के किसी भाग में विस्फोट अथवा प्रज्वलनशील गैस या भाव वायुमण्डल के दबाव से भी अधिक भरी हुई है तो भाग खोला नहीं जा सकेगा।
4. **ताप के प्रयोग की दशा में विस्फोटक यंत्र आदि को ठण्डा करना** - कारखाने में किसी भी यंत्र, टंकी या पात्र पर जिसमें विस्फोटक या प्रज्जवलनशील पदार्थ भरा हो, झालने (welding), पीतल के पक्के जोड़ लगाने (brazing), टांका लगाने (soldering) अथवा काटने (cutting) की क्रियाएं जिनमें ताप (heat) का प्रयोग होता है तब तक नहीं की जायेंगी जब तक कि ऐसे पदार्थ या उनमें से निकलने वाले धुएं को न हटा दिया जाय अथवा ऐसे पदार्थ या उनमें से निकलने

वाले धुएं को न हटा दिया जाए अथवा ऐसे पदार्थ या धुएं को अविस्फोटक (non-explosive) अथवा अप्रज्वलनशील (non inflammable) न कर दिया जाय। यंत्र, टंकी (tank) या पात्र में इस प्रक्रिया के बाद विस्फोटक या प्रज्जवलनशील पदार्थो को उस समय तक नहीं जाने दिया जायेगा जब तक धातु पर्याप्त रूप से ठण्डी न हो जाये ताकि पदार्थ को सुलगने का खतरा न हो।

आग लगने की दशा में सावधानियां (धारा 38)
(Precautions in Case of Fire)

1. प्रत्येक कारखाने में भीतर या बाहर आग लगने तथा उसके फैलने की दशा में बचाव के समस्त व्यावहारिक उपाय किए जायेंगे तथा निम्नलिखित बातों की भी व्यवस्था की जाएगी-
   (a) आग लगने की दशा में सभी व्यक्तियों के बचने के सुरक्षित साधन, तथा
   (b) आग बुझाने के सभी आवश्यक उपकरण तथा सुविधाएं।
2. प्रत्येक कारखाने में इस बात के प्रभावकारी उपाय किए जायेंगे कि आग लगने की दशा में सभी श्रमिकों को बचाव के साधनों की भली-भांति जानकारी हो जाए तथा आग लगने की दशा में पालन की जाने वाली सामान्य बातों के सम्बन्ध में उन्हें पूर्णतः प्रशिक्षित कर दिया जाए।

दोषपूर्ण भागों के सम्बन्ध में विशेष विवरण तथा स्थायित्व के परीक्षण का अधिकार (धारा 39)
(Power to Require Specifications of Defective Parts or Tests of Stability)

यदि कारखाना निरीक्षक को यह ज्ञात हो कि कारखाने के भवन या भवन का भाग या भागों का कोई भी भाग, मशीनरी अथवा यंत्र ऐसी दशा में है कि उससे मानव जीवन अथवा सुरक्षा को कोई खतरा हो तो कारखाना, निरीक्षक कारखाने के प्रबंध या परिभोगी अथवा दोनों के नाम एक ऐसा लिखित आदेश जारी कर सकता है जिसके अंतर्गत एक निश्चित तिथि के पूर्व निम्न बातों का पालन करना होगाः

अ. ऐसे रेखाचित्र, विशिष्ट विवरण तथा अन्य विवरण भेजना जिससे यह निश्चय किया जा सके कि उक्त भवन, मार्ग, मशीनरी अथवा यंत्र सुरक्षित रूप से प्रयुक्त किए जा सकते हैं या नहीं।

ब. उनका आदेश में निर्दिष्ट ढंग से परीक्षण करना तथा निरीक्षक को परीक्षण के परिणाम की सूचना देना।

भवन तथा यंत्रों की सुरक्षा (धारा 40)
(Safety of Building and Machinery)

इस धारा के प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार हैंः

1. **विशिष्ट आदेश द्वारा उपाय निर्दिष्ट करना** - यदि कारखाना निरीक्षक को यह ात हो कि कारखाने का भवन या भवन का कोई भाग या मार्गो का कोई भाग, मशीनरी अथवा यंत्र ऐसी दशा में है कि वह मानव जीवन अथवा सुरक्षा के लिए खतरनाक हो तो वह (निरीक्षक) कारखाने के प्रबन्धक या परियोगी अथवा दोनों को एक लिखित आदेश देकर ऐसे उपाय निर्दिष्ट कर सकता है जो उसके मत में पालन किए जाने चाहिए तथा यह भी निर्देश दे सकता है कि इनका पालन इएक निश्चित तिथि के पूर्व किया जाय।
2. **उपयोग करने पर निषेध** - यदि कारखाना निरीक्षक को यह प्रतीत हो कि कारखाने के भवन या भवन के किसी भाग या मार्गो के किसी भाग, मशीनरी अथवा यंत्र से मानव - जीवन या सुरक्षा को शीघ्र खतरा हो सकता है तो ऐसी दशा में वह कारखाने के प्रबन्धक या परिभोगी अथवा दोनों को एक लिखित आदेश देकर उनका उपयोग तब तक निषिद्ध कर सकता है जब तक कि उनकी उचित रूप से मरम्मत न कर दी जाय अथवा उन्हें बदल न दिया जाए।

भवनों का रखरखाव (धारा 40ए)
(Maintenance of Building)

यदि निरीक्षक को यह प्रतीत हो कि कारखाने के किसी भवन या भवन के किसी भाग की दशा खराब है जिसमें श्रमिकों के स्वास्थ्य या कल्याण पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है तो वह प्रबन्धक या परिभागी अथवा दोनों को एक लिखित आदेश दे सकता है कि आदेश में निर्दिष्ट तिथि से पूर्व ऐसे उपाय किए जायें जो निरीक्षक की राय में उपयुक्त हों।

सुरक्षा अधिकारी (धारा 40बी)
(Safety Officers)

राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना जारी करके निम्नलिखित कारखानों में सुरक्षा अधिकारी की नियुक्ति कर सकती है।

अ. जहां साधारणतः 1,000 या अधिक श्रमिक नियुक्त हों, अथवा

ब. जहां किसी निर्माण प्रक्रिया या कार्य संचालन से उसमें नियुक्त श्रमिक को शारीरिक चोट लगने, जहर फैलने, बीमार होने का खतरा हो।

स. इन सुरक्षा अधिकारियों के कर्तव्य, योग्यता तथा सेवा की शर्तें राज्य सरकार निर्धारित करेगी।

नियम बनाने का अधिकार (धारा 41)
(Power to Make Rules)

राज्य सरकार किसी कारखाने अथवा किसी वर्ग या श्रेणी के कारखानों कार्यरत श्रमिकों की सुरक्षा के लिए ऐसे अतिरिक्त उपायों की व्यवस्था करने संबंध में नियम बना सकती है जो वह आवश्यक समझे।

श्रम कल्याण संबंधी प्रावधान
(Labour Welfare Provisions)

कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 42 से धारा 50 तक श्रम-कल्याण सम्बन्धी प्रावधानों का विस्त त विवेचन किया गया है जिनका प्रबन्ध नियोक्ता द्वारा करना अनिवार्य है।

नहाने-धोने की सुविधाएं (धारा 42)
(Washing Facilities)

1. **पर्याप्त एवं उपयुक्त सुविधाएं** - श्रमिकों के उपयोग के लिए नहाने-धोने की पर्याप्त एवं उपयुक्त सुविधाओं की व्यवस्था की जायेगी और इनकी भली-भांति देख-रेख भी की जायेगी।
2. **स्तर का निर्धारण** - राज्य सरकार किसी भी कारखाने या किसी वर्ग अथवा श्रेणी के कारखानों के लिए या किसी भी निर्माण प्रक्रिया के लिए नहाने-धोने की पर्याप्त एवं उपयुक्त सुविधाओं का स्तर निर्धारित कर सकती है।
3. **पुरुष व स्त्री श्रमिक के लिए प थक-प थक व्यवस्था**- पुरुष तथा स्त्री श्रमिकों के उपयोग के लिए नहाने-धोने की ये सुविधाएं ऐसे स्थान पर होंगे जहां श्रमिक सुविधापूर्वक पहुंच सके। इन्हें स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद दशा में रखा जायेगा।

वस्त्र रखने और सुखाने की सुविधाएं (धारा 43)
(Facilities for Storing and Drying Clothings)

राज्य सरकार किसी भी कारखाने, या वर्ग या श्रेणी के कारखानों के सम्बन्ध में ऐसे नियम बना सकती है जिनमें श्रमिकों द्वारा काम के समय न पहने जाने वाले वस्त्रों को रखने व गीले वस्त्रों को सुरखाने के लिए उपयुक्त स्थानों का प्रबन्ध किया जायेगा।

'उपयुक्त स्थान' क्या होना चाहिए यह एक विवादस्पद प्रश्न है। कोई स्थान उपयुक्त है या नहीं, इस बात का निश्चय करते समय चोरी की जोखिम या आशंका का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

बैठने की सुविधाएं (धारा 44)
(Facilities for Sitting)

इस धारा का उद्देश्य काम के दौरान श्रमिकों को थोड़ा आरम्भ पहुंचाना और थकावट दूर करना है ताकि उनकी शक्ति क्षीण न हो। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था की गयी है:

1. **खड़े रहकर कार्य करने वाले श्रमिक के लिए बैठने की व्यवस्था** - प्रत्येक कारखाने में उन समस्त श्रमिकों के लिए जिन्हें खड़े रहकर कार्य करना पड़ता है, बैठने के लिए उचित व्यवस्थाएं की जायेंगी तथा बनी रहेंगी ताकि काम के दौरान जब भी उन्हें विश्राम का अवसर मिले, वे उसका लाभ उठा सकें।
2. **मुख्य निरीक्षक द्वारा बैठने की सुविधा सम्बन्धी आदेश देना** - यदि मुख्य निरीक्षक के मत में किसी कारखाने में नियुक्त श्रमिक किसी विशेष निर्माण प्रक्रिया अथवा किसी विशेष कार्यक्रम में बैठकर कुशलतापूर्वक काम कर सकते हैं तो वह कारखाने के परिभोगी को ऐसा लिखित आदेश देकर ऐसे श्रमिकों को बैठने की सुविधाओं का प्रबंध करने के लिए निर्देश दे सकता है तथा यह मांग कर सकता है कि एक निश्चित तिथि के पूर्व वहां बैठने की सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाय।

प्राथमिक उपचार के उपकरण (धारा 45)
(First Aid Appliances)

प्राथमिक उपचार के उपकरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

1. प्राथमिक उपचार की सन्दूकों या अलमारी की व्यवस्था करना।
2. उपरोक्त सन्दूक या अलमारी में निर्धारित वस्तुओं के अलावा कुछ भी नहीं रखा जायेगा।
3. प्राथमिक उपचार की प्रत्येक सन्दूक या अलमारी एक ऐसे प थक् उत्तरदायी व्यक्ति के अधिकार में रहेगा जो प्राथमिक उपचार चिकित्सा में राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त प्रमाण-पत्र रखता हो। वह कारखाने में काम के घंटों के दौरान हमेशा उपलब्ध होगा।
4. प्रत्येक ऐसे कारखाने में जिसमें 500 से अधिक श्रमिक नियुक्त हों, या साधारणतया नियुक्त किये जाते हों एक निर्धारित आकार तथा निर्धारित वस्तुओं से सज्जित उपचार कक्ष (Ambulance room) होगा।

जलपान ग ह (धारा 46)
(Canteens)

1. सरकार नियम बनाकर यह आदेश दे सकती है कि जिस किसी कारखाने में साधारणतया 250 या इसेस अधिक श्रमिक नियुक्त हों तो वहां परिभोगी द्वारा श्रमिकों के उपयोग के लिए जलपान-ग ह की व्यवस्था की जायेगी तथा उसकी देश-रेख की जायेगी।

   जलपानग ह की व्यवस्था करने का आशक यहां उन सभी बातों की व्यवस्था करने से है जो जलपान ग ह के लिए जरूरी है। केवल भवन की व्यवस्था करने से यह नहीं माना जायेगा कि परिभोगी ने जलपानग ह की व्यवस्था कर दी है।

आश्रय स्थल विश्राम कक्ष तथा भोजन कक्ष (धारा 47)
(Shelters Rest-Rooms and Lunch Rooms)

इस धारा की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:

1. **उपयुक्त आश्रय-स्थलों, विश्राम कक्षों तथा भोजन कक्ष की व्यवस्था** - ऐसे प्रत्येक कारखानों में जहां साधारणतया 50 से अधिक श्रमिक हों, पर्याप्त तथा उपयुक्त आश्रय-स्थलों, विश्राम कक्षों व एक भोजन कक्ष की व्यवस्था की जायेगी तथा उनकी देखरेख की जायेगी। इन स्थानों में पेय-जल का प्रबन्ध भी रहेगा। यहां श्रमिक अपने द्वारा लाया गया भोजन करेंगे।

धारा 46 के अंतर्गत यदि किसी जलपानग ह की व्यवस्था की गयी है तो उसे इन व्यवस्थाओं का ही एक अंग माना जायेगा।

2. उपर्युक्त विश्राम स्थल अथवा भोजनकक्ष पर्याप्त रूप से प्रकाशयुक्त और वायु-संचालित होंगे। इन्हें साफ और ठण्डी अवस्था में रखा जायेगा।

3. राज्य सरकार इन आश्रय स्थल, विश्राम कक्ष और भोजन कक्ष की सजावट, स्थान, फर्नीचर और अन्य संबंधित सामग्री के स्तर निर्धारित कर सकती है।

शिशुग ह या शिशुसदन (धारा 48)
(Creches)

प्रत्येक ऐसे कारखाने में जहां साधारणतया 30 से अधिक स्त्री श्रमिक नियुक्त हैं, उनके छह वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के लिए एक उपयुक्त कक्ष अथवा कक्षों का प्रबन्ध किया जायेगा। इन्हें ही शिशुसदन कहते हैं। इनकी विशेषताएं:

1. **प्रकाशयुक्त तथा हवादार होना** - ये शिशुसदन पर्याप्त रूप से प्रकाशयुक्त एवं वायु संचालित होंगे।
2. **देख-रेख** - शिशुसदन की देख-रेख वे महिलाएं करेंगी जो बच्चों व शिशुओं के पालन-पोषण में प्रशिक्षित हों।
3. **राज्य-सरकार द्वारा नियम बनाना** - राज्य सरकार शिशु सदन सम्बन्धी नियम बना सकती है।

श्रम कल्याण अधिकारी (धारा 49)
(Welfare Officers)

1. प्रत्येक ऐसे कारखाने में जहां साधारणतया 500 या 500 से अधिक श्रमिक नियुक्त हों कारखाने का परिभोगी कारखाने में उतनी संख्या में श्रम-कल्याण अधिकारी नियुक्त करेगा जो निर्धारित की जाय।
2. राज्य सरकार इन अधिकारियों के कर्तव्य, योग्यताओं तथा सेवा की शर्तो को निर्धारित करेगी।

श्रम-कल्याण अधिकारी के प्रमुख कर्तव्य

1. कारखाने के प्रबन्धक व श्रमिकों के बीच सम्पर्क व परामर्श द्वारा अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना।
2. श्रमिकों के असन्तोष से नियोक्ता को अवगत कराना तथा उनका समाधान करना।
3. श्रमिकों के द ष्टिकोण का अध्ययन करना और तदनुसार श्रम नीति निर्धारित करने में सहायता करना। श्रमिकों को नियमों की जानकारी देना।
4. श्रम नीति से श्रमिकों को अवगत करना।
5. अपने प्रभाव का उपयोग करके औद्योगिक विवाद के निपटारे व रोकने में सहायता करना।
6. श्रमिकों व मालिकों को अवैध हड़ताल तथा अवैध तालाबन्दी नहीं करने की सलाह देना तथा सामाजिक बातों को रोकना।
7. निष्पक्ष रुख अपनाना।
8. काम की दशाओं में सुधार करने में मदद करना।
9. कारखाना अधिनियम के प्रावधानों का परिचालन करने पर प्रबन्धकों को परामशै देना।
11. श्रमिक को उनके कर्तव्य व अधिकर समझाना तथा अनुशासनबद्ध रहने, कारखानों को हानि न पहुंचाने आदि की सलाह देना।

कारखाना अधिनियम, 1948 के पूर्व श्रमिकों के काम के घंटों के संबंध में कोई नियमित और निश्चित नियम नहीं थे। कारखानों के स्वामी श्रमिकों से मनमाना काम लेते थे, विश्राम-मध्यान्तर की उचित व्यवस्था भी नहीं थी और छोटे-छोटे बच्चों तथा स्त्रियों को भी लम्बी अवधि तक काम करना पड़ता था। इस प्रकार श्रमिकों का पूरी तरह से शोषण होता था। कारखाना अधिनियम, 1948 के अंतर्गत धारा 51 से धारा 74 में इन दोषों को दूर कर दिया गया है।

विशेष दुर्घटनाओं की सूचना (धारा 88)
(Notice of Certain Accidents)

1. जब किसी भी कारखाने में कोई दुर्घटना हो जाती है जिससे श्रमिक की म त्यु हो जाय अथवा ऐसी कोई शारीरिक चोट लग जाय कि चोटग्रस्त व्यक्ति दुर्घटना के पश्चात् 48 घंटे या अधिक अवधि के लिए काम न कर सके तो ऐसी स्थिति में कारखाने का प्रबन्धक इस बात की सूचना निर्धारित अधिकारियों को निर्धारित समय में और निर्धारित प्रारूप में भेजेगा।
2. दुर्घटना से श्रमिक की म त्यु हो जाने की सूचना मिलने पर निर्धारित अधिकारी सूचना मिलने के 1 माह के भीतर ऐसी दुर्घटना की जांच करेगा। यदि निर्धारित अधिकारी निरीक्षक नहीं है तो जांच निरीक्षक के करायी जायेगी।

कुछ खतरनाक घटनाओं की सूचना (धारा 88ए)
(Notice of Certain Dangerous Occurrences)

जब कारखाने में ऐसी कोई विशेष घटना हो जाती है (जिससे शारीरिक चोट या अयोग्यता होने की आशंका हो या नहीं) तो उसकी सूचना कारखाने का प्रबन्धक निर्धारित अधिकारी को निर्धारित प्रारूप में निर्दिष्ट समय में देगा।

कारखाना अधिनियम, 1948 में जिन विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख किया गया है वे सभी सार्थक होंगे जब उनका पूरा-पूरा पालन किया जाय और उन्हें ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाय। यदि किसी प्रावधान को सही रूप में कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है तो उसकी रचना का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए धारा 92 से 99 तक में विभिनन दण्डों की चर्चा की गयी है और उनकी कार्य-विधि भी बतायी गयी है।

निष्कर्ष

1948 के कारखाना अधिनियम की व्यवस्थायें उस उद्देश्य के लिए पर्याप्त प्रतीत होती हैं, जिस उद्देश्य से अधिनियम बनाया गया है, किन्तु कारखाना निरीक्षकों की ढिलाई तथा उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार अधिनियम की उद्देश्य पूर्ति में मुख्य बाधा बना हुआ है। अधिनियम के क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिये तथा इसकी व्यवस्थायें कड़ाई से लागू की जानी चाहिये।

Unit V

अध्याय-19
कर्मचारी प्रोविडेंट फंड अधिनियम, 1952
(Employees' Provident Fund Act, 1952)

कम मजदूरी प्राप्त करने वाले अधिकांश श्रमिकों की अपने जीवन में बचत की क्षमता बहुत कम होती है। सेवा निव त्ति, सेवा समाप्ति, छंटनी या म त्यु की दशा में उनके पास या उनके आश्रितों के पास कुछ नहीं बचता है। इन जोखिमों का सामना करने के लिए प्रॉविडेंट फण्ड तथा परिवार पेंशन की योजनाएं बहुत राहत प्रदान कर सकती हैं।

व द्धावस्था में श्रमिक काम करने योग्य नहीं रहता है। प्रत्येक देश में श्रमिकों के स्वास्थ्य के स्तर को ध्यान में रखकर एक उम्र निर्धारित की जाती है जिस पर व्यक्ति को काम करने से मुक्त कर दिया जाता है। भारतवर्ष में व द्धावस्था के लिए सुरक्षा प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में राजकीय श्रम आयोग ने काफी बल दिया था। इस आयोग ने व द्धावस्था के लिए पेंशन या प्रॉविडेंट फण्ड की व्यवस्था की सिफारिश की थी। इस दिशा में सरकार तथा मालिक दोनों को अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए कहा था। श्रम जांच समिति ने भी ऐसी व्यवस्था पर जोर दिया। समिति का मत था कि श्रमिकों की प्रवासिता-प्रव ति तथा श्रम परिवर्तन को रोकने के लिए और श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा के लिए प्रॉविडेंट फण्ड आदि की योजना परम आवश्यक है। सन् 1950 में स्थायी श्रम समिति के 12वें अधिवेशन में श्रमिकों के लिए प्रॉविडेंट फण्ड योजना बनाने के बारे में विचार-विमर्श किया गया था तथा कुछ निष्कर्ष निकाले गये थे। इन्हीं निष्कर्षो के आधार पर प्रॉविडेण्ट फण्ड अधिनियम की रचना की गयी।

इतिहास
(History)

कर्मचारी प्रॉविडेंट फण्ड सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियमों में एक महत्वपूर्ण अधिनियम माना जाता है। कारखानों तथा विभिन्न संस्थानों में काम करने वाले कर्मचारियों के लाभ के लिए यह अधिनियम बनाया गया है। नवम्बर 1951 में भारत सरकार द्वारा जारी किया गया कर्मचारी प्रॉविडेंट फण्ड अध्यादेश (Employees' Provident Fund Ordinance) उन कारखानों पर लागू होता था जो तीन वर्ष से चालू थे और जिनमें 50 या अधिक व्यक्ति काम करते थे। सीमेंट, सिगरेट, बिजली या यांत्रिक, विविध अभियांत्रिक उत्पादन, लोहा और इस्पात, कागज तथा कपड़ा उद्योगों में कार्यरत कारखानों पर यह अध्यादेश लागू होने लगा। केन्द्रीय सरकार को कर्मचारी प्रॉविडेंट फण्ड योजना के निर्माण का अधिकार दिया गया था।

उक्त अध्यादेश का स्थान बाद में "कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड अधिनियम, 1952" ने ले लिया। केन्द्रीय सरकार ने इस अधिनियम के अंतर्गत सितम्बर 1952 में एक योजना बनायी और नवम्बर 1952 तक धीरे-धीरे उसे पूरी तरह लागू कर दिया। इस अधिनियम में सन् 1953, 1956, 1957, 1958 तथा 1960 में महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। सन् 1963 में अनेक संशोधन किये गये और अधिनियम का क्षेत्र भी व्यापक बना दिया गया। इसके पश्चात् सन् 1964, 1965 तथा 1971 में और इसके बाद कुछ महत्वपूर्ण संशोधन किये गये हैं जिनका समावेश यथास्थान इस अधिनियम में किया गया है। 1971 में संशोधन द्वारा कर्मचारियों के लिए "परिवार पेंशन योजना" (Family Pension Scheme) भी लागू कर दी है। पुनः 1973 में इस अधिनियम में कुछ नवीन संशोधन किये गये। इसके बाद 1976 में फिर कुछ महत्वपूर्ण संशोधन किये गये हैं। इस नवीन संशोधन के अंन्तर्गत इस अधिनियम का नाम 'कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड तथा परिवार पेंशन अधिनियम" के स्थान पर कर्मचारी प्रॉविडेंट फण्ड तथा विविध प्रावधान अधिनियम कर दिया गया है।

इस अधिनियम का क्षेत्र जम्मू तथा कश्मीर राज्य को छोड़कर समस्त भारत है तथा यह अधिनियम निम्न उद्योगों पर लागू होता है:

(i) **अनुसूची 1 में निर्दिष्ट उद्योग के संस्थान पर** - प्रत्येक वह संस्थान जो अनुसूची 1 में निर्दिष्ट किसी भी उद्योग में कार्यरत कारखाना है और जिसमें 20 या अधिक व्यक्ति नियुक्त हैं (अनुसूची 1 इस अधिनियम के अन्त में दी गयी है)।

(ii) **अन्य संस्थान पर** - कोई भी अन्य संस्थान अथवा संस्थानों का वर्ग जिसमें 20 या अधिक व्यक्ति काम करते हैं और जिसे केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट करे।

(iii) **अधिसूचना द्वारा किसी संस्थान पर** - अपने विचार की दो माह की सूचना देने के पश्चात् राजपत्र में अधिसूचना द्वारा केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रावधान किसी भी ऐसे संस्थान पर लागू कर सकती है जिसमें 20 से कम व्यक्ति काम करते हैं, जैसा कि अधिसूचना में निर्दिष्ट किया जायेगा।

केन्द्र सरकार ने एक अधिसूचना जारी कर 'कर्मचारी भविष्य निधि एवं विभिन्न सुविधा कानून, 1952' कुछ और श्रेणियों के ऐसे प्रतिष्ठानों पर भी लागू कर दिया है, जिनमें कि बीस या बीस से अधिक कर्मचारी कार्यरत होंगे। अब यह कानून विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, स्कूलों, विज्ञान संस्थानों, शोध-संस्थानों तथा अन्य शैक्षणिक संस्थानों पर भी लागू होगा।

संक्षेप में कर्मचारी प्रॉविडेंट फण्ड, 1952 के अंतर्गत कारखानों में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए प्रॉविडेण्ट फण्ड का निर्माण अनिवार्य कर दिया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों को उनके सेवा-निव त्त होने के पश्चात् अथवा उनकी म त्यु होने पर उनके आश्रितों को आर्थिक सहायता पहुंचाना है। कर्मचारी प्रॉविडेंट फंड योजना उन उद्योगों में कार्यरत कारखानों और संस्थानों पर लागू होती है जिनका उल्लेख अनुसूची 1 में किया गया है। यह अधिनियम सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्रें के उद्योगों पर लागू होता है। केन्द्रीय सरकार को यह अधिकर है कि वह कोई भी उद्योग अनुसूची 1 में सम्मिलित कर सकती है और उस पर प्रॉविडेंट फण्ड योजना लागू कर सकती है। इस योजना के लाभ की पात्रता उसी कर्मचारी को होगी जिसने किसी संस्थान या कारखाने में कम से कम निरनतर एक वर्ष की अवधि तक काम किया हो और जिनका वेतन 1,600 रुपये प्रतिमाह से अधिक नहीं हो।" योजना का लाभ प्राप्त करने के लिए कर्मचारी द्वारा अंशदान देना आवश्यक है, नियोक्ता भी कर्मचारी के अंशदान के बराबर अंशदान जमा करेगा। योजना का प्रशासन और प्रबंध केन्द्रीय बोर्ड तथा राजकीय बोर्ड द्वारा किया जाएगा।

प्रगति
(Progress)

पिछले 33 वर्षो में प्रॉविडेंट फण्ड योजना ने काफी प्रगति की है। इस योजना का ललाभ लगभग 1 करोड़ 30 लाख से अधिक श्रमिकों को मिल रहा है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने इस अधिनियम की कार्य-प्रगति पर काफी असन्तोष व्यक्त किया है। आयोग ने सुझाव दिया कि नियोक्ता के अंशदान की वसूली तथा प्रॉविडेंट फण्ड की रकम की वापसी में विलम्ब नहीं होना चाहिए।

क्षेत्र में व द्धि - केन्द्र सरकार ने एक अधिसूचना जारी कर कर्मचारी भविष्य निधि एवं विभिन्न सुविधा कानून 1952 के कुछ और श्रेणियों के ऐसे प्रतिष्ठानों पर भी लागू कर दिया है, जिनमें कि बीस या बीस से अधिक कर्मचारी कार्यरत होंगे। अब यह कानून विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, स्कूलों, विज्ञान संस्थानों, शोध संस्थानों तथा अन्य शैक्षणिक संस्थानों पर भी लागू होता। केन्द्र सरकार श्रम मंत्रालय द्वारा जारी यह अधिसूचना 19 फरवरी, 1982 को जारी की गयी थी तथा यह भारत सरकार के राजपत्र के 6 मार्च, 1982 के अंक में प्रकाशित हो गयी है। यह अधिनियम 1952 में छः प्रमुख उद्योगों पर लागू होता था। आज यह 173 उद्योगों पर लागू होना है। जिस कर्मचारी की मासिक मजदूरी 1,600 रुपये तक है उसे इस अधिनियम के प्रावधानों एवं विविध योजनाओं का लाभ मिल रहा है। कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड योजना, परिवार पेंशन योजना तथा सीमा सम्बद्ध निक्षेप योजना का प्रशासन ट्रस्टियों के केन्द्रीय बोर्ड द्वारा किया जाता है। इस बोर्ड में एक सभापति केन्द्रीय सरकार के पांच, राज्य सरकार के पन्द्रह, कर्मचारी तथा नियोक्ताओं के संगठनों के छः छः प्रतिनिधि होते हैं। सितम्बर 1984 तक इस अधिनियम की परिधि में आने वाले संस्थानों की संख्या 1,51,936 तक पहुंच गयी थी।

प्रॉविडेण्ट फण्ड योजना (धारा 5)
(Provident Fund Planning)

1. **योजना बनाना तथा फण्ड की स्थापना** - इस अधिनियम के अंतर्गत कर्मचारियों अथवा कर्मचारियों के किसी वर्ग कि लिए प्रॉविडेण्ट फण्ड की स्थापना हेतु केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा प्रॉविडेण्ट फण्ड की योजना बना सकती है तथा किसी संस्थान के वर्ग पर लागू कर सकती है। योजना के बनने के उपरान्त शीघ्र ही एक फण्ड की स्थापना की जायेगी।
   (a) **फण्ड का प्रशासन** - उक्त फण्ड धारा 5(a) के अंतर्गत गठित केन्द्रीय बोर्ड (central board) में निहित होगा तथा उसके द्वारा उसके द्वारा प्रशासित होगा।
   (b) **योजना में सामविष्ट बातें** - उपर्युक्त योजना के अंतर्गत बनायी गयी योजना में, इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, अनुसूची 2 में निर्दिष्ट समस्त या किसी भी बात का समावेश होगा।
2. **प्रभावशीलता की तिथि** - उपर्युक्त योजना के अंतर्गत ऐसा प्रावधान भी हो सकता है कि योजना की कोई भी बात उसमें निर्दिष्ट किसी भी पिछली तिथि से अथवा भावी तिथि से (Retrospectively or prospectively) प्रभावशाली होगी।

अनुसूची 2 में उन सब बातों का उल्लेख किया गया है जिनका समावेश कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड योजना में हो सकता है।

Schedule II

[See Section 5(I-B)]

प्राविडेण्ट फण्ड योजना की प्रमुख बातें

कर्मचारी बीमा योजना में निम्न बातों की व्याख्या की जा सकती है।

1. वे कर्मचारी अथवा कर्मचारियों का वह वर्ग जो फण्ड में सम्मिलित होंगे तथा वे दशाएं जिनके अंतर्गत कर्मचारी उक्त फण्ड में सम्मिलित होने से मुक्त किये जा सकते हैं अथवा अंशदान देने से मुक्त किये जा सकते हैं।
2. फण्ड में नियोक्ताओं द्वारा कर्मचारियों द्वारा अथवा उनकी ओर से दिये जाने वाले अंशदान की अवधि और रीति (चाहे कर्मचारी नियोक्ता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त किये गये हों अथवा किसी ठेकेदार द्वारा या ठेकेदार के माध्यम से)। धारा 6 के अंतर्गत यदि कोई कर्मचारी अंशदान देना चाहता है तो ऐसे अंशदान वसूल करने की रीति।
   (a) वह रीति जिसके द्वारा ठेकेदार अपने द्वारा नियुक्त अथवा अपने माध्यम से नियुक्त कर्मचारियों के अंशदान वसूल कर सकेगा।
3. फण्ड के प्रशासन के लिए आवश्यक व्यय का भुगतान नियोक्ता करेगा।
4. ट्रस्टियों के बोर्ड को सहायता देने के लिए किसी समिति का गठन।
5. ट्रस्टियों के बोर्ड के क्षेत्रीय और अन्य कार्यालय खोलना।
6. फण्ड की राशि किस प्रकार विनियोग की जायेगी, उसके हिसाब किताब किस रीति से रखे जायेंगे, बजट किस प्रकार तैयार किये जायेंगे, हिसाब-किताब का अंकेक्षण किस प्रकार किया जायेगा तथा केन्द्रीय सरकार या किसी निर्दिष्ट राज्य सरकार को रिपोर्ट आदि किस प्रकार भेजी जायेगी।
7. वे दशाएं जिनमें फण्ड में से राशि निकाली जा सकेगी तथा जिनमें कोई कटौती अथवा जब्ती (Forfeiture) की जा सकेगी और ऐसी कटौती अथवा जब्ती की अधिकतम राशि।
8. सदस्यों को दिये जाने वाले ब्याज की दर निर्धारित करने के सम्बन्ध में। केन्द्रीय सरकार सम्बन्धित ट्रस्टियों के बोर्ड से परामर्श लेकर यह दर निर्धारित करेगी।
9. आवश्यकता पड़ने पर कर्मचारी के स्वयं और उसके परिवार के संबंध में उसके द्वारा भेजे जाने वाले विवरण का प्रारूप।
10. किसी सदस्य की म त्यु होने पर उसके नाम में जमा रकम जिस व्यक्ति को प्राप्त होगी उसको नामांकित करने के संबंध में तथा नामांकन के निरस्तीकरण अथवा उसमें किसी परिवर्तन के सम्बन्ध में।

11. कर्मचारियों के सम्बन्ध में नियोक्ताओं द्वारा ठेकेदारों द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर अथवा रिकार्ड और उनके द्वारा भेजे जाने वाले रिटर्न के सम्बन्ध में।
12. कर्मचारी की पहचान के उद्देश्य से रखे जाने वाले किसी परिचय-पत्र, चिन्ह अथवा किसी अन्य पदार्थ के प्रारूप अथवा स्वरूप के सम्बन्ध में और उसके निर्गमन, अधिकार तथा बदलने के सम्बन्ध में
13. इस अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी उद्देश्य के लिए लगाये जाने वाले शुल्क।
14. धारा 14 की उपधारा (2) के अंतर्गत उल्लंघनों अथवा त्रुटियों के लिए दी जाने वाली सजा।
15. निरीक्षकों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले अतिरिक्त अधिकार।
16. किसी विद्यमान प्रॉविडेण्ट फण्ड की संग्रह राशि धारा 15 के अंतर्गत किसी प्रकार हस्तान्तरित की जायेगी तथा नियोक्ताओं द्वारा हस्तान्तरित की जाने वाली किसी सम्पत्ति का मूल्यांकन किस प्रकार किया जायेगा?
17. वे दशाएं जिनके अन्तर्गत कोई सदस्य फण्ड में से जीवन बीमा का प्रीमियम दे सकता है।
18. अन्य कोई बात जिसकी व्यवस्था योजना में की जानी हो अथवा जो योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक या उचित हो।

ऐसे मुक्त संस्थान का नियोक्ता जिस पर परिवार पेंशन योजना लागू होती है, परिवार पेंशन फंड में नियोक्ता तथा कर्मचारी के प्राविडेण्ट फण्ड में देय अंश दान का वह भाग देगा जो इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट हो।

कर्मचारी परिवार पेंशन योजना (धारा 6ए)
(Employee's Family Pension Scheme)

1. **केन्द्रीय सरकार द्वारा योजना बनाना** - जिन संस्थानों पर यह अधिनियम लागू होता है वहां काम करने वाले कर्मचारियों के जीवन के लाभ के लिए, राजपत्र में अधिसूचना जारी करके, केन्द्रीय सरकार "परिवार पेंशन योजना" बना सकती है।
2. **परिवार पेंशन फण्ड** - ऐसी योजना बनाने के तुरन्त बाद एक परिवार पेंशन फण्ड की स्थापना की जायेगी। इस फण्ड में:
   (a) प्रत्येक कर्मचारी के द्वारा तथा नियोक्ता द्वारा प्रौविडेण्ट फण्ड में दिये जाने वाले अंशदान का अधिक से अधिक 1/4 भाग समय-समय पर देना होगा।
   (b) धारा 17 की उपधारा (6) के अंतर्गत मुक्त संस्थान के 'नियोक्ता द्वारा चुकायी जाने वाली रकम' भी देनी होगी, तथा
   (c) ऐसी रकम जो केन्द्रीय सरकार (कानून द्वारा संसद की स्वीकृति से) निर्दिष्ट करें।
3. **प्रशासन** - परिवार पेंशन योजना केन्द्रीय बोर्ड में निहित होगी तथा उसके द्वारा प्रशासित होगी।
4. **योजना में समाविष्ट बातें** - इस योजना में उन समस्त बातों या किसी भी ऐसी बात की व्यवस्था की जा सकती है जो अनुसूची त तीय में निर्दिष्ट की गयी है।
5. **प्रभावशीलता की तिथि** - योजना की कोई भी बात किसी भी ऐसी पिछली तिथि या भावी तिथि से लागू होगी जो इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट की जाय।

अनुसूची III (Schedule III) की प्रमुख बातें

कर्मचारी परिवार पेंशन योजना में निम्नलिखित बातों की व्यवस्था की जा सकती है:

1. किन कर्मचारी या कर्मचारियों के वर्ग पर यह योजना लागू होगी तथा जिन पर यह लागू नहीं होती है कि किसी समयावधि के भीतर इसमें शामिल होने का विकल्प दे सकते हैं।
2. नियोक्ता व कर्मचारी के अंशदान इस योजना में कितने व किस प्रकार जमा किये जायेंगे।
3. इस योजना में केन्द्रीय सरकार द्वारा कितना व किस प्रकार अंशदान दिया जायेगा।

4. इस योजना के फण्ड के हिसाब-किताब किस प्रकार रखे जायेंगे तथा फण्ड में एकत्रित राशि किस प्रकार विनियोग की जायेगी। यह विनियोग केन्द्रीय सरकार के पास 5½ प्रतिशत वार्षिक दर से कम ब्याज पर नहीं किया जायेगा।
5. कर्मचारी द्वारा अपने स्वयं तथा अपने परिवार के सम्बन्ध में दिये जाने वाले विवरण किस प्रारूप में प्रस्तुत किये जायेंगे।
6. कर्मचारी की म त्यु के बाद जिस व्यक्ति को इस योजना के अंतर्गत दिया जाने वाला लाभ मिलेगा उसके नामांकन करने नामांकन का सत्यापन करने व उसके निरस्तीकरण करने सम्बन्धी बातें।
7. कर्मचारियों से सम्बन्धित रजिस्टर, रिकार्ड आदि रखने, पहचान के लिए रखे जाने वाले कार्ड, चिह्न या पहचान-पत्र के प्रारूप और परिवार-पेंशन का लाभ प्राप्त करने के अधिकारी व्यक्ति की पहचान सम्बन्धी जांच-पड़ताल करने की बातें।
8. परिवर पेंशन की श्रेणी तथा लाभ की मात्रा।
9. मुक्त संस्थान किस प्रकार इस योजना के लिए 'अंशदान' (नियोक्ता का तथा कर्मचारी दोनों का) देंगे।
10. परिवार - पेंशन के बंटवारे की रीति तथा बंटवारा करने वाली एजेंसी के साथ किये गये ठहराव या प्रबन्ध सम्बन्धी बातें।
11. योजना के प्रशासन पर होने वाले व्यय का भुगतान केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय बोर्ड को किस प्रकार करेगी।
12. योजना को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से अन्य कोई आवश्यक बातें।

परिवार पेंशन योजना का आशय

यह एक ऐसी योजना है जो किसी कर्मचारी की सेवा निव त्ति के पूर्व कभी भी म त्यु हो जाने पर अर्थात् असामयिक म त्यु हो जाने पर म तक के परिवार के सदस्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है। इसके लिए एक कोष निर्मित किया जाता है जिसमें कर्मचारी तथा नियोक्ता दोनों अंशदान जमा करेंगे। यह अंशदान प्रॉविडेण्ट फण्ड में दिये जाने वाले अंशदान का अधिक से अधिक 1/4 हो सकता है।

योजना के लाभ

1. **असामयिक म त्यु की दशा में माहवारी पेंशन** - यदि कर्मचारी की म त्यु सेवाकाल पूर्ण होने के पहले हो जाती है तो म तक के परिवार के सदस्य को 40 रुपये से लगातार 150 रुपये तक माहवारी पेंशन दी जाती है। इस पेंशन की रकम की गणना म तक कर्मचारी के वेतन तथा उसके सदस्य बनने की आयु को ध्यान में रखकर की जाती है।
2. **जीवन बीमा राशि का भुगतान** - यदि कर्मचारी पेंशन फण्ड का सदस्य 25 वर्ष की आयु में या इसके पूर्व बनता है और उसकी म त्यु नौकरी में रहते हुए हो जाती है तो उसके परिवार को 1,000 रुपये की इकट्ठी रकम का भुगतान किया जायेगा। सदस्यता यदि 25 वर्ष की आयु के बाद प्राप्त की जाती है तो उसके परिवार को यह राशि योजना में निर्धारित रीति से दी जायेगी।
3. **सेवा निव त्ति के लाभ** - जब सदस्य 60 वर्ष का हो जाये और सदस्यता 25 वर्ष की आयु में या पहले प्राप्त कर लेता है और 2 वर्ष तक अंशदान देता रहा हो उसे 4,000 रुपये की इकट्ठी रकम मिलेगी। 25 वर्ष की आयु के बाद सदस्य बनने वाले कर्मचारी को योजना में निर्धारित रीति से भुगतान प्राप्त होगा। यदि राशि प्राप्त करने के पूर्व ही वह मर जाता है तो भुगतान उसके वैधानिक उत्तराधिकारी को मिलेगा।
4. **नौकरी छोड़ने का भुगतान** - सेवा निव त्ति के पूर्व ही कोई कर्मचारी नौकरी छोड़ देता है तो 25 वर्ष की आयु या पूर्व में सदस्यता प्राप्त करने पर तथा 2 वर्ष तक अंशदान देने पर उसे फण्ड में जमा राशि निर्धारित ब्याज सहित दे दी जायेगी।

कर्मचारी पेंशन स्कीम (नयी स्कीम) 1995

1. 20/10 वर्ष जैसी स्थिति में 58 वर्ष की आयु होने पर सदस्य सेवानिव त्ति/परिपक्व/अल्पसेवा पेंशन ले सकता है। आयु 50 वर्ष पूरा करने के बाद घटी दर से पेंशन ले सकता है।
2. मासिक विधवा पेंशन एक माह की गणना योग्य सेवा पूरी करने पर देय है।
3. मासिक परिवार पेंशन एक समय एक साथ तीन व्यक्तियों को देय है जैसे विधवा/विदुर एवं दो बच्चे।

4. एक माह की गणना योग्य सेवा के बाद स्थाई एवं पूर्ण रूप से विकलांग होने पर पेंशन के हकदार हैं।
5. नौकरी छोड़ने पर भी सदस्य की म त्यु हो जाने पर भी विधवा/विदुर एवं दो बच्चे पेंशन के हकदार हैं।
6. 5000 रूपये वेतन पर मासिक परिवार पेंशन 1750 रूपये और साथ में दो बच्चों को कुल 875 रूपये प्रति माह पेंशन।
7. यदि सदस्य का अपना परिवार नहीं है तो वह किसी व्यक्ति को भी नामित कर सकता है।
8. यदि पेंशनभोगी ने कम दर से पेंशन लेने का विकल्प दिया हो तो 100 माह तक की पेंशन के बराबर पूंजी की वापिसी होगी। नौकरी में न रहने पर भी अंशदान प्रमाण-पत्र धारक की म त्यु पर विधवा/विधुर/बच्चों को पेंशन मिलेगी।
9. दो अनाथों को (एक साथ) विधवा पेंशन के 75 प्रतिशत के बराबर जो कि कम से कम 170/- रूपये प्रतिमाह प्रति अनाथ को मिलेगी।

कम्युटेशन

16.11.1998 के बाद सभी पेंशन भोगियों के लिए मूल पेंशन के एक तिहाई के 100 गुणा पेंशन मूल्य के कम्यूटेशन का प्रावधान है।

सदस्य जिसका अपना परिवार नहीं

यदि सदस्य का अपना परिवार नहीं है तो वह किसी भी व्यक्ति को विधवा पेंशन की राशि के बराबर पेंशन लेने के लिए नामांकित कर सकता है।

नियोजकों के लिए

1. कोई अतिरिक्त अंशदान नहीं।
2. नवम्बर 1995 के लिए दो बराबर अवधि में अलग-अलग मासिक रिटर्न प्रस्तुत करना।
3. फार्म 3-ए, 6-ए, 5, 9, 10 एवं 12-ए एवं अन्य में रिटर्न संशोधित एवं आसान फार्मो पर भेजना।
4. 15.5.1996 तक विकल्प प्रस्तुत करने वाले सदस्यों का विवरण भेजा जाना चाहिए।
5. ठेकेदार तथा ठेकेदार के कर्मचारियों का विवरण भेजा जाना चाहिए।
6. कर्मचारी पेंशन स्कीम में प्रवेश करने वाले सदस्यों का विवरण तुरन्त भेजा जाना चाहिए।
7. सदस्यों के खातों के नम्बर यथावत रहेंगे।
8. सभी सदस्यों के नामांकन का विवरण फार्म नम्बर 2 में भेजा जाना चाहिए।

पेंशन फार्मूला

1/70 X पेंशन योग्य वेतन X पेंशन योग्य सेवा। पेंशन योग्य सेवा का अर्थ है वह सेवा जिसके लिए कर्मचारी पेंशन स्कीम का अंशदान जमा किया गया है या देय है (15.11.1995 के बाद के लिए)। पेंशन योग्य वेतन का अर्थ है पिछले 12 महीनों का औसत वेतन जिस पर कर्मचारी पेंशन स्कीम निधि पर अंशदान प्राप्त हुआ है या प्राप्त होना था।

नोटः

यदि पेंशन योग्य सेवा 20 वर्ष या अधिक हो तो 2 वर्ष बोनस सेवा का लाभ पेंशन योग्य सेवा में जमा किया जाएगा।

उपरोक्त पेंशन फार्मूला में पिछली सेवा यानि कर्मचारी परिवार पेंशन स्कीम 1971 का लाभ भी जमा किया जाएगा।

अभी अगस्त 2003 में केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने फैसला किया है कि 1.1.2004 से भर्ती होने वाले केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को नई पेंशन स्कीम अपनानी होगी जिसे CPS - कर्मचारी अंशदान पैंशन स्कीम के नाम से जाना जाएगा।

अध्याय-20
कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
(Employee's State Insurance Act, 1948)

आवश्यकता एवं उद्देश्य
(Need and Object)

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि 'सामाजिक सुरक्षा' हमारे कल्याणकारी राज्य निर्माण का आधार-स्तम्भ है। सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से ही सरकार प्रत्येक नागरिक को एक निश्चित जीवन-स्तर की सुविधाएं प्रदान करने तथा बनाये रखने का प्रयास करती है। सामाजिक सुरक्षा का अभिप्राय उस सुरक्षा से है जो समाज अपने सदस्यों को विशिष्ट जोखिमों के विरुद्ध प्रदान करता है। ये जोखिमें किसी भी प्रकार की आकस्मिकता (Contingency) के रूप में हो सकती हैं। एक व्यक्ति अपने सीमित साधनों की सहायता से इन आकस्मिकताओं से भली-भांति रक्षा नहीं कर सकता है। समाज ही किसी उपयुक्त संगठन के माध्यम से इन आकस्मिकताओं से लागों की रक्षा कर सकता है। 1944 के अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे इस बात पर जोर दिया गया कि सामाजिक सुरक्षा की परियोजनाओं द्वारा चिकित्सा सम्बन्धी समस्त सुविधाओं, आय की सुरक्षा, कर्मचारी के आश्रित व्यक्तियों को विशेष लाभ तथा समस्त जोखिमों व आकस्मिकताओं से कर्मचारियों की रक्षा की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। यह कार्य विधान द्वारा ही नहीं किया जाना चाहिए। सामाजिक सुरक्षा के फलस्वरूप कर्मचारी निश्चिंत हो जाते हैं कि किसी आकस्मिकता से होने वाली आय की हानि तथा अंग हानि की दशा में वे क्या करेंगे। सामाजिक सुरक्षा से कर्मचारियों में विश्वास जाग्रत होता है और वे अपना काम मन लगाकर करते हैं।

'सामाजिक सुरक्षा' को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है - (1) सामाजिक बीमा (social insurance), (2) सामाजिक सहायता (Social Assistance)।

1. **सामाजिक बीमा (Social Insurance)** - विलियम बेवरिज ने 'सामाजिक बीमा' की परिभाषा देते हुए कहा है कि यह एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा समाज के सदस्यों को अंशदान के बदले ऐसे लाभ प्रदान किये जाते हैं जो जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक हैं। समाज के सदस्य मिलकर साधन एकत्रित करते हैं तथा जोखिम का सामना करने के लिए उनका उपयोग करते हैं। इस प्रकार यह पद्धति अनिवार्य तथा अंशदायी दोनों हैं। सदस्य पहले अंशदान देते हैं और फिर लाभ प्राप्त करते हैं। ये लाभ निर्धारित जोखिमों व आकस्मिकताओं के संबंध में प्रदान किये जाते हैं (जैसे, बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, अशिक्षा, व द्धावस्था आदि)। लाभ प्रदान करते समय लाभ प्राप्त करने वाले सदस्य के साधनों को बिल्कुल ध्यान में नहीं रखा जाता है, अर्थात् प्रत्येक सदस्य को चाहे उनके साधन सीमित हों या असीमित, इस प्रकार के लाभ प्राप्त करने का अधिकार होता है।
2. **सामाजिक सहायता (Social Assistance)** - सामाजिक सहायता वह पद्धति है जिसके अंतर्गत लाभ केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्रदान किये जाते हैं जिन्हें इन लाभों की आवश्यकता हो और जो निर्धारित शर्तें पूरी करते हों। ये लाभ सम्बन्धित व्यक्ति के साधनों को ध्यान में रखकर सरकार अपने कोष में से प्रदान करती है, अर्थात् सार्वजनिक आय में से इन लाभों का भुगतान किया जाता है। इसके लिए कोई अंशदान नहीं देना पड़ता है।

'सामाजिक बीमा' तथा 'सामाजिक सहायता' दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वे व्यक्ति जो 'सामाजिक बीमा' लाभों के लिए योग्य नहीं माने जाते अथवा जिनकी आवश्यकता सामाजिक बीमा लक्ष्यों से पूरी नहीं हो सकती, उन्हें सामाजिक सहायता लाभ प्रदान किये जाते हैं।

कुछ देशों में सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं समस्त जनसंख्या पर लागू कर दी गयी हैं किन्तु भारत में ये योजनाएं केवल औद्योगिक जनसंख्या, बागान तथा खदान श्रमिक तथा कुछ सार्वजनिक सेवाओं में कार्यरत श्रमिकों व कर्मचारियों के लिए ही लागू की गयी हैं।

अधिनियम का संक्षिप्त इतिहास
(Brief History of Act)

सर्वप्रथम 1927 में भारत सरकार का ध्यान बीमारी बीमा की ओर आकर्षित हुआ जबकि अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने अपने 10वें अधिवेशन में अनिवार्य बीमारी लाभ पर विशेष जोर दिया। इस सम्मेलन ने यह विचार व्यक्त किया कि श्रमिकों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में यह योजना बहुत सहायक होगी। तत्कालीन भारतीय विधान मण्डल ने भी 1928 में योजना पर विचार विमर्श किया तथा यह निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए उक्त योजना को कार्यान्वित करना व्यावहारिक नहीं था। प्रान्तीय सरकारों ने भी इस योजना का समर्थन नहीं किया। इस प्रकार यह योजना कुछ वर्षो तक स्थगित रही। राजकीय श्रम आयोग ने बीमारी लाभ प्रदान करने की व्यवस्था पर बहुत जोर दिया तथा यह सिफारिश की कि इसके लिए कुछ चुने हुए क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जाए और प्रारम्भ में यह योजना छोटे पैमाने पर लागू की जाय।

इसके पश्चात् भारत सरकार के श्रम व उद्योग विभाग ने 'बीमारी बीमा' सम्बन्धी एक योजना तैयार की; किन्तु यह योजना भी लागू नहीं की जा सकी। 1937 में यह निश्चय किया गया कि परीक्षण के आधार पर व्यक्तिगत संस्थानों में ऐसी योजनाएं लागू की जायें किन्तु इस ओर प्रान्तीय सरकारों ने कोई उत्सुकता का परिचय नहीं दिया।

जनवरी 1940 में श्रम मंत्रियों का प्रथम सम्मेलन हुआ जिसमें बीमारी बीमा योजना पर विचार-विमर्श किया गया। यह सिफारिश की गयी कि केन्द्रीय सरकार पहले तो यह निश्चय करे कि नियोक्ता तथा श्रमिक 'स्वास्थ्य बीमा कोष' में कितना अंशदान देने के लिए तैयार हैं और फिर उस योजना की दिशा में अन्य कदम उठाये जाएं। इसी बीच कानपुर श्रम जांच समिति, बम्बई टेक्सटाइल श्रम जांच समिति और बिहार श्रम जांच समिति ने इस प्रश्न पर विचार किया और इस बात पर जोर दिया कि उक्त योजना शीघ्रातिशीघ्र लागू की जाय। इन सन्धियों की रिपोर्टो के आधार पर जनवरी 1941 में पुनः श्रम मंत्रियों का सम्मेलन हुआ। इस समय नियोक्ताओं तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने ऐसी योजना के लिए अंशदान देने स्वीकार कर लिये तथा प्रान्तीय सरकार ने भी ऐसी योजना की आवश्यकता का अनुभव किया। यह निश्चय किया गया कि परीक्षण के बतौर यह योजना कुछ सुनिश्चित उद्योगों पर लागू की जाए।

जनवरी 1943 में कुछ श्रम मंत्रियों के त तीय सम्मेलन में इस बात पर विचार किया गया। यह निश्चय किया गया कि सरकार को इस योजना में अंशदान देने के लिए नहीं कहा जाए। एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति करने का भी निश्चय किया गया। तदनुसार 1943 में प्रो. अदारकर को स्वास्थ्य बीमा योजना तैयार करने के लिए नियुक्त किया गया। प्रो. अदारकर ने 11 अगस्त, 1944 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने लिखा कि औद्योगिक श्रमिकों के लिए सामाजिक बीमा सम्बन्धी योजना मर्यादित, अनिवार्य, अंशदायी, वित्तीय, सुद ढ़ एवं प्रशासनिक द ष्टि से सरल हो तथा ऐसी हो जिसमें विवाद व मुकदमें कम से कम हों। उन्होंने यह सुझाव भी दिया कि आरम्भ में टेक्सटाइल, इंजीनियरिंग और धातु उद्योगों में काम करने वाले समस्त स्थायी, अस्थायी व आकस्मिक श्रमिकों पर यह योजना लागू कर दी जाय। सरकारी उपक्रमों में काम करने वाले समस्त व्यक्तियों पर भी यह लागू कर दी जाय। नियोक्ता तथा श्रमिकों द्वारा अंशदान देने की प्रो. अदारकर ने सिफारिश की।

भारत सरकार के निमंत्रण पर आये अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) के दो विशेषज्ञों ने प्रो. अदारकर की उपर्युक्त सिफारिशों का अध्ययन किया। वे योजना के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों से सहमत हो गये और उन्होंने इसमें कुछ संशोधन की सलाह दी। इन विशेषज्ञों ने दो मुख्य सिफारिशों की। प्रथम, योजना में रोजगार सम्बन्धी चोट के लिए लाभ प्रदान किया जाय तथा द्वितीय, रोजगार सम्बन्धी चोट के फलस्वरूप होने वाली स्थायी आयोग्यता या म त्यु की दशा में आश्रित लाभ भी दिया जाय। आश्रित लाभ भी दिया जाय। आश्रित लाभ इस प्रकार दिया जाय कि म तक की विधवा को कुल लाभ का 2/5 भाग मिले तथा शेष रकम म तक के बच्चों को मिले।

प्रो. अदारकर तथा इन विशेषज्ञों की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 का निर्माण किया। इस अधिनियम में 1948 के पश्चात् समय-समय पर अनेक संशोधन किये गये हैं। सन् 1966 से इस अधिनियम में कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। सन् 1975 में इस अधिनियम में फिर कई संशोधन किये गये हैं। पुनः सन् 1985 में इस अधिनियम में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। 27 जनवरी, 1985 से यह अधिनियम उन सब कर्मचारियों पर लागू कर दिया गया है जिनकी मासिक मजदूरी 1,600 रूपये तक है। पहले यह सीमा 1,000 रूपये मासिक थी। अब यह अधिनियम जम्मू कश्मीर राज्य सहित सारे भारत में लागू होता है। संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत अब श्रमिकों व कर्मचारियों को मिलने वाले लाभों की दरों में व द्धि कर दी गयी है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना का उद्देश्य - जीवन में व्यक्ति सदैव दुर्घटनाओं अथवा आकस्मिक कष्टों की आशंकाओं से ग्रसित रहता है। बीमारी, अयोग्यता, म त्यु बेकारी, आदि ऐसे भय हैं जिनसे मनुष्य सदैव चिन्तित रहता है। साधन - सम्पन्न व्यक्ति अपने व्यक्तिगत साधनों से जीवन के इन सम्भावित खतरों से अपने बचाव की व्यवस्था कर सकते हैं। किन्तु साधारण स्थिति के व्यक्ति और विशेषकर भारत जैसे देश के श्रमिकों की आय इतनी सीमित होती है कि वे उसमें से बचाकर आड़े दिनों के लिए कुछ भी नहीं रख पाते। अतः उत्पादन-कुशलता की द ष्टि से यह अत्यंत आवश्यक है कि समाज कोई ऐसी व्यवस्था करे जिससे कि नागरिकों के जीवन के सम्भावित खतरों से सुरक्षा प्रदान की जा सके। ऐसी कोई व्यवस्था होने पर ही श्रमिक तन-मन से उत्पादन कार्य में संलग्न हो सकेगा।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना का प्रमुख उद्देश्य सीमित कर्मचारियों तथा उनके परिवारों को विभिन्न प्रकार के लाभ तथा सुविधाएं प्रदान करना है। इन लाभों व सुविधाओं की वित्त-व्यवस्था नियोक्ता तथा कर्मचारी के अंशदान एवं सरकार द्वारा दिये जाने वाले अंशदान से होती है। मात त्व, बीमारी, शारीरिक क्षति, चिकित्सा, अन्त्येष्टि क्रिया आदि की दशा में नकद लाभों का भुगतान किया जाता है। इसी प्रकार रोजगार के दौरान म त्यु होने पर सीमिति कर्मचारी के आश्रित को नकद राशि का भुगतान पेंशन आदि के रूप में किया जाता है। इस प्रकार यह अधिनियम श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा के लिए प्रबन्ध करता है।

मुख्य प्रावधान
(Main Provisions)

इसमें संशय नहीं है कि कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 औद्योगिक विधान में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। सन् 1948 में केन्द्रीय सरकार द्वारा इसे स्वीकृत किया गया था। औद्योगिक द ष्टि से अविकसित भारत जैसे देशों के लिए इस प्रकार की योजनाओं की आवश्यकता है जिनके द्वारा श्रमिकों की कठिनाइयों को दूर किया जा सके। भारत के श्रमिकों में प्रवासी प्रव ति तथा श्रम परिवर्तन बहुत अधिक है जिसके कारण इसकी महत्ता और अधिक बढ़ जाती है। बीमा अध्िनियम में श्रमिकों को बहुत सी सुविधायें प्रदान की हैं।

यह अधिनियम भारत में बीमा के सिद्धान्त पर आधारित सामाजिक सुरक्षा का प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। जम्मू तथा कश्मीर को छोड़कर वह पूरे देश में लागू हैं। प्रारम्भ में यह केवल उन्हीं उद्योगों में लागू होता था जिनमें कम से कम 20 कर्मचारी काम करते हों और शक्ति का प्रयोग होता हो। इसके अंतर्गत 500 रूपये प्रतिमास से अधिक मजदूरी पाने वाले नहीं आते थे परन्तु अब इसके क्षेत्र में 1,000 रुपये तक प्रति माह वाले कर्मचारी आते हैं और इस कानून को उन उद्योगों पर भी लागू कर दिया गया है जिनमें 10 से 19 तक कर्मचारी काम करते हैं और शक्ति का प्रयोग होता है अथवा बिना शक्ति के प्रयोग के 20 कर्मचारी काम करते हों। इसके अतिरिक्त होटल, दुकान, जलपान ग ह, सिनेमा घर, अखबार के प्रैस तथा मोटर यातायात में यदि 20 या अधिक कर्मचारी काम करते हों, तब भी यह कानून लागू होता है। इसके अतिरिक्त क्लर्क, दफ्तरों के कर्मचारी, ठेके के मजदूर जो 1,000 रूपये प्रतिमाह से कम मजदूरी पाते हैं इसका लाभ उठाते हैं। यदि उन उद्योगों में यह योजना लागू होती है। सुरक्षा सैनिक इसकी परिधि से बाहर हैं। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 में सन् 1966, 1975 तथा 1984 में संशोधन किये गये। इस प्रकार अधिनियम की सीमा 1000 रूपये प्रतिमास मजदूरी प्राप्त करने वाले कर्मचारी से बढ़ाकर 1600 रूपये प्रतिमास कर दी गई तथा दैनिक प्रमापी लाभ दरों में परिवर्तन किया गया। इस सीमा को 3000 तक बढ़ाने का प्रस्ताव है।

अधिनियम का प्रशासन एक स्वतन्त्र संगठन को सौंपा गया है जिसे कर्मचारी राज्य बीमा निगम (Employees State Insurance Corporation) कहते हैं। इसमें कुल 40 सदस्य हैं, जो इस प्रकार हैं -

क) केन्द्रीय सरकार का श्रम-मंत्री पदेन (Ex-Officio) अध्यक्ष होगा।

ख) केन्द्रीय सरकार का स्वास्थ्य मंत्री पदेन उपाध्यक्ष होगा।

ग) केन्द्रीय सरकार अधिक से अधिक 5 सदस्य मनोनीत करेगी जिनमें से 3 केन्द्रीय सरकार के पदाधिकारी होंगे।

घ) संघीय क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक सदस्य। यह केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीति होगा।

च) जहां यह नियम लागू होता है उस राज्य का एक प्रतिनिधि जो राज्य सरकार द्वारा मनोनीत होगा।

छ) उद्योगपतियों का प्रतिनिधित्व करने वाले 5 सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत होंगे।

ज) कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले 5 सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होंगे।

झ) डॉक्टरी व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करने वाले 2 व्यक्ति केन्द्रीय सरकार करेगी।

ञ) संसद द्वारा चुने गये व्यक्ति।

मनोनीत एवं चुने गये सदस्यों का कार्यकाल 4 वर्ष रखा गया है।

निगम का कार्य चलाने के लिए एक स्थायी समिति होती है। इसके सदस्य निगम के कर्मचारियों में से चुके जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक चिकित्सा लाभ परिषद् होती है जिसमें उद्योगपतियों, मजदूरों के अंशदान, चन्दे, सरकारी अनुदान इत्यादि जमा होते हैं। राज्य सरकार इलाज आदि के व्यय के लिए 1/4 व्यय वहन करती है।

सहायता बीमा सिद्धान्त के अनुसार दी जाती है। जिन उद्योगों में इसे लागू किया जाता है उनमें मजदूरों का बीमा किया जाता है और उनकी मजदूरी में से अंशदान किये जाते हैं। प्रीमियन का एक भाग उद्योगपतियों द्वारा किया जाता है।

अंशदान निम्नलिखित तालिका के अनुसार होते हैं

साप्ताहिक अंशदान

क्रम	वेतन क्रम में कर्मचारी (दैनिक मजदूर) वेतन क्रम	कर्मचारी का अंशदान रु. पैसे	उद्योगपतियों का अंशदान रु. पैसे	योग रु. पैसे
1.	1 रु. से कम	शून्य	0-45	0-45
2.	1 से 1.50	शून्य	0-45	0-45
3.	1.50 से 2.0	0-25	0-50	0-75
4.	2.0 से 3.0	0-40	0-80	1-20
5.	3.0 से 4.0	0-50	1-00	1-50
6.	4.0 से 6.0	0-70	1-40	2-10
7.	6.0 से 8.0	0-95	1-90	2-85
8.	8.0 से 15.0	1-25	2-25	3-75
9.	15 से अधिक	1-75	3-50	5-25

सन् 1951 ई. में एक संशोधन के द्वारा यह नियम बना कि मालिक लोग उपरोक्त तालिका के तीसरे कॉलन के अनुसार अंशदान न देकर पूरे मजदूरी बिल का एक निश्चित भाग अपने अंशदान के रूप में देंगे। सन् 1962 ई. में पूरे मजदूरी बिल का करीब 2½ प्रतिशत इससे दिया गया था। विशेष अंशदान उन क्षेत्रों में जहां योजना लागू की गई थी 2½ प्रतिशत तथा अन्य क्षेत्रों में 3/4 प्रतिशत था।

कर्मचारियों की कटौती प्रति सप्ताह होती है। यदि वे नियमित छुट्टी पर हों या वैध हड़ताल पर हों अथवा उद्योग में तालाबन्दी हो तो भी यह राशि कटती है यदि इस समय का पूर्ण या आंशिक वेतन उसको मिले।

सीमा क्षेत्र - कर्मचारी राज्य बीमा योजना 24 फरवरी, 1952 को कानपुर में प्रारम्भ की गई उस समय से यह योजना अन्य क्षेत्रों/केन्द्रों में प्रगामी रूप से कार्यान्वित की गई है और अब पूरे देश में 607 केन्द्रों में लागू हैं। दिसम्बर, 1991 के अन्त तक लगभग 61.13 लाख कर्मचारी इस योजना के अंतर्गत आ गये। तालिका 1 में इस द ष्टि से विस्त त विवरण किया गया है।

अब हम कुछ शब्दों की व्याख्या करेंगे।

व्यावसायिक चोट या रोजगार सम्बन्धी चोट
(Employment Injury)

व्यावसायिक चोट का अभिप्राय बीमा योग्य व्यक्ति को अपने काम के दौरान एवं काम के अंतर्गत होने वाली दुर्घटना या व्यावसायिक रोग के कारण होने वाली शारीरिक चोट से है चाहे दुर्घटना या व्यावसायिक रोग भारत की राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर या बाहर हुआ हो।

कारखाना
(Factory)

कारखाने का अभिप्राय ऐसे किसी भू-ग हादि से है जिसमें उसकी परिभाषाएं (Precincts) भी सम्मिलित हैं जहां 20 या 20 से अधिक व्यक्ति मजदूरी पर काम कर रहे हों अथवा पिछले 12 माह में किसी भी दिन काम कर रहे थे और जिसके किसी भाग में निर्माण प्रक्रिया शक्ति की सहायता से की जा रही हो अथवा साधारणतया की जाती है। किन्तु खदान तथा रेलवे रनिंग शेड कारखानों की श्रेणी में नहीं आयेंगे क्योंकि उनके सम्बन्ध में प थक् अधिनियम लागू होते हैं।

कर्मचारी
(Employee)

कारखाना अधिनियम 1948 में श्रमिक की जो परिभाषा दी गयी है उससे भी अधिक विस्त त अर्थ में इस अधिनियम में यहां कर्मचारी (Employee) की परिभाषा दी गयी है। यहां श्रमिक का सम्बन्ध कारखाने की निर्माण प्रक्रिया में ही नहीं वरन् किसी भी काम से है जो कारखाने से सम्बन्धित होता है। कर्मचारी की परिभाषा में प्रत्येक क्लर्क, मजदूर तथा आंशिक समय (Part time) के लिए नियुक्त श्रमिक सम्मिलित किये गये हैं जैसा कि रीजनल डायरेक्टर, कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम श्रीरामुलू नायडू (Regional Director, Employers' State Insurance Corporation Vs. Sriramula Naidu) के मामले में निर्णय दिया गया। कारखाने के काम से सम्बन्धित किसी भी क्रिया में नियुक्त व्यक्ति कर्मचारी की श्रेणी में आ जाता है। कारखाने के भवन उसमें लगे बगीचे की देखरेख करने वाले व्यक्ति, कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्ति (Office attenders) तथा चौकीदार, आदि कर्मचारी माने जाते हैं।

कर्मचारी की श्रेणी में निम्नलिखित व्यक्ति नहीं आते हैं:

क) भारतीय नौ सेना, थल सेना, वायु सेना का कोई सदस्य।

ख) ऐसा व्यक्ति जिसे कुल मिलाकर (अधिक समय का पारिश्रमिक छोड़कर) 1,600 रूपये प्रति माह से अधिक पारिश्रमिक मिलता हो।

किन्तु यदि किसी कर्मचारी का 1,600 रूपये प्रति माह से अधिक पारिश्रमिक (अधिक समय के लिए मिलने वाले पारिश्रमिक के अतिरिक्त) अंशदान अवधि के प्रारम्भ होने के बाद (पहले नहीं) से हो जाता है तो ऐसी अंशदान अवधि की समाप्ति तक उसे कर्मचारी ही समझा जायेगा।

जैसा कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम गनपथिया पिल्लै (Employees' State Insurance Corporation Vs. Ganapathia Pillai) के मामले में निर्णय दिया गया है कि कर्मचारी की परिभाषा में उन प्रबन्ध अभिकर्ताओं के कर्मचारी नहीं आते हैं जो कारखाने का प्रशासनिक नियंत्रण रखते हैं।

व्यवस्था - कर्मचारी राज्य बीमा योजना की व्यवस्था कर्मचारी राज्य बीमा निगम नामक एक नियमित निकाय करता है, सदस्य

कर्मचारियों; नियोजकों, केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, चिकित्सा व्यवसायों और संसद के प्रतिनिधि हैं। इस निगम के सदस्यों में से गठित की गई एक स्थायी समिति इस योजना की व्यवस्था के लिए कार्यपालक निकाय के रूप में कार्य करती है। चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था के लिए कार्यपालक निकाय के रूप में कार्य करती है। चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था से सम्बन्धित मामलों के बारे में निगम को परामर्श देने के लिए एक चिकित्सा सुविधा परिषद् भी विद्यमान है। महानिदेशक, जो निगम का मुख्य कार्यपालक अधिकारी है निगम का और उसकी स्थायी समिति का पदेन सदस्य भी है।

योजना की वित्त व्यवस्था - इस योजना को कर्मचारी राज्य बीमा कोष से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। इस कोष में श्रमिक तथा उद्योगपतियों का धन संचित होता रहता है। साथ ही साथ केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की ओर से दिये गये अनुदान उपहार तथा स्थानीय संस्थाओं अथवा निजी व्यक्तियों द्वारा दिए गए दान व उपहार भी इसमें ही संचित होते हैं। निगम के व्यय का भार केन्द्रों और राज्य सरकारों पर है।

तालिका 1

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के कार्य

(31 मार्च को)

		1972	1982	1987		1989
1.	केन्द्रों की संख्या		318	451	537	556
2.	सम्मिलित कारखानों में कर्मचारियों की संख्या (000)		3976	6429	6279	5997
3.	बीमाकृत व्यक्तियों की संख्या (000)		4334	7319	7123	6807
4.	सम्मिलित लाभान्वितों की संख्या (000)		16715	28397	27637	26411

श्रमिकों का अंश उद्योगपतियों द्वारा जमा किया जाता है जिसको कि वे अनिवार्य रूप से श्रमिक की मजदूरी में से पहले ही उनके द्वारा प्रति सप्ताह किए गए कार्य के अनुपात में काट लेते हैं। श्रमिकों के विधिवत् अवकाश पर रहने अथवा वैधानिक हड़तालों को तालेबन्दी की परिस्थिति में भी उसका अंश काटा जाता है। उद्योगपतियों का अंश संशोधित अधिनियम के अनुसार जमा होता है और उनको अपना अंश अनिवार्य रूप से देना होता है। केन्द्रीय सरकार ने उद्योगपतियों का भाग उनके सम्पूर्ण वेतन बिल का 0.75 प्रतिशत निश्चित कर दिया है जिन स्थानों पर योजना कार्यान्वित की जायेगी वहां के उद्योगपतियों को सम्पूर्ण वेतन-बिल का 0.50 प्रतिशत अधिक देना होता है अर्थात् सम्पूर्ण मजदूरी का 1.25 प्रतिशत इस कोष में जमा करना होता है।

बीमाकृत व्यक्तियों की सुविधायें - अधिनियम का आलोचनात्मक विश्लेषण करने से पूर्व इस बात पर विचार करेंगे कि इसके द्वारा श्रमिक वर्ग को कौन-सी सुविधायें एवं लाभ प्राप्त होते हैं। अधिनियम के अंतर्गत बीमा कराये हुए व्यक्ति को निम्न सुविधायें और लाभ प्राप्त होते हैं -

1. बीमारी लाभ, 2. प्रसूति लाभ, 3. विकलांगता लाभ, 4. आश्रित लाभ, 5. चिकित्सा लाभ।

अब यहां पर प्रत्येक लाभ का एक-एक करके उनका विस्तार में विश्लेषण करेंगे।

बीमारी लाभ- इसके अंतर्गत बीमाकृत व्यक्तियों को बीमारी की अवस्था में जबकि नियुक्त डॉक्टर उन्हें बीमार घोषित कर दें, समय-समय पर नकद भुगतान किया जाता है। इसमें प्रतिदिन का भुगतान नित्य के वेतन के आधे के बराबर होता है। यह सुविधा 365 दिन अर्थात् 1 वर्ष निरन्तर काम करने वाले व्यक्ति को अधिक से अधिक 55 दिन प्राप्त हो सकती है। मई, 1977 से लगातार दो लाभ अवधियों के लिए 56 दिन से बढ़ाकर 91 दिन कर दी गई है। यह लाभ रविवार अथवा अवकाश आदि सब दिनों को दिया जाता है। वास्तव में, इस लाभ के भुगतान की दर साप्ताहिक वेतन के औसत का लगभग आधी होती है। जो व्यक्ति यह सहायता प्राप्त करता है वह अधिनियम के अनुसार किसी औषधालय या अस्पताल के अंतर्गत इलाज में होना चाहिए। इसमें बीमारी की दशा में प्रथम दो दिन तो कुछ नहीं मिलता और यदि उसके उपरांत रोग 15 दिन तक चलता रहे तो आर्थिक सहायता मिलनी प्रारम्भ हो जाती है।

प्रसूति लाभ - अधिनियम के अंतर्गत बीमाकृत महिलाओं को गर्भवती होने पर, गर्भ से सम्बन्धित बीमारी, असमय बच्चा होने पर प्रसूति लाभ प्राप्त होता है तथा समय-समय पर भुगतान मिलता रहता है। प्रसूति लाभ के अंतर्गत प्रभावी लाभ की दर की दुगुनी दर से भुगतान होता है। यह लाभ 12 सप्ताह की अधिकतम अवधि तक उपलब्ध हो सकता है।

असमर्थता लाभ
(Disablement Benefit)

अधिनियम के अंतर्गत असमर्थता लाभ तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है -

क) **अस्थायी असमर्थता** - उसे असमर्थता की अवधि में आधी मजदूरी की दर से लाभ दिया जाता है। यह लाभ असमर्थता की अवधि तक दिया जाता है।

ख) **स्थायी आंशिक असमर्थता** - यदि असमर्थता स्थायी है परंतु आंशिक है तो जीवन भर क्षति-पूर्ति अधिनियम में बताये गए प्रतिशत या आंशिक के हिसाब से सहायता दी जाती है।

ग) **स्थायी पूर्ण असमर्थता** - जीवन पर्यन्त रहने वाली असमर्थता में पूरी दर से जीवन भर सहायता दी जाती है।

यदि ऊपर दी गई असमर्थता के अतिरिक्त कोई असमर्थता होती है तो व्यक्ति को द्वितीय अनुसूची में दी गई दरों से सहायता मिलती है। पूरी दर का अर्थ पिछले 52 सप्ताहों की औसत मजदूरी की आधी मजदूरी है।

विकलांगता लाभ दर दैनिक प्रमापी लाभ दर से 25 प्रतिशत अधिक होती है विकलांगता लाभ की दरें तालिका 2 में प्रस्तुत की गई है।

आश्रित लाभ - यदि किसी श्रमिक की म त्यु कार्य करते समय किसी दुर्घटना के फलस्वरूप होती है तो उसके आश्रितों में से निम्नलिखित व्यक्तियों को प्रतिफल (compensation) प्राप्त होता है-

Table

Rate of Cash Benefit according to nature of disablement

Nature of Disablement		Rate of each benefit and period for which available
(i)	Temporary disablement.	At the full rate during the period of diability.
(ii)	Permanent partial disablement resulting from.	At such percentage of the full rate as being the percentage of loss earning capacity caused by the injury as specified in the schedule.
(a)	An injury specificed in part II of the second schedule appended of the Act.	At such percentage of the full rate as is proportionate to the loss of earning capacity caused by the injury.
(b)	An injury not specified in the said schedu.e	
(iii)	Permanent total disablement	At full rate.

Note:- In both the cases (ii) and (iii) above, benefit payable for which the disablement has been assessed, may be for a limited period or for life.

मजदूरी के अनुसार कर्मचारियों की श्रेणी

कर्मचारियों की श्रेणी		स्वीकृति औसत दैनिक मजदूरी		
		रु.	आ.	पा.
1.	कर्मचारी जिनकी औसत मजदूरी 1 रूपये से कम है।	0	14	0

Contd...

2.	1 रूपये या अधिक परन्तु 1 रूपये 8 आने से कम।	1	4	0
3.	1 रूपये 4 आने या अधिक परन्तु 2 रूपये से कम।	1	12	0
4.	2 रूपये या अधिक परन्तु 3 रूपये से कम	2	8	0
5.	3 रूपये या अधिक परन्तु 4 रूपये से कम	3	8	0
6.	4 रूपये या अधिक पर 6 रूपये से कम	5	0	0
7.	6 रूपये या अधिक परन्तु 8 रूपये से कम	7	0	0
8.	8 रूपये या अधिक।	10	0	0

1. एक विधवा स्त्री को आजीवन अथवा पुनर्विवाह तक पूर्ण दर का 3/5 भाग प्राप्त होता है। यदि एक से अधिक विधवा स्त्री हों तो उनमें यह धनराशि समान रूप से विभाजित कर दी जाती है।
2. 15 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक म तक के नियमित अथवा गोद लिये पुत्र को पूर्ण दर का 2/5 भाग प्राप्त होता है।
3. 15 वर्ष की आयु अथवा विवाह होने तक प्रत्येक नियमित पुत्र को भी पूर्ण दर का 2/5 भाग धन प्राप्त होता है। किसी भी पुत्र या पुत्री को यह सुविधा 18 वर्ष की आयु तक प्रदान की जा सकती है। यदि वह सहकारिता की द ष्टि से शिक्षा प्राप्त करने का कार्य सन्तोषप्रद कर रहा है।

यदि म त व्यक्ति कोई भी आश्रित नहीं छोड़ जाता है तो यह सुविधा उसके माता-पिता अथवा अभिभावकों को आजीवन प्रदान की जाती है। इसके देने की दर कर्मकार प्रतिकार अधिनियम, 1923 के अंतर्गत एक आयोग द्वारा निर्धारित की जाती है जो कि किसी भी दशा में पूर्ण दर की 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होती। साथ ही साथ इस प्रकार से जो धन सब आश्रितों में विभाजित किया जाता है वह किसी भी दशा में पूर्ण दर के धन से अधिक नहीं होना चाहिए।

चिकित्सा लाभ

(Medical Benefits)

बीमाकृत श्रमिकों को उस सप्ताह यह लाभ प्राप्त करने का अधिकार होता है जिसका कि शुल्क जमा किया जा चुका होता है, अथवा जिसमें कि उन्हें रोग सम्बन्धी लाभ, मात त्व सम्बन्धी लाभ या असहायता लाभ प्राप्त होना चाहिए। यह लाभ श्रमिक के परिवार के अन्य सदस्यों को भी प्राप्त हो सकता है। इस द ष्टि से यह भी निश्चय किया जा चुका है कि यदि किसी स्थान पर श्रमिक ऐलोपैथिक प्रणाली के अतिरिक्त किसी अन्य चिकित्सा प्रणाली द्वारा चिकित्सा कराना चाहते हैं और सरकार ने उन प्रणालियों को स्वीकृति भी प्रदान कर रखी है, तो उनको इसके लिए भी सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

नकद लाभों का भुगतान- निगम द्वारा दिए गए नकद लाभों की राशि इस प्रकार है-

(लाख रुपये)

		1987	1988	1989
1.	बीमारी लाभ	5730	5345	4406
2.	प्रसूति लाभ	289	3094	3130
3.	अस्थायी विकलांगता लाभ	1700	1540	1350
4.	स्थायी विकलांगता लाभ	1781	2130	2232
5.	आश्रित लाभ	817	1052	915

अस्पताल, औषधालयों आदि की व्यवस्था - कर्मचारी राज्य बीमा द्वारा संचालित औषधालयों एवं उनकी सेवाओं की प्रगति निम्न तालिका में प्रस्तुत की गई है-

तालिका

कर्मचारी राज्य बीमा द्वारा संचालित औषधालय एवं सेवायें

		1984	1985	1986
1.	अस्पताल	85	89	112
2.	उप-भवन	41	42	00
3.	औषधालय	1440	1446	1288
4.	अस्पताल पलंग			
	(i) कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल	17102	17691	21916
	(ii) कर्मचारी राज्य बीमा उप-भवन	822	842	841
	(iii) अन्य अस्पतालों में	4750	4678	4511
5.	चिकित्सा सुविधा (परिवार इकाइयों की संख्या)			
	(i) प्रतिबन्धित चिकित्सा सुविधा (बाह्य रोगी चिकित्सा सुविधा और औषधि एवं ड्रेसिंग की पूर्ण सप्लाई)	9500	9500	00
	(ii) विस्त त चिकित्सा सुविधा (अस्पताल में भर्ती होकर इलाज कराने की सुविधा को छोड़कर सभी सुविधायें)	889380	874300	
	(iii) पूर्ण चिकित्सा सुविधा (सभी सुविधायें जिनमें अस्पताल में भर्ती होकर इलाज कराने की सुविधा भी शामिल है।)	5229520	5296471	00
	योग	**6128400**	**6180271**	**28669**

अधिनियम के अधीन देय अंशदानों की बकाया राशि - 31 मार्च, 1991 को बकाया राशि 140.10 करोड़ रूपये थी। कर्मचारी राज्य बीमा निगम बकाया देय राशि वसूली के लिए कार्यवाही रक रहा है।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के कार्य की समीक्षा

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की वर्तमान स्थिति का कुछ अनुमान निम्नलिखित आंकड़ों से किया जा सकता है।

विवरण	**1986**	**1988**
केन्द्रों की संख्या	520	551
सम्मिलित कारखानों की संख्या	107176	117073
सम्मिलित कारखानों में कर्मचारियों की संख्या (हजारों में)	6312	6109
बीमाकृत व्यक्तियों की संख्या (हजारों में)	7153	6960
सम्मिलित लाभान्वितों की संख्या (हजारों में)	27752	27005

शैयाओं की संख्या	**वर्ष**		
	1979-80	**1980-81**	**1981-82**

कर्मचारी राज्य बीमा असपताल	13039	13780	15111
(क) सामान्य अस्पताल में	11262	10592	11732
(ख) प्रसूत अस्पताल में	1777	1378	1594
(ग) क्षय अस्पताल में	708	726	832
उप-अस्पतालों	426	440	522
अन्य अस्पतालों में	4765	4843	4930
कुल शैयाएं योग	**18512**	**19349**	**20873**

ग) बिना लाभ लिए चश्मे आदि दिये जा सकते हैं। यदि आंख की रोशनी काम करने में खराब हुई है तो बिना मूल्य चश्मा दिया जा सकता है।

घ) यदि काम करते समय दांत टूट जायें, तो नकली दांत निगम के व्यय पर लगाये जा सकते हैं।

समीक्षा समिति
(ESIC Review Committee)

`सन् 1963 ई. में भारत सरकार ने एक समीक्षा समिति (ESIC Review Committee) की स्थापना की थी जिसका काम निगम के कार्यो का मूल्यांकन करना था। इसकी रिपोर्ट फरवरी, सन् 1966 में प्रस्तुत की गई। इस समिति ने यद्यपि निगम की उपलब्धियों की प्रशंसा की है परन्तु कई त्रुटियां भी बताई हैं। समिति ने 176 सुझाव दिये हैं जो इसके कार्य को अधिक व्यापक, बनाने, लाभ का बंटवारा करने आदि से सम्बन्धित है। उनमें से अधिकांश को निगम ने स्वीकार कर लिया है।

समीक्षा समिति का एक सुझाव यह है कि जहां निगम के कई अस्पताल आदि हों वहां मैडिकल कॉलेज भी खोले जायें।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का कथन है कि महंगाई को देखते हुए 4 रूपये दैनिक तक पाने वाले मजदूरों को अंशदान से मुक्त किया जाये।

जो व्यक्ति कोई लाभ नहीं पाते उनको एक बोनस (No Claim Bonus) देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

यदि निगम के अस्पतालों में सामान्य जनता के उपचार की भी व्यवस्था की जाए, जैसा कि समीक्षा समिति (Review Committee) ने सुझाव दिया है, तो इस बात का ध्यान रखा जाए, कि बीमाकृत कर्मचारियों को असुविधा न हो।

निगम अधिनियम के अन्तर्गत क्षेत्रीय बोर्डो (Regional Boards) की स्थापना हुई। परन्तु इनमें मजदूरों और उद्योगपतियों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। इन बोर्डो के अध्यक्षों का चुनाव भी क्रम (Rotation) से होना चाहिए अर्थात् मजदूरों, सरकार और उद्योगपतियों के प्रतिनिधियों में से बारी-बारी से होना चाहिए।

योजना को कार्यान्वित करने में बाधाएं

कुछ बाधाओं के फलस्वरूप भारत सरकार के लिए यह सम्भव नहीं हो पाया है कि वह इस योजना को विस्त त क्षेत्र में कार्यान्वित कर सके। उद्योगपतियों द्वारा इसका विरोध किया जाता है तथा सरकार को उनका पूर्ण सहयोग नहीं प्राप्त होता है। श्रमिक वर्ग भी इसका कुछ कारणों से विरोध करते हैं -

1. श्रमिक चाहते हैं कि इस योजना में उनके परिवार के सदस्य भी सम्मिलित कर लिए जाएं। अभी हाल में ऐसा कर दिया गया है।
2. श्रमिक अस्पतालों में उत्तम सुविधाएं चाहते हैं तथा निगम के अलग अस्पताल होने चाहिए इसकी मांग करते हैं। इस द ष्टि से भी व्यवस्था की जा रही है।
3. इन सबके अतिरिक्त राज्य सरकारें शिकायत करती हैं कि चिकित्सा पर होने वाले व्यय का 1/3 भाग जो उनको देना पड़ता है वह बहुत ही अधिक है। अब यह निश्चित किया जा चुका है कि राज्य सरकारें व्यय का 1/4 भाग देंगी।

4. श्रमिक न्याय सहित मांग करते हैं कि योजना के कार्यान्वित हो जाने पर उदार एवं प्रगतिशील नियोजकों द्वारा इससे और अधिक प्राप्त चिकित्सा सम्बन्धी सुविधा में कटौती नहीं होनी चाहिए।
5. इसके अतिरिक्त श्रमिक यह मांग करते हैं कि निगम के प्रबंध में उनका अधिक नियंत्रण रहना चाहिए।
6. सबसे अधिक असुविधा प्रशिक्षित डॉक्टरों के अभाव से है। डॉक्टर जो पैनल प्रण्धाली के अंतर्गत कार्य करते हैं वे अनुभव करते हैं कि उनको प्राप्त होने वाला वेतन बहुत ही कम है और वे अधिक वेतनों की मांग करते हैं। प्रशिक्षित कम्पाउण्डरों के प्राप्त करने में भी विशेष कठिनाई होती है।

अधिनियम का आलोचनात्मक विश्लेषण

यह अधिनियम भारत के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण एशिया के श्रम विधान के इतिहास में विशेष स्थान रखता है। परन्तु फिर भी इस अधिनियम में कुछ दोष हैं, जिनके आधार पर इसकी आलोचना की जाती है।

1. सीमित क्षेत्र - अधिनियम का क्षेत्र अत्यंत सीमित है तथा यह केवल 1000 रूपये मासिक वेतन प्राप्त करने वालों पर ही लागू होता है। यह सीमा सन् 1984 के संशोधन अधिनियम द्वारा बढ़ाकर 1600 रूपये कर दी गई है। इस प्रकार समस्त श्रमिक वर्ग इस योजना से लाभान्वित नहीं होता है। अतः इतने सीमित क्षेत्र में योजना को कार्यान्वित करने से भारतीय जनता का कल्याण नहीं होगा। इस सीमा को 3000 रूपये तक बढ़ाने का प्रस्ताव है।
2. इस योजना के प्रति श्रमिक जो व्यय की व्यवस्था की गई है वह बहुत ही कम है। इतने से श्रमिकों की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो पाती हैं।
3. कर्मचारी राज्य बीमा निगम का प्रशासन पूर्णतया केन्द्र के अधीन कर दिए जाने से उसकी कार्यक्षमता घट गई।
4. श्रमिकों के लिए चिकित्सा सम्बन्धी व्यवस्था भी अपूर्ण है। योजना के क्षेत्रों में अस्पतालों एवं औषधालयों की कमी है तथा इनमें इतना स्थान नहीं है कि उसमें समस्त श्रमिकों का उचित रूप से इलाज किया जा सके।
5. इस योजना के अन्तर्गत केवल बीमाकृत व्यक्ति ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार निर्धन श्रमिक जो चन्दा देने में असमर्थ हैं, इन सुविधाओं से वंचित रहते हैं। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी सदस्यों को इस प्रकार की सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध होनी चाहिए।
6. इस योजना के अंतर्गत आर्थिक सहायता केवल बीमारी की अवस्था में ही प्रदान की जाती है तथा उसके उपरान्त कोई सहायता नहीं दी जाती। बीमार व्यक्ति को ठीक होने के उपरान्त यदि कुछ समय तक उपयुक्त भोजन दिया जाये तो इससे उसकी कार्यक्षमता में पर्याप्त व द्धि होती है, अन्यथा शारीरिक दुर्बलता के कारण कार्यकुशलता घट जाती है। अतः श्रमिक के निरोग होने के पश्चात् भी उसे कुछ समय तक आर्थिक सहायता प्राप्त होनी चाहिए।

आज देश की केन्द्रीय सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि यह योजना शेष भारत में लागू कर दी जाये। निगम के कार्य को सुलभ करने की द ष्टि से देश में क्षेत्रीय प्रमण्डलों की स्थापनाएं की जा चुकी हैं। परन्तु यदि इस योजना को व्यावहारिक रूप से देखें तो यह जनसंख्या के बहुत ही थोड़े भाग पर लागू होती है। कृषक वर्ग विशेषतया इससे अछूता है जिस पर कि इस प्रकार की योजना का लागू करना बहुत ही आवश्यक है।

अध्याय-21
मात त्व लाभ अधिनियम, 1961
(The Maternity Benefit Act, 1961)

हमारे देश में एक ऐसे अधिनियम की आवश्यकता थी जो कुछ उद्योगों में बालक के जन्म के पहले और बाद में स्त्रियों के लिए रोजगार से कुछ समय के लिए अवकाश का प्रावधान किया जा सके। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 1961 में एक अधिनियम बनाया गया जिसे मात त्व लाभ अधिनियम, 1961 (The Maternity Benefit Act, 1961) कहा जाता है। जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर यह अधिनियम पूरे भारत में लागू है। यह अधिनियम उस समय से अस्तित्व में आ गया है जिस समय से अधिकारिक तौर पर इसे गजट में अधिसूचित किया गया है। यह अधिनियम निम्न उद्योगों में लागू माना जायेगाः

(i) खनन, केन्द्रीय सरकार के किसी भी विभाग में और जहां श्रमिकों को कलाबाजी, घुड़सवारी या किसी अन्य प्रदर्शन के लिए रोजगार पर रखा जाता है।

(ii) राज्य सरकार द्वारा एक राज्य में अन्य उद्योगों के सन्दर्भ में।

अतः यह अधिनियम केन्द्र व राज्य सरकार में प्रत्येक प्रकार के प्रतिष्ठान चाहे वह कारखाना हो, खान अथवा बागान हो और प्रत्येक ऐसे प्रतिष्ठान में जहां व्यक्तियों को घुड़सवारी, कलाबाजी व अन्य प्रदर्शन के लिए रखा जाता है, लागू होता है। राज्य सरकार भी इस अधिनियम को लागू कर सकती है लेकिन इसके लिए उसे केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेनी पड़ेगी। उसके पश्चात् कम से कम 2 माह का समय रखकर राज्य सरकारी आधिकारिक गजट में सूचना जारी करके औद्योगिक, वाणिज्यिक, कृषि व अन्य किसी क्षेत्र के प्रतिष्ठान पर लागू कर सकती है।

इस अधिनियम में बालक से अभिप्राय तुरंत पैदा हुये बालक (still born child) से, डिलीवरी (delivery) से अभिप्राय बालक के जन्म से तथा नियोक्ता (employer) से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो श्रमिकों का पर्यवेक्षण करता है तथा उन पर नियंत्रण करता है। विभाग प्रमुख (head of the department) को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय सरकार में प्रमुख कार्यकारी अधिकारी अथवा प्रबंधक, निदेशक, प्रबंध एजेंट अथवा इस नाम से मिलते जुलते व्यक्तियों को नियोक्ता की श्रेणी में रखा जाता है।

इस अधिनियम में प्रतिष्ठान के अंतर्गत

(i) कारखाना

(ii) खान

(iii) बागान

(iv) अथवा ऐसा प्रतिष्ठान जहां व्यक्तियों को घुड़सवारी, कलाबाजी और अन्य प्रदर्शन के लिए कार्य पर रखा जाता है, को शामिल किया जाता है।

इस अधिनियम के अनुसार निम्न कुछ समयावधि में स्त्री के कार्य करने पर पाबंदी लग जाती है -

(i) कोई भी नियोक्ता किसी भी प्रकार के प्रतिष्ठान में जानबूझकर बच्चे के जन्म अथवा गर्भपात (miscarriages) के पश्चात् 6 सप्ताह का समय पूरा होने से पहले कार्य पर नहीं रखेगा/लगायेगा।

(ii) इसी प्रकार कोई भी स्त्री गर्भपात या बालक के जन्म के पश्चात् 6 सप्ताह के समय से पहले कार्य करने नहीं आयेगी अथवा कार्य नहीं करेगी।

(iii) इसी प्रकार बालक के जन्म से 6 सप्ताह बाद तुरंत कोई भी नियोक्ता स्त्री को कठोर प्रकृति (arduous nature) के कार्य अथवा ऐसे कार्य जिसमें उसको कई घंटे खड़ा रहना पड़ता है अथवा ऐसा कार्य जिससे स्त्री के गभी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, उसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो अथवा गर्भपात होने की संभावना हो, कार्य करने की अनुमति नहीं देगा।

(iv) इसके अंतर्गत डिलीवरी की संभावित तिथि (date of expected delivery) से एक महीना पहले तथा बालक के जन्म अथवा गर्भपात के तुरंत बाद का 6 सप्ताह का समय आता है।

(v) इस समयावधि के लिए गर्भवती स्त्री कार्य से अनुपस्थित रहने पर अवकाश का आवेदन पत्र (leave) प्रस्तुत नहीं करेगी।

मुख्य अवधारणाएं
(Main Concepts)

(i) मजदूरी (wages) - प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 के अंतर्गत मजदूरी से अभिप्राय उस समस्त देय पारिश्रमिक से है जिसका भुगतान किसी स्त्री को नियोजन की शर्तो को पूरा किये जाने पर किया जाना है, और इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं -

क) ऐसे नकद भत्ते (मँहगाई भत्ता भी) तथा मकान किराया भत्ता जिनके लिए कोई स्त्री तत्समय अधिकारिणी हो।

ख) प्रोत्साहन लाभांश (Incentive bonus), तथा

ग) खाद्यान्नों (food grains) और अन्य वस्तुओं के रियायती प्रदाय (concessional supply) का धन-मूल्य (money value)।

किन्तु इसमें निम्नलिखित को सम्मिलित नहीं किया जायेगा -

क) प्रोत्साहन लाभांश के अतिरिक्त और कोई लाभांश,

ख) अतिरिक्त समय में कार्य करने पर धनराशि और कोई कटौती, या भुगतान जो जुर्माने के कारण किया गया हो;

ग) भविष्य-निधि, पेंशन फण्ड में दिया गया नियोजक का अंशदान,

घ) सेवा की समाप्ति पर देय कोई उपदान (gratuity)।

(ii) नियोजक (Employer) - नियोजन से अभिप्राय अग्रलिखित व्यक्तियों से है -

क) मुख्य कार्यपालक अधिकारी; यदि स्थापन स्थानीय प्राधिकारी के अधीन है,

ख) ऐसा व्यक्ति जो प्रतिष्ठान के मामलों में अन्तिम नियंत्रण रखता हो।

(iii) बच्चा (Child) - बचचे के अन्तर्गत म तक पैदा हुआ बच्चा भी सम्मिलित है।

(iv) समुचित सरकार (Appropriate government) - प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961 के अंतर्गत समुचित सरकार से अभिप्राय केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार से है।

केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों का क्षेत्राधिकार विभाजित किया गया है, किन्तु राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार से पूर्व आदेश प्राप्त करके अन्य प्रतिष्ठानों के लिए भी इस अधिनियम को पूरे तौर से लागू कर सकती है, या उसके प्रावधानों के कुछ भागों को लागू कर सकती है। यदि सन्दर्भ से अन्यथा अभिप्राय नहीं है तो यदि स्थापन (establishment) खान (mine) है, अथवा ऐसे स्थापन हैं जिसमें घुड़सवारी (Equestrain) या रस्सी नाच/नट सम्बन्धी (Acrobatic) प्रदर्शन अथवा अन्य प्रकार के कार्यो के सम्पादन (other preformances) में व्यक्तियों को नियोजित किया जाता है, तो केन्द्रीय

सरकार, अन्य स्थापनों के सम्बन्ध में, राज्य सरकार।

(v) स्त्री (Women) - स्त्री से अभिप्राय ऐसी स्त्री से है जो किसी स्थापन में मजबूरी के लिए प्रत्यक्ष (directly) या एजेंसी के द्वारा नौकरी के लिए नियुक्त की गई हो।

(vi) गर्भपात (miscarriage) - गर्भपात से अभिप्राय है, गर्भ के छब्बीस सप्ताह पहले, या दौरान, गर्भित भ्रूण (pregnant uterus) की अन्तर्वस्तुओं (contents) का निष्कासन (expulsion), परनतु ऐसा कोई गर्भपात इसमें सम्मिलित नहीं माना जायेगा जिसका कारित किया जाना भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) के अन्तर्गत दण्डनीय हो।

(vii) प्रजनन या प्रसव (delivery) - प्रसव से अभिप्रेत किसी बच्चे के जन्म से है।

मुख्य प्रावधान
(Main Provisions)

क) नर्सिंग मध्यावकाश (Nursing breaks) - नर्सिंग मध्यावकाश से अभिप्राय ऐसे मध्यावकाश से है जो प्रत्येक स्त्री को, जिसने बच्चे को जन्म दिया है तथा बच्चे को जन्म देने के बाद काम कर वापस आती है; स्वीकृत विश्राम के अन्तराल (interval of rest) के अतिरिक्त दैनिक कार्य के अनुक्रम में, बच्चे के पालन के लिए, निश्चित अवधि के दो मध्यावकाश स्वीकृत हैं। ये मध्यावकाश बच्चे के पन्द्रह महीने की अवस्था प्राप्त कर लेने तक उपलब्ध होते रहेंगे। (धारा 11)

ख) **गर्भपात की छुट्टी** (Leave of Miscarriage) - गर्भपात की छुट्टी के मामले में प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम की धारा 9 में व्यवस्था की गई है कि गर्भपात के मामले में कोई स्त्री, ऐसे प्रमाण के प्रस्तुत करने पर, जैसा कि निर्धारित हो, अपने गर्भपात का दिन अनुसरण करने वाले छः सप्ताह की अवधि के लिए प्रसुविधा की दर पर सवेतन (मजदूरी सहित) छुट्टियों की हकदार होगी।

ग) **गर्भधारण के प्रसव से, बच्चे के अपरिपक्व जन्म से, या गर्भपात से, उत्पन्न होने वाली बीमारी के लिए छुट्टियाँ** (leave for illness arising out of pregnancy, delivery, pregnancy, birth of a child or miscarriage) - किसी भी स्त्री को, उसके गर्भधारण, प्रजनन, बच्चे के अपरिपक्व जन्म से, या गर्भपात से होने वाली बीमारी से पीड़ित होने पर, ऐसे प्रमाण के प्रस्तुत किये जाने पर; धारा 9 के अंतर्गत समनुज्ञान अनुपस्थिति की अवधि के अतिरिक्त धारा 6 के अंतर्गत, या जैसी स्थिति हो, एक मास की अधिकतम अवधि के लिए प्रसूति प्रसुविधा की दर पर मजदूरियों सहित छुट्टी प्रदान की जायेगी। (धारा 10)

घ) **अनुपस्थिति या गर्भधारण के दौरान बरखास्तगी** (Dismissal during absence or pregnancy) - यदि कोई स्त्री इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार काम करने से अपने आपको अनुपस्थित रखती है तो नियोजक के यह गैर-कानूनी होगा कि वह उसे ऐसी अनुपस्थिति के दौरान या उसके कारण उसे उन्मोचित या बरखास्त कर दे, या उन्मोचन या अलाभकारी (disadvantageous) हो। अपने गर्भधारण के दौरान किसी समय किसी स्त्री का सेवा-उन्मोचन (descharge) या बरखास्तगी, यदि वह स्त्री ऐसे सेवा-उन्मोचन या बरखास्तगी के सिवाय, प्रसूति प्रसुविधा की अधिकारिणी होती, या उनसे प्रसूति प्रसुविधा या चिकित्सा प्रसुविधा से वंचित करने (depriving) का प्रभाव नहीं रखेगी।

परन्तु जहां स्त्री और कदाचार (gross misconduct) को दोषी है तथा उसे नियोजक ने लिखित ओदशे द्वारा संसूचित कर दिया है, तो उसे प्रसूति प्रसुविधा या दोनों से वंचित कर सकेगा।

सुनिश्चित अवधि के दौरान प्रतिषिद्ध स्त्री का नियोजन
(Law Relating to employment of woman prohibited during a certain period)

1. सुनिश्चित अवधि के दौरान प्रतिषिद्ध स्त्री का नियोजन, या उसके द्वारा कार्य करने के सम्बन्ध में प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 की धारा 4 उपबन्धित करता है कि कोई भी नियोजक यह जानते हुए अपने प्रतिष्ठान में किसी भी ऐसी स्त्री को प्रसव या गर्भीपात के दिन से तुरन्त अनुगामी (immediately following) 6 सप्ताहों के दौरान नियोजित नहीं

करेगा। धारा 4 के अंतर्गत नियोजक को ऐसी स्त्री को नियोजित (नौकरी में रखने) करने से रोका (prohibit) गया है जिसके बालक पैदा हुआ, परन्तु यह अवधि बालक पैदा होने या गर्भपात होने के तुरन्त अनुगामी 6 सप्ताहों की मानी गई है।

2. कोई भी स्त्री बच्चा पैदा होने या गर्भपात के दिन से तुरन्त अनुगामी 6 सप्ताहों के दौरान किसी प्रतिष्ठित में कार्य नहीं करेगी।

3. धारा के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कोई गर्भिणी स्त्री यदि प्रार्थना करती है कि उससे ऐसे कार्य नहीं लिया जाए जो कि कठोर प्रकृति का है, या जिसमें कई घण्टे खड़ा रहना पड़े, या उसके गर्भपात की सम्भावना रखता हो, या अन्यथा उसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हो, तो ऐसी स्त्री से उक्त कोई कार्य करने के लिए अपेक्षा नहीं की जायेगी, अर्थात् उससे उक्त प्रकार की प्रकृति का कार्य नहीं लिया जाएगा।

4. उपधारा (3) में निर्दिष्ट अवधि निम्नलिखित होगी-

   क) उसके आशायित प्रसव (expected delivery) की तारीख से पहले 6 सप्ताह की अवधि के तुरन्त पूर्वगामी एक माह की अवधि।

   ख) 6 सप्ताह की उक्त अवधि के दौरान कोई अवधि जिसके लिए गर्भिणी स्त्री धारा 6 के अंतर्गत अनुपस्थिति की छुट्टी का उपभोग नहीं करती।

भुगतान के पात्र
(Entitlement for Payment)

1. इस अधिनियम के प्रावधानों के अध्यधीन, प्रत्येक स्त्री को अपनी यथार्थ अनुपस्थिति के लिए अर्थात अपने सब से तुरन्त पहले दिन की कालावधि (period) उसके प्रसव का यथार्थ दिन, तथा उस दिन के तुरन्त पश्चात् की कालावधि के लिए औसत दैनिक मजदूरी की दर पर प्रसुविधा के संदाय (भुगतान) के लिए अधिकारिणी होगी और उसका नियोजक उत्तरदायी होगा।

   स्पष्टीकरण (explanation) - इस उपधारा के प्रयोजन के लिए औसत दैनिक मजदूरी से तात्पर्य है उस स्त्री को उन दिनों के लिए जिसमें प्रसव के कारण अनुपस्थित रहने की तारीख से तुरन्त पहले तीन कलैंडर महीनों की अवधि के दौरान काम किया है, देय उस स्त्री की मजदूरियां (wages) का औसत न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अधीन नियत (fixed) या पुनरीक्षित (revised) न्यूनतम मजदूरी दर, अथवा दस रूपये, जो भी अधिकमत हों।

2. कोई भी स्त्री प्रसूति प्रसुविधा की अधिकारिणी उस समय तक नहीं होगी जब तक उसने अपने अशमित प्रसव (delivery) की तारीख से पूर्व गामी बारह महीनों में अस्सी दिनों से अन्यून (कम नहीं) अवधि तक, उस नियोजक के प्रतिष्ठान में यथार्थ में काम किया है जिससे वह प्रसूति प्रसुविधा का दावा करती है।

परन्तु यह और कि यदि किसी स्त्री के बच्चा पैदा हो चुका है, किन्तु वह प्रसव के दौरान मर जाती है या अपने प्रसव के दिन की तुरन्त अनुगामी कालावधि के दौरान मर जाती है जिसके लिए प्रसूति प्रसुचिधा के लिए वह अधिकारिणी है, और दोनों स्थितियों में से किसी में भी बच्चे को अपने पीछे छोड़ जाती है, तो नियोजक उस सम्पूर्ण कालावधि के लिए प्रसूति प्रसुविधा देने के लिए दायी होगा, किन्तु यह उक्त कालावधि में बच्चा भी मर जाता है, तो फिर वह बच्चे की म त्यु के दिन को सम्मिलित करते हुए, दायी होगा।

दावे
(Claims)

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत दावे (claim) की सूचना के सम्बन्ध में प्रावधान इस प्रकार हैः

1. कोई भी स्त्री जो किसी स्थापन (establishment) में काम कर रहीहै, और इस अधिनियम के अंतर्गत प्रसूति प्रसुविधाओं को प्राप्त करने की अधिकारिणी है, वह ऐसी धनराशि के भगुतान के लिए अपने नियोजक को एक लिखित नोटिस ऐसे

निर्धारित प्रारूप में देगी जैसा कि विदित किया जाये। ऐसी धनराशि का भुगतान उसे या नोटिस से नामजद व्यक्ति को किया जा सकता है, परन्तु यह है कि उस अवधि के दौरान जिसके लिए वह प्रसूति प्रसुविधा प्राप्त करती है, अन्य किसी स्थान (प्रतिष्ठान) में कार्य नहीं करेगी।

2. गर्भिणी स्त्री के मामले में ऐसे नोटिस में उस तिथि (date) का कथन होगा जिससे वह कार्य से अनुपस्थित रहेगी, परन्तु वह तिथि उसकी आशयित प्रसव की तिथि से छः सप्ताह से अधिक पहले की तिथि नहीं होगी।

3. कोई स्त्री जिसने नोटिस नहीं दिया है, और वह यदि गर्भिणी है, तो जितनी जल्दी हो सके, बच्चे पैदा होने के बाद, नोटिस दे सकती है।

4. उस नोटिस की प्राप्ति पर नियोजक ऐसी स्त्री को स्थापन से उस कालावधि (period) के दौरान अनुपस्थित रहने की अनुज्ञा देगा जिसके लिए उसे प्रसूति प्रसुविधा प्राप्त होती है।

5. प्रसूति प्रसुविधा की धनराशि का भुगतान जो उसकी आशयित प्रजनन की तारीख से पूर्वगामी अवधि के लिए हो, नियोजक द्वारा उस स्त्री को ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करने कि वह स्त्री गर्भवती है, जैसा कि निर्धारित हो, बतौर अग्रिम (in advance) किया जायेगा, और पश्चात्वर्ती अवधि के लिए देय राशि नियोजक द्वारा उस स्त्री को ऐसे प्रमाण के साथ प्रस्तुत किये जाने पर अड़तालीस घण्टे के अन्तर जैसा कि निर्धारित हो, कि उस स्त्री ने बच्चा पैदा किया है, भुगतान की जाएगी।

6. इस धारा के अंतर्गत नोटिस देने में विफलता (failure) किसी स्त्री की प्रसूति प्रसुविधा या इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसी किसी अन्य राशि के पाने के अधिकार को समाप्त नहीं करेगी।

स्त्री की म त्यु हो जाने पर प्रसूति प्रसुविधा का भुगतान

(Payment of Maternity benefit in case of death of a woman)

धारा 7 के अंतर्गत ऐसी स्त्री जो कि प्रसूति प्रसुविधा, या इस अधिनियम के अंतग्रत किसी अन्य धनराशि को पाने की अधिकारिणी है, यदि प्रसूति प्रसुविधा प्राप्त करने से पहले ही मर जाती है, या जहां धारा 5 की उपधारा (3) के द्वितीय परन्तुक (second proviso) के अधीन (देखिए प्रश्न नं.3 के उत्तर का अन्तिम पैराग्राफ) प्रसूति प्रसुविधा प्राप्त करने की अधिकारिणी है, तो नियोजक ऐसी प्रसुविधा को धनराशि का भुगतान उस स्त्री द्वारा धारा 6 के अंतर्गत दिये गये नोटिस में नामिक (nominated) व्यक्ति को करेगा। यदि उस स्त्री द्वारा नामिक कोई व्यक्ति नहीं है तो ऐसी धनराशि का भुगतान नियोजक उसके विधिक प्रतिनिधि (legal representative) को करेगा।

अपील का प्रावधान

(Right of Appeal)

धारा 12 (2) (ख) में प्रावधान किये गये हैं कि कोई स्त्री जिसे प्रसूति प्रसुविधा, या चिकित्सा प्रसुविधा या दोनों से वंचित कर दिया गया है, या इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार काम से अनुपस्थित रहने के दौरान, या उसके कारण उन्मोचित या बरखास्त कर दिया गया है; तो इस प्रकार वंचित किये जाने के आदेश की संसूचना दिये जाने की तारीख से साठ दिन के भीतर, ऐसे प्राधिकारी को जैसा कि विहित किया जाए, अपील कर सकेगी। तब ऐसी अपील पर उस प्राधिकारी का निश्चय कि क्या वह स्त्री चिकित्सा प्रसुविधा या प्रसूति (maternity benefit) या दोनों से वंचित की जानी चाहिए या नहीं अन्तिम होगा।

प्रशासन

(Administration of the Act)

क) **निरीक्षक की नियुक्ति** (Appointment of Inspectors) - प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत समुचित सरकार द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए ऐसा अधिकारी को जैसा कि वह ठीक समझे, निरीक्षक नियुक्त कर सकेगी तथा उसके स्थानीय क्षेत्राधिकारी की सीमाएं भी निश्चित कर सकेगी।

निरीक्षकों की शक्तियां - धारा 15 के अंतर्गत निरीक्षक को अग्रलिखित शक्तियां प्राप्त हैं।

(i) समस्त युक्तिसंगत समयों पर ऐसे सेवकों के साथ, यदि कोई हो, जो सरकार के या किसी स्थानीय या अन्य सार्वजनिक प्राधिकारी (Public authority) की सेवा में हो, जैसा कि वह ठीक समझे, किन्हीं परिसरों (premises) या स्थानों में प्रवेश कर सकता है, जहां स्त्रियां नियोजित हों, या किसी प्रतिष्ठान में उनको कार्य दिया गया हो। उसका प्रवेश किन्हीं रजिस्टरों, अभिलेखों और नोटिसों, जो इस अधिनियम के द्वारा या अंतर्गत रखे जाने या प्रदर्शित किये जाने के लिए आवश्यक हो, की परीक्षा के प्रयोजनों के लिए होना चाहिए। वह उनकी प्रस्तुति (Production) की अपने निरीक्षण के लिए अपेक्षा कर सकता है।

(ii) उस स्थान (establishment) नियोजित किसी पुरुष की परीक्षा (examine him) कर सकता है, अर्थात् पूछताछ कर सकता है, प्रश्न कर सकता है।

परन्तु उपबन्ध यह है कि इस धारा के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को ऐसे प्रश्न का उत्तर या साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा जो उसको अपराध में संलग्न (incriminate) करता हो।

(iii) निरीक्षक को अधिकार होगा कि वह किसी प्रतिष्ठान के नियोजन से, जो उसके अधिकार क्षेत्र में आता हो, उसमें नियोजित स्त्रियों के नाम और पते, उसको दी गई भुगतान की धनराशि (payments) और इस अधिनियम के अंतर्गत उनसे प्राप्त आवेदनों के सम्बन्ध में सूचना देने के लिए जानकारी प्राप्त करें।

(iv) वह किन्हीं रजिस्टरों और अभिलेखों या उनके किन्हीं अभिभागों (portions) की प्रतिलिपियां ले सकता है।

धारा 16 उपबन्धित करती है कि इस अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त किया गया प्रत्येक निरीक्षक भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 के अर्थ में एक लोक-सेवा (public servant) समझा जायेगा।

ख) कोई स्त्री किन परिस्थितियों में निरीक्षक से शिकायत (complaint) कर सकती है और निरीक्षक से वह क्या अनुतोष प्राप्त कर सकती है - इस सम्बन्ध में धारा 17 में उपबन्ध किये गये हैं जो 1988 के संशोधन अधिनियम में संशोधित होकर उपबन्धित करती है कि कोई भी स्त्री जो यह दावा करे कि प्रसूति प्रसुविधा या अन्य कोई धनराशि जिसे वह इस अधिनियम के अंतर्गत प्राप्त करने की अधिकारिणी है, यदि उसकी अदायगी अनुचित रूप से रोक ली जाती है तथा कोई अन्य व्यक्ति जो वह दावा करे कि धारा 7 के अन्तर्गत उसकी देय भगुतान अनुचित रूप से रोक लिया गया है या इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार काम से अनुपस्थित रहने के दौरान या उसके कारण उसे उसके नियोजन ने उन्मुक्त (discharge) या बरखासत कर दिया है, तो वह निरीक्षण से शिकायत (complaint) कर सकती है। निरीक्षण स्वयं अपनी पहल पर या ऊपर लिखे अनुसार शिकायत मिलने पर जांच करेगा या करवायेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि भुगतान अविधिक रूप से रोक लिया गया है तो अपने आदेश के अनुसार भुगतान किये जाने को वह निर्दिष्ट कर सकता है। यदि उसका समाधान हो जाता है कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार काम से अनुपस्थित रहने के दौरान या उसके कारण उसे उन्मोचित या बरखास्त कर दिया गया है तो वह ऐसे आदेश पारित करेगा जो मामले की परिस्थिति में न्यायोचित और समुचित हो।

यदि कोई धनराशि इस धारा के अंतर्गत संदेय है तो वैसी धनराशि के लिए निरीक्षक द्वारा प्रमाण-पत्र दिये जाने पर वह धनराशि कलेक्टर के द्वारा भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किये जाने योग्य होगी।

उल्लंघनकर्ता से संबंधित प्रावधान

(Provisions for Violators of the Act)

इस अधिनियम के उल्लंघन के लिए शास्त्रियों (ienalties) का उपबन्ध धारा 21 के अंतर्गत किया गया है, जिसको 1988 के अधिनियम सं. 61 में संशोधित कर दिया गया है। इस अधिनियम के अंतर्गत यदि कोई स्त्री प्रसूति प्रसुविधा के लिए कोई धनराशि पाने की अधिकारिणी है, और नियोजक उसका भुगतान करने में विफल रहा है अथवा इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन काम में अनुपस्थित रहने के दौरान, या उसके कारण उसे उन्मोचित या बर्खास्त कर दिया जाता है तो वह कारावार से दण्डनीय होगा, तो जीन महीने से कम का न होगा और जिसका विस्तार एक वर्ष तक का हो सकता है और वह अर्थ-दण्ड से भी दण्डनीय होगा, जो दो हजार रूपये से कम का नहीं होगा, किन्तु उसका विस्ता पांच हजार रूपये तक का हो सकता

है। किन्तु अभिलिखित कारणों से न्यायालय कारावास की अवधि कम कर सकता है अथवा कारावास के स्थान पर केवल अर्ध दण्ड आरोपित कर सकता है।

यदि नियोजक इस अधिनियम का या उसके अध्यधीन बने नियमों का उल्लंघन करता है और उसके लिए इस अधिनियम में अन्यत्र कोइर्द शास्त्रि विहित नहीं है तो वह एक वर्ष तक के कारावास से दण्डित किया जा सकता है अथवा जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जा सकता है। यदि प्रसूति प्रसुविधा के अलावा धनराशि के भुगतान में विफल रहते हैं। उल्लंघन है तो जितनी धनराशि बकाया रह गई है उसे जुर्माने की भांति वसूल करके उसके अधिकारी व्यक्ति को भुगतान न्यायालय कर देगा।

इन्स्पेक्टर द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति से रजिस्टर या दस्तावेज मांगे जाने पर जो उसकी अभिरक्षा में है इंकार किये जाने पर, या इन्स्पेक्टर द्वारा परीक्षण किये जाने से बचाने के लिए किसी व्यक्ति के कोई रोकता है या छिपाता है तो उसे एक वर्ष तक के कारावास से दण्डित किया जा सकता है या पांच हजार रूपये तक जुर्माना किया जा सकता है या दोनों दण्ड किये जा सकते हैं।

इस अधिनियम के अंतर्गत अपराधों का संज्ञान अपराध करने की तिथि से एक वर्ष के भीतर परिवाद किए जाने पर सक्षम न्यायालय कर सकेगा। परिवाद व्यथित स्त्री, इन्सपेक्टर या रजिस्टर्ड व्यवसाय संघ का पदाधिकारी कर सकता है जिसकी ऐसी स्त्री सदस्य हो महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी से नीचे की पंक्ति का कोई न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेता।

अध्याय-22
बाल मजदूर (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986
(Child labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986)

आधुनिक औद्योगिक के प्रारम्भ के साथ मालिकों में यह प्रव त्ति उत्पन्न हो गई कि कम लागत लगाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जाये। अतः प्रत्येक देश के बालों को अधिक संख्या में कारखानों में रोजगार पर लगाया गया। इन बालों को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी और उनसे अत्यधिक समय तक कार्य कराया जाता था। ये बालक अत्यंत कष्टप्रद परिस्थितियों में कार्य करते थे। इग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ में बालकों की दशा बड़ी दयनीय थी। बडे पैमाने के उद्योगों की स्थापना के बाद, कारखानों के मालिकों ने शीघ्र ही यह अनु।भव किया कि स्त्रियों एवं बालकों से अधिकांश कार्य लिया जा सकता था और वे पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा सस्ते पड़ते थे। इंग्लैण्ड में 1601 के निर्धन कानून (poor law) द्वारा यह आदेश दिया गया कि भिखमंगे बालकों को किसी भी व्यवस्था में शिक्षुओं के रूप में लगा देना चाहियें। अतः मालिकों के लिए यह साधारण बात हो गई कि वे कार्यभवनों (Work Houses) में जाते थे और भिखमंगे बालकों को टोलियां की टोलिया शिक्षुओां के रूप में भर्ती कर लेते थे। इन बालकों को कारखानों में ले जाया जाता था और इनसे दिन में 12 से 16 घण्टों तक काम लिया जाता था। उनको रविवार तक की छुट्टी नहीं दी जाती थी और इस दिन उन्हें साधारणतया चिमनियों को साफ करना पड़ता था। कई बार चिमनी के नीचे आग जला दी जाती थी ताकि बालक सफाई के लिए मजबूरन चिमनी के ऊपर की ओर चढ़ें। ऐसे मौकों पर घुटन के कारण बहुत से बालकों की म त्यु तक हो जाती थी। बालकों के लिए कारखाने के मालिकों की ओर से भोजन, कपड़े और रहने की व्यवस्था तो होती थी परन्तु कुछ मालिकों को छोड़कर अधिकतर मालिक बाल श्रमिक प्रणाली को लाभ का ही साधन समझते थे। बालों को कार्य के लिए ओवरसियरों के अधीन लगाया जाता था। इन ओवरसियरों का वेतन बालकों से लिये गये काम की मात्रा पर निर्भर होता था। अतः बालकों को कोड़े लगाए जाते थे, बेड़ियाँ बांधी जाती थीं, सताया जाता था, उनका हर प्रकार से दकन होता था और उनके साथ क्रूर व्यवहार किया जाता था। उनकी अवस्था अमेरिका में उन दिनों के दास प्रथा वाले राज्यों से भी अधिक खराब थी।

कारखानों में काम करने वाले बाल श्रमिकों की दयनीय दशा की वास्तविकता की ओर जनसाधारण का ध्यान नहीं गया था। जब इनके विषय में जनता को ज्ञात भी हुआ तक भी इस बात से उन्हें कोई चिन्ता नहीं हुई कि 5,6 या 7 वर्ष की आयु के बालक कारखानों में काम करते थे। यह विचार को आधुनिक समय में ही आया है कि श्रमिक वर्ग के बालकों को 14, 15 वर्ष की आयु तक जीविकोपार्जन के कार्य में नहीं लगाना चाहिये और तब तक का उनका समय केवल पढ़ाई व मनोरंजन में ही व्यतीत होना चाहिये। कारखाना प्रणाली के पूर्व भी बालक श्रमिक पाए जाते थे। तीन-तीन चार-चार वर्ष के मासूम बच्चों तक से यह आशा की जाती थी कि वे कपड़ा बुनने के कार्य तथा कुटीर उद्योगों की सरल प्रक्रियाओं में मदद देंगे। अतः कारखानों में बाल श्रमिकों को काम पर लगाना बुरा नहीं समझा जाता था।

भारत में भी, औद्योगीकरण के साथ बालकों को अधिक संख्या में कारखानों में रोजगार पर लगाया गया। कुछ उद्योगों में इनको अब भी रोजगार पर लगाया जाता है, यद्यपि इनकी आयु, कार्य-घण्टे आदि के लिए कुछ विशेष कानूनी उपबन्ध बना दिये गये हैं। जहां इंग्लैंड में अब श्रम कानूनों के पास होने के साथ ही बच्चों को काम पर लगाने की बात बीते युग की बात रह गई है, वहां भारत में जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने कहा है, "कुछ उद्योगों में बालकों को अवैध रूप से रोजगार में लगाना भारत की श्रम दशाओं पर एक काला धब्बा है।

सन् 1933 का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम
[The Children (Pledging of Labour) Act, 1933]

यह अधिनियम रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप पारित किया गया था। रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जांच में यह देशा कि अनेक उद्योगों में विशेषतया कालीन बुनने तथा बीड़ी उद्योग में, माता-पिता या संरक्षक अपने छोटे-छोटे बालकों को, उनके श्रम का अनुबन्धन करके मालिकों के पास कार्य के लिए छोड़ देते थे। इस प्रथा के अंतर्गत किसी अग्रिम धन या ऋण हेतु एक अनिश्चित अवधि के लिये श्रमिकों का अनुबन्ध कर दिया जाता था। इसलिये आयोग ने इस बात की सिफारिश की थी कि श्रम अनुबन्धन को एक दण्डनीय अपराध घोषित किया गया जोकि सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ। इस अधिनियम के अनुसार कोई भी ऐसा समझौता, चाहे वह लिखित हो या अलिखित, अवैध हो गया है जिसके अन्तर्गत किसी बालक के माता-पिता या उसके संरक्षक किसी लाभ या धन के बदले उस बालक की सेवाओं को किसी भी रोजगार में उपयोग करने की अनुमति देकर उसके श्रम को अनुबन्धित कर देते हैं। परन्तु इस अधिनियम के अंतर्गत ऐसा कोई समझौता अवैध नहीं है जिसके अनुसार बालकों की सेवाओं के बदले केवल मजदूरी के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नहीं लिया जाता है और जो बालकों के हित के विरुद्ध नहीं है और जिसे एक सप्ताह की सूचना पर समाप्त किया जा सकता है। इस अधिनियम के अंतर्गत 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बालक माना जाता है। इस कानून का उललंघन करने पर मालिकों पर 200 रूपये तक जुर्माने की तथा मां-बाप पर 50 रूपये तक जुर्माने की व्यवस्था की गई है।

बाल श्रमिकों के अनुबन्ध के सम्बन्ध में स्थिति
(Conditions About Pledging of Child Labour)

कुछ जांचों से यह तथ्य सामने आया है कि इस अधिनियम के लागू होने के बावजूद, बाल श्रमिकों का अनुबन्धन अभी भी जारी है, विशेष रूप से तमिलनाडु व कर्नाटक के बीड़ी उद्योग में। श्रम जांच समिति ने भी इस बात का उल्लेख किया था। कर्नाटक के श्रम आयुक्त की एक रिपोर्ट में यह कहा गया था कि कृषि श्रमिकों की दलित जातियों में बाल श्रमिकों के अनुबन्धन की प्रथा अभी भी पाई जाती है। सरकार अब इस बुराई को बन्धक मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 के द्वारा दूर करने का प्रयास कर रही है जिस पर कि कृषि श्रमिकों के पाठ में विचार किया जा चुका है।

सन् १९३७ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम
(The Employment of Children Act, 1938)

इस अधिनियम के अनुसार उन समस्त व्यवसायों में 15 वर्ष से कम आयु के बालकों, को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया था जो रेलवे यातायात द्वारा ले जाये गये यात्रियों, सामान या डाक से सम्बन्धित हैं या जिनका सम्बन्ध भारतीय बन्दरगाह अधिनियम के द्वारा विनियमित बन्दरगाहों में समान चढ़ाने या उतारने से है। इस अधिनियम में सन् 1939, 1947, 1949, 1950, 1951, 1978 और 1984 में संशोधन किया गया था और अन्त में इसे निरस्त करके इसके स्थान पर बाल श्रमिक (निषेध तथा नियमन) अधिनियम 1986 में बनाया गया।

बाल श्रमिक (निषेध तथा नियमन) अधिनियम, १९८५
[The Child Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986]

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह है कि कुछ रोजगारों में उन बालकों को काम पर लगाने से रोका जाए जिन्होंने 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है तथा कुछ अन्य रोजगारों में बालकों की कार्य करने की दशाओं का नियमन किया जाए। निम्नलिखित धन्धों में बालकों के कार्य करने पर रोक लगाई गई है - (1) रेलवे द्वारा यात्रियों, माल या डाक का यातायात, (2) रेलवे परिसर में राख में से कोयले के टुकड़े बीनना, राश के गड्ढों को साफ करना अथवा भवन निर्माण सम्बन्धी कार्यों को करना, (3) रेलवे में खान-पान प्रबन्ध की संस्थाएं, (4) रेलवे स्टेशन का निर्माण तथा (5) बन्दरगाह। निम्नलिखित उद्योगों में भी बालकों को काम पर लगाना प्रतिबन्धित है - (1) बीड़ी बनाना, (2) कालीन बुनना, (3) सीमेंट बनाना व उसे बोरियों में भरना, (4) कपड़े की छपाई, रंगाई व बुनाई, (5) दियासलाईयां बनाना तथा विस्फोट व आतिशबाजी का सामान तैयार करना, (6) अभ्रक काटना तथा उसे

कूटना, (7) चमड़ा बनाना, (8) साबुन बनाना, (9) चमड़ा रंगना, (10) ऊन साफ करना तथा (11) भवन निर्माण उद्योग। सरकार ने निम्नलिखित धंधों अथवा कार्यो में भी बालकों के काम करने पर रोक लगाई है - (1) कसाईखाने, (2) जोखिम के कार्य तथा खतरनाक कार्य, जो कि अधिसूचित हैं, (3) छपाई, जैसा कि अधिनियम में परिभाषित है, (4) काजू तोड़ना, उनसे छिलके उतारना व उन्हें तैयार करना, तथा (5) विद्युत उद्योग में टांके लगाने कार्य। अधिनियम में इस बात का भी प्रावधान है कि कोई भी बालक रात्रि के 7 बजे से प्रातः 8 बजे के बीच काम पर नहीं लगाया जा सकेगा तथा उनसे समयोपरि (over time) काम नहीं कराया जा सकेगा। किसी भी बालक से 3 घण्टे से अधिक काम नहीं कराया जायेगा, बशर्ते कि उसे इससे पूर्व एक घण्टे का विश्राम न दे दिया गया हो। श्रम समय-विस्तार (spread over) 6 घण्टे निश्चित किया गया है। कोई भी बालक एक दिन में एक से अधिक संस्थान में काम नहीं कर सकेगा। साप्ताहिक अवकाश देने का भी प्रावधान किया गया है। अधिनियम द्वारा बालकों के लिए स्वास्थ्य एवं सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान भी किये गये हैं। यदि मालिक किसी बालक को रोजगार पर लगाता है तो उसे कारखाना निरीक्षक को इसकी सूचना देनी होगी। अधिनियम के अनुसार बालकों को आयु का प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत करना होता ह। मालिक द्वारा काम पर लगाये गये बालकों का विवरण एक रजिस्टर पर रखा जायेगा। अधिनियम की धाराओं का उल्लंघन करने वाले मालिकों पर 3 माह से 1 वर्ष तक कारावास अथवा 10 हजार रूपये से 20 हजार रूपये तक अर्थदण्ड अथवा दोनों दण्ड एक साथ दिये जा सकेंगे। यदि मालिक द्वारा अधिनियम के उल्लंघन को बार-बार दोहराया जाता है तो कारावास का दण्ड 6 माह से कम नहीं होगा तथा उसे दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा।

रिपोर्टो से यह ज्ञात होता है कि केवल ठेकेदारों के श्रमिकों को छोड़कर रेलवे में इस अधिनियम को उचित रूप से लागू किया जाता है। बीड़ी की फैक्टरियों में इस अधिनियम को लागू होने में सबसे बड़ी कठिनाई यह रही है कि इन छोटे-छोट कारखानों के मालिक अपने कार्य स्थानों में नित्य परिवर्तन करते रहते हैं।

कुछ सुझाव

(Some suggestions)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इन अधिनियमों से कोई विशेष सहायता नहीं मिल सकी है। इसका कारण यह है कि लोग सामान्यतया इन कानूनों से बचने की चेष्टा करते हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि व्यवसायों में तथा घरेलू नौकरों के रूप में रोजगार पर लगे हुए बालकों के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। अतः बाल श्रमिकों के रोजगार से सम्बद्ध बुराइयों को रोकने के लिए पग उठाये जाने नितान्त आवश्यक हैं। एक सुधार, जिसको तत्काल किया जाना चाहिए, वह श्रम निरीक्षण को द ढ़ करने की व्यवस्था करना है ताकि कानून की धाराओं का उल्लंघन न किया जा सके। मालिक प्रायः यह तर्क देते हैं कि वे बालों को रोजगार पर लगाकर श्रमिकों की पारिवारिक आय को, जो बहुत कम है, बढ़ाते हैं और इस प्रकार, जब शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव है, बालकों को रोजगार देकर उनको बुरी आदतों और आलस्य में पड़ने से बचा लिया जाता है। परन्तु इस प्रकार के तर्को में कोई विशेष बल नहीं है। कोई भी राष्ट्र अपने बालको ंकी उपेक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि यही बालक तो राष्ट्र के भावी श्रमिक और नागरिक बनते हैं। केवल बालों को रोजगार देने पर निषेध लगाने से ही काम नहीं चलेगा, अपितु आवश्यक यह है कि औद्योगिक रोजगारों से बाल श्रमिकों को हटाने के लिए ठोस कदम उठायें जायें। जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने कहा था : **"श्रमिकों की भावी सन्तान की ओर ध्यान देना सरकार का कर्तव्य है और सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये कि कहीं बालकों का बचपन स्कूलों में पढ़ने, शिशुग हों में पालित-पोषित होने और खेलों के मैदान में खेलने के स्थान पर कार्यशालाओं और फैक्टरियों के गन्दे स्थानों में तो नष्ट नहीं हो रहा है।"** इसमें सन्देह नहीं है कि सरकार इस ओर अब ध्यान दे रही है और बालकों के हित की नीति को अपना लिया गया है, परन्तु इस नीति को पूर्ण रूप से लागू करने की आवश्यकता है। यह तभी हो सकता है जब उचित प्रकार के निरीक्षण और रमिकों के बच्चों के लिये शिक्षा और अधिक सुविधाओं की व्यवस्था की जाये। इसके अतिरिक्त, जैसा कि श्री वी.वी. गिरि ने सुझाव दिया था, बालकों के रोजगार की आयु बढ़ाकर 16 वर्ष कर दी जानी चाहिये, तथा इस आयु के बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य रूप से शिक्षा मिलनी चाहिये।

सन् 1979 अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप मे मनाया जाना, फरवरी 1979 में बाल श्रम समिति की नियुक्ति और श्रम मंत्रालय में बाल श्रमिकों से सम्बन्धित एक कोष्ठ की स्थापना - ये कुछ ऐसी घटनायें थीं जिनके कारण बाल श्रमिकों की समस्याओं की ओर सभी का ध्यान आकर्षित हुआ। इस सम्बन्ध में बाल श्रम समिति के विचार बड़े महत्वपूर्ण हैं। उसका कहना है कि "भारत में बाल श्रमिकों की वर्तमान स्थिति मुख्यतया एक बढ़ी हुई खाई के समान है। यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुत कम प्रमाण

उपलब्ध हैं कि उद्योगों के संगठित क्षेत्र में तथा देश के कुछ अन्य भागों में कितने बच्चे कार्यरत हैं, किन्तु उनकी स्थिति आज भी लगभग वैसी ही है जसे कि आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व ह्रिटले आयोग ने बतायी थी। बच्चों की अधिकतर संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में ही काम करती है। जहां अधिकांश बच्चे बिना मजदूरी के ही काम करते हैं, वहां उनके बच्चे मजदूरी के आधार पर ही काम करते हैं और उनमें से अनेक खतरनाक कामों में भी लगे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों की एक बड़ी संख्या सूती वस्त्र उद्योगों में भी लगी है जहां कानूनों द्वारा नियमित बहुत कम बच्चे बड़े पैमाने पर ग्रामीण वातावरण से शहरी क्षेत्रों की ओर भी जाते रहते हैं ये बच्चे शहरों में प्रायः विभिन्न शोषणयुक्त परिस्थितियों के अंतर्गत छोटे-छोटे संस्थानों में ही काम प्रापत करते हैं। इन व्यवसायों में बच्चों के काम का कानून द्वारा नियमन नाममात्र के लिए ही होता है और यदि कहीं इस सम्बन्ध ा में कानून बने हुये भी हैं, वहां उनका क्रियान्वयन बड़े अधूरे मन से किया जाता है। समिति इस बात पर जोर देना चाहेगी कि जब तक उन कार्यो एवं व्यवसायों का व्यवस्थित रूप से मूल्यांकन नहीं किया जाता, जिनमें कि बच्चे काम करते हैं और कमियों को दूर करने के लिए उद्देश्यपूर्ण निर्णायक फैसले नहीं किये जाते, तब तक वर्तमान स्थिति में कोई उल्लेखनीय गुणात्मक या परिमाणात्मक परिवर्तन होना संभव नहीं है।"

बच्चों के काम करने की दशाओं में सुधार करने के लिए तथा इस सम्बन्ध में नीतियों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं के निर्माण, समन्वय एवं क्रियान्वयन के लिए श्रम मंत्रालय में एक बाल श्रमिक कोष्ठ (Child labour Cell) की स्थापना की गई है। इस कोष्ठ ने उन ऐच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता भी दी है जो कि काम करने वाले बच्चों के कल्याण के लिए प्रायोजनाओं को लागू करते हैं। यही नहीं, कोष्ठ ने बाल श्रम के विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन व अनुसंधान के लिए भी वित्तीय सहायता प्रदान की है।

सितम्बर 1983 में सम्पन्न श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन के निर्णय के अनुसार, एक दल बनाया गया था जिसमें गुजरात, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल के श्रम मन्त्रियों को सम्मिलित किया गया। दल से निम्न बातों पर विचार करने के लिए कहा गया था : (1) रोजगार में बच्चों के प्रवेश की न्यूनतम आयु, (2) बच्चों को काम पर लगाने के सम्बन्ध में व्यापक विधान की आवश्यकता। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक विशेषज्ञ मि. असेफा वेक्वली सन् 1984 में जिनेवा से भारत आये थे और उन्होंने बाल श्रमिक प्रायोजनाओं की व्यापक रूपरेखा बनाई थी।

श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टो के अनुसार, सरकार ने यह स्वीकार किया है कि बाल श्रम एक कटु सत्य है और प्रतिबन्धित श्रम कानूनों के बावजूद बाल श्रम बराबर जारी है। भारत ने बाल श्रम की समस्या के समाधान के मामले में सदी ही एक बड़ी सक्रिय नीति अपनाई है आर बाल श्रम के उन्मूलन के लिए जो भी संवैधानिक, कानूनी और विकासोन्मुख उपाय आवश्यक थे, उन्हें लागू किया है। बाल श्रम से सम्बन्धित अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के छः अभिसमयों (Conventions) को भारत ने अपनाया है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने बच्चों के लिए अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा तथा उनकी श्रम-सुरक्षा के लिए सभी आवश्यक सम्बन्धित प्रावधानों का भारत के संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। श्रम आयोगों तथा कमेटियों ने बाल श्रम से सम्बन्धित समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया है तथा व्यापक सिफारिशें की हैं। भारत की न्यायपालिका ने, नीच से ऊपर के सर्वोच्च स्तर तक, बाल श्रम से सम्बन्धित मामलों पर बड़ी सहानुभूति का द ष्टिकोण अपनाया है।

सरकार की नीति यह है कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, खानों तथा जोखिम वाले रोजगारों में कतई न लगाया जाए तथा अन्य रोजगारों में बालकों के कार्य करने की दशाओं को नियमित तथा नियंत्रित किया जाए। बाल श्रम (निषेध तथा नियमन) अधिनियम, 1986 इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया गया है। 26 मई 1993 को एक अधिसूचना जारी करके उन सब रोजगारों में भी बालकां के काम करने की दशाओं को नियमित किया गया है जिनमें अधिनियम के अंतर्गत प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। सरकार ने अगस्त 1987 में बाल श्रम पर एक नीति की घोषणा की थी जिसमें इन बातों को सम्मिलित किया गया है (क) विधायी कार्यवाही योजना, (ख) जहां भी संभव हो बच्चों को लाभ पहुंचाने के लिए सामान्य विकास कार्यक्रमों पर जोर देना, तथा (ग) मजदूरी/अर्ध मजदूरी वाले रोजगारों में लगे बाल श्रमिकों के अधिक संख्या वाले क्षे?त्रों में परियोजनाओं पर आधारित कार्यवाई योजनाएं लागू करना। 1995 में आठ राज्यों में बारह राष्ट्रीय बाल श्रम प्रायोजनाएं क्रियान्वित की जा रही थीं। ये आठ राज्य हैं - उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा उड़ीसा।

प्रायोजनाओं के अंतर्गत किया जान वाला एक प्रमुख कार्य विशेष स्कूलों की स्थापना का ह। ये स्कूल रोजगार से वापिस हटा लिये जाने वाले बच्चों की मूलभूत आवश्यकताओं, जैसे अनौपचारिक शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा अनुपूरक पोषण आदि

की व्यवस्था करते हैं।

सातवीं पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में इन परियोजनाओं पर होने वाला व्यय 4.93 करोड़ रूपये था। आठवीं आयोजना में इस मद का प्रस्तावित व्यय 15 करोड़ रूपये है।

वर्ष 1995-96 के लिए आयोजना आयोग ने 34.40 करोड़ रूपये इस आश्वासन के साथ आबंटित किया है कि कार्य-सम्पादन की स्थिति को देखकर और धन भी आबंटित किया जा सकता है। यह आबंटन 1995 के स्वतन्त्रता दिवस पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री नरसिंह राव के इस आह्वान को ध्यान में रखते हुए किया गया था कि सन् 2000 तक जोखिम वाले रोजगारों से बाल श्रम का पूर्णतः उन्मूलन कर दिया जायेगा। यह लक्ष्य मुख्यतः राष्ट्रीय बाल श्रम प्रायोजनाओं पर आधारित कार्यक्रमों द्वारा पूर्ण किया जायेगा (यह अनुमान है कि इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए 850 करोड़ रूपये की आवश्यकता होगी)। स्वयसेवी संस्थाओं को भी इस संबंध में वित्तीय सहायता दी जा रही है। यह सहायता सहायक अनुदान योजना के अंतर्गत, काम करने वाले बच्चों के लिए लागू की जाने वाली कल्याण प्रायोजनाओं पर कुल व्यय की 75 प्रतिशत तक दी जाती है।

बाल श्रम के उन्मूलन के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण का गठन किया गया था जिसके अध्यक्ष श्रम मन्त्री थे। इस प्राधिकरण का कार्य था : स्कूल छोड़ने वाले बालों के लिए शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधाएं जुटाना तथा विभिन्न मंत्रालयों के वित्तीय एवं मानवीय संसाधनों को एकत्रित करना और उनके बीच घनिष्ठ सम्पर्क व समन्वय स्थापित करना। जिन बालकों को काम से हटाकर शिक्षा आदि के क्षेत्र में लाया जाता है, उनके माता-पिता पर पड़ने वाले आर्थिक बोझ को दूर करने के उपाय भी यह प्राधिकरण करता है। नवम्बर 1994 में केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने सभी राज्यों व संघशोसित क्षेत्रों के मुख्य मन्त्रियों अथवा प्रशासकों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि वे बालकों की सुरक्षा के उद्देश्य से बनाये गये कानूनों के कार्यान्वयन की समीक्षा करें तथा उन अन्य धंधों अथवा कामों के नामों का सुझाव दें जिनमें कि बाल श्रमिकों को लगाया जाना प्रतिबन्धित होना चाहिए और उन उद्योगों को दी गई छूटें वापिस ले ली जानी चाहिए जहां कि बालकों को काम पर लगाया जा रहा हो।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने एक बाल श्रम कार्यवाई तथा सहायता कार्यम (Child Labour Action and Support Programme) बनाया है जिसे 1990 से आरम्भ किया गया है तथा जिसके लिए जर्मनी की सरकार से सहायता प्राप्त होती है। इस कार्यम का उद्देश्य बाल श्रम के उन्मूलन के लिए देश की क्षमताओं को मजबूत बनाना है। इसके अंतर्गत, 1994 के अन्त तक 2.40 लाख अमरीकी डॉलर व्यय हो चुके थे। इसके अतिरिक्त, बाल श्रम उन्मूलन के अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम (International Programme for Elimination of Child Labour) के अंतर्गत 8.5 करोड़ रूपये की 89 प्रायोजनाओं को स्वीकृत किया गया है। ये प्रायोजनाएं लागू हैं। इन प्रायोजनाओं के अंतर्गत, गैर सरकारी संगठनों को सहायता दी जाती है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत जो कार्य हाथ में लिये जाते हैं, वे हैं - बाल श्रम के विरुद्ध जन-जागरण उत्पन्न करना, श्रमिक संघों व मालिकों का हस्तक्षेप, बाल श्रम के उन्मूलन में लगे कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, बाल श्रमिकों की वापिसी और फिर उनके पुनर्वास तथा शिक्षा की व्यवस्था करना।

निष्कर्ष

(Conclusion)

बाल श्रमिकों की समस्या सभी वयस्क कमाने वालों के लिए पर्याप्त मजदूरी की समस्या से संबंधित हैं। वयस्क कमाने वालों को जो बहुत कम मजदूरी मिलती है, उसी कारण वे अपने बालकों को काम पर भेजने के लिए विवश हो जाते हैं और कानून के अपवंचन में मालिकों स मिल जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने बालकों तथा किशारों की सुरक्षा पर अपनी रिपोर्ट में इस बात पर ठीक ही बल दिया है कि बाल-श्रमिकों को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर देने की जो समस्या है, वह आवश्यक रूप से इस समस्या से सम्बन्धित है कि बालकों का निर्वाह किस प्रकार से हो और रोजगार पर लगे हुए सभी श्रमिकों को इतनी पर्याप्त मजदूरी मिले कि वे अपने परिवार का एक उचित स्तर पर निर्वाह कर सकें। औद्योगिक श्रमिक के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा उचित मजदूरी का निर्धारण तथा उनके लिए सामाजिक बीमे की योजनायें ही बहुत सीमा तक इस समस्या का समाधान कर सकी हैं। समाज को इस बात का उत्तरदायित्व लेना चाहिये कि वह बालकों के निर्वाह और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करे ताकि बालकों को इस बात का पूरा अवसर मिले कि उनकी मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास हो सके। इस प्रकार जब वे बड़े होंगे तो अपने आर समाज के हित के लिये कार्यकुशल श्रमिक, बुद्धिमान नागरिक और ऐसे स्त्री और पुरुष बन सकेंगे जो अपना उत्तरदायित्व समझते हों। भारत के संविधान में भी इस बात का उल्लेख हैं कि "14 वर्ष से कम आयु का कोई बालक किसी भी कारखाने, खान या अन्य किसी खतरे वाले कार्य में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता और यह राज्य का कर्तव्य होगा कि वह यह देखे कि सुकुमार आयु के बालकों से अनुचित लाभ तो नहीं उठाया जाता तथा शैशवकाल व युवावस्था का शोषण नहीं होता है और उनको निर्धनता और नैतिक पतन के गर्त में नहीं गिरने दिया जाता है।